भारत
के
त्यौहार

सुरेशचन्द्र शर्मा

1963
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-४
मई ७, १९६२
वैशाख १७, १८८४ शक

दो शब्द

हमारे गाँवो के जीवन का त्यौहारो से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। ग्रामीण जनता मे इनके द्वारा न केवल धार्मिकता जगी रही है वरन् ये मनोरजन और शिक्षा के भी साधन रहे हैं। मैंने अपनी आत्मकथा मे अपने गाँवो के जीवन का वर्णन करते हुए होली, जन्माष्टमी, रामनवमी, दशहरा, अनन्त चतुर्दशी और मुहर्रम का जिक्र किया है।

पडित सुरेशचन्द्र शर्मा ने अपनी पुस्तक मे हिन्दुओ के ६७, अन्य धर्मावलम्बियों के ८ और ५ राष्ट्रीय त्यौहारो का विवरण दिया है। समाजविज्ञान की दृष्टि से अभी भारतीय त्यौहारो का अध्ययन नही हुआ है। त्यौहारो के सम्बन्ध मे विवरणात्मक पुस्तकें भी कम ही हैं। देश के अन्य भागो में हिन्दुओ के अदर ही अन्य कई त्यौहार मनाए जाते हैं। इनकी रीतियाँ-विधियाँ भी अलग-अलग है। इस विषय पर अभी बहुत कुछ लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि यह पुस्तक इस दिशा मे एक शुभ प्रयास है। पडित सुरेशचन्द्र शर्मा इसके लिए बधाई के पात्र हैं।

भूमिका

त्योहार—हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। शताब्दियों और सहस्राब्दियों से वह हमारे सामाजिक जीवन में नव-प्रेरणाओं का सन्देश देते रहे हैं। गत ऐतिहासिक स्मृतियों को जागृत करते हुए वह हमारे पिछले गौरव के मंगलमय मन्त्र हमें सिखाते जाते हैं।

हिन्दू जाति का जीवन इन व्रतों और उत्सवों से सँजोया हुआ है। उनका आरम्भ किसी न किसी समाज-सुधार के पहलू को लेकर हुआ है। भारत धर्म-प्राण देश है। इसलिए समाज-सुधार की बातों को भी धर्म-निष्ठा का स्वरूप देकर हमने अंगीकार किया है। यह अवश्य है कि आज वे उत्सव केवल चिह्न पूजा अथवा अंध-विश्वासों के ढेर बन गए हैं। उनके मूल उद्देश्यों को भुलाकर हम यह मान बैठे हैं कि यह सब ढकोसले या पुरानेपन की दुःखद परिपाटियाँ हैं। परन्तु ऐसा सोचना समाज की दृष्टि से हितकर नहीं है। व्रतों, उत्सवों और जयंतियों की उपेक्षा करने से हमारा सामाजिक और नागरिक जीवन शुष्क, नीरस और निष्प्राण हो जायगा। इन त्योहारों के अन्तराल में ही

'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

सत्य तो यह है कि भारतीय संस्कृति का प्राचीन स्वरूप अत्यन्त उदार है। जिसके कारण उसके व्यावहारिक रूप में ऐसी लचक पैदा हो गई है कि धान के छोटे-छोटे कोमल पौधों की भाँति वह समय आने पर कुछ-कुछ झुकती रही। बड़े बड़े अंधड़ उस पर आए और निकल गए। थोड़ा-सा झुककर वह ज्यों की त्यों खड़ी रही। उसके मुकाबिले पर विश्व की अनेक संस्कृतियाँ उठकर खड़ी हुईं और सघन वट वृक्ष के समान दृढ़तापूर्वक स्थिर रहीं। परन्तु समय की भयंकर आँधियों ने उन्हें उखाड़कर धराशायी कर दिया। आज दुनिया में उन के नामो निशान भी नहीं बचे। किन्तु भारतीय संस्कृति अबतक किसी न किसी रूप में कायम है। अनेक मत और वादों तथा महान् आत्माओं ने समय-समय पर जन्म लेकर उसे नए-नए रूप दिए। इन रूपों को

पाकर भी यह अपनी प्राचीन मान्यताओं का आधार लिये हुए अब तक खड़ी है।

इन परम्पराओं को सुरक्षित रखने वाले अनेक महापुरुषों ने कालान्तर में अपने सुसगठित चरित्र और उपदेशों से उनका सरक्षण किया। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गाधी और आचार्य विनोबा आदि विभूतियों ने अपने-अपने ढग से अनेक व्रत और महोत्सवों से सुसज्जित भारतीय सस्कृति के महत्त्व को प्रकट किया।

महात्मा सूरदास, सत तुलसीदास, मीराबाई, कबीर और नानक प्रभृति महात्माओं ने उसे अपने युग के अनुरूप मोड देकर उसे अक्षुण्ण रखा। उन्हीं आदर्शों को लेकर हिन्दू-धर्म विश्व की अनेक सस्कृतियों के उत्थान और पतन के दृश्य देख चुका है। समय-समय पर उठने वाले उन संस्कृतियों के झझावात ने हिन्दू धर्म को भी झकझोडा, परन्तु उन आधियों और तूफानों का सामना करते हुए वह अपने वर्तमान विश्वासों के अतराल में अतीत के गौरव को छिपाए, उनके महत्त्व की गाथा विश्व के कानों में भरता जाता है। इतना ही नहीं, उन सस्कृतियों के प्रवर्तकों को भी हिन्दू-धर्म ने अपने अवतारों में सम्मिलित कर लिया और उनमें से किसी की जन्म तिथि, किसी की निधन तिथि को चिर-स्मृति के रूप में स्वीकार करके अपनी उदारता का परिचय दिया। एव उनकी कही हुई बातों को आत्मसात् कर लिया।

इस निष्ठा का अर्थ अध श्रद्धा या रूढिवाद नहीं है। वह तो जीवन को प्रशस्त और व्यापक बनाने का मार्ग है। उसकी शक्ति स्वय मानव है। मानव का विकास ही उसका लक्ष्य है। हिंदू जाति को आर्य, द्रविड, मंगोल, किरात, हूण, विद्याधर, सर्प, गधर्व, यवन, पुलिंद, खस, आभीर, किन्नर, यक्ष, नाग आदि श्रेष्ठ जातियों ने मिलकर महासागर का रूप दे दिया है। यह महासागर अनेक रत्न-राशियों को अपने अतरग में छिपाये हुए पडा है। इस अलौकिक रत्न भडार को 'जिन खोजा तिन पाईयाँ गहरे पानी पैठि।'

यह गहराई अपनी सभ्यता की कहानी प्रत्येक उत्सव के रूप में हमें सुनाती हुई अबाध गति से आगे बढती चली जा रही है। अनेक जातियों ने उसे अप-नाया और अपने सस्कारों, कर्मकाड, परम्परा और प्रथाओं को लेकर इसमें आ

मिली। हिंदू धर्म ने उन्हें अपने मे इस तरह से मिला लिया कि वह निर्मल गगा के प्रवाह की तरह प्रवाहित होता हुआ विकास के महा समुद्र की ओर बढता चला जा रहा है। उसकी सहिष्णुता का रहस्य ही इन उदार विचारो मे बिखरा पडा है।

व्रतो का सामान्य अर्थ आज 'उपवास' हो गया है। उपवास शब्द का अर्थ है दुर्गुणों एव दोषो से बचकर आत्मा अथवा गुणो के साथ वास अर्थात् निवास। अनुभव से देखा जा सकता है कि मन की कलुषित भावनाओ से मुक्त होकर चित्तवृत्तियो को आत्मा अथवा सत्य मे सन्निविष्ट करने की प्रेरणा उपवास के समय मे सर्वाधिक होती है। प्रत्येक महीना इन उपवासो और व्रतो के नियमो से सजोया हुआ है। ये व्रत और उपवास केवल स्त्रियो अथवा माताओ के लिए ही नही है वरन् प्रत्येक बालक-बालिका, वृद्ध, युवा और महिलाओ के लिए उनका विधान है। विधानो मे हमारे देश के भिन्न मतावलवियो के लिए अपनी-अपनी कुल परम्परागत मान्यता के अनुसार चलने की पूरी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

व्रतो की कथाओ का भी जीवन को प्रशस्त करने के मार्ग मे कुछ कम महत्त्व नही है। वे कथाएं बडी योग्यता के साथ लिखी गई हैं। जिनसे सरल हृदय नागरिको के हृदय पर तत्काल श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है। यह कथाएँ दरअसल इन व्रतो की सजीवनी शक्ति हैं। उनका सकल्प लेने मे मानव मे उसके पालन करने की तीव्र एवं बलवती प्रेरणा प्राप्त होती है और उसे छोड देने से सचित पुण्य नष्ट होता है—

पूर्व व्रत गृहित्वा यो नाचरेत काममोहित ।
जीवन भवति चाडालो मृतः श्वा जायते॥

इतने व्यापक विषय पर प्रस्तुत ग्रथ मे जो कुछ लिखा गया है वह इतना ही है यह कहना भूल होगी। अभी तो इस विषय पर बहुत कुछ जानने को बाकी है। फिर भी कुछ खास-खास व्रत, उत्सवो और जयन्तियो की कहानी, उनका आरम्भ और उनकी मान्यताएँ इस छोटे-से रूप मे सकलन की गई हैं।

यदि इनसे समाज का कुछ उपकार हो सका तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा। विषय जटिल जरूर है और मेरी योग्यता इतनी अधिक नही है कि ऐसे गम्भीर विषय पर कुछ अधिक सामग्री भेंट कर सकूं। फिर भी जिन महा-

पुस्तकों, आचार्यों और लेखकों का आधार लेकर इस ग्रंथ को पूरा किया गया है उनका मैं कृतज्ञ हूँ। भाषा की दुरूहता पर अधिक ध्यान न रखकर लोकोपयोगी ग्रंथ बन सके इस पर अधिक लक्ष्य रखने का प्रयत्न किया गया है। समाज सुधार की इच्छा रखने वाले भाइयों को हिंदू संस्कृति और उसके त्योहारों के बारे में समझने का अवसर मिलेगा ऐसी आशा है। तथापि इसमें यदि कोई त्रुटि प्रतीत हो तो उसे मुझे बताने की कृपा अवश्य करें जिससे पुस्तक के अगले संस्करण में उसका संशोधन किया जा सके।

इस ग्रंथ के लेखन में जिन विद्वानों की मूल्यवान कृतियों से मैंने सहायता ली है उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ। आशा है वे अपने इस विनम्र अनुगामी की इस ढिठाई पर क्षमा करेंगे।

—सुरेशचंद्र शर्मा

क्रम

1 संवत्संरारम्भ

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा

चैत्र महीने की शुक्ला प्रतिपदा को विक्रमीय सम्वत् का पहला दिन माना जाता है। इसीलिए इसे सवत्सरारम्भ कहते हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि पृथ्वी के साथ सवत्सरों का चिर-सम्बन्ध है। प्रत्येक सवत्सर का इतिहास हमारे पिछले वर्ष के कार्यों का मूल्याकन और अगले वर्ष के शुभ सकल्पो का द्योतक है।

वेद तो माँ वसुधरा का यशोगान करते हुए यहाँ तक कहते हैं कि हे पृथ्वी! तुम्हारे ऊपर सवत्सर का नियमित ऋतुचक्र घूमता है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमत, शिशिर और वसत का विधान अपनी-अपनी निधियों को प्रतिवर्ष तुम्हारे चरणो मे अर्पण करता है। प्रत्येक सवत्सर का लेखा असीम है। माँ वसुधरा की दैनिक चर्या तथा अपनी कहानी दिन-रात और ऋतुओ के द्वारा सवत्सर मे आगे बढती चली जा रही है।

वसत ऋतु की किस घडी मे किस फूल को प्रकृति अपने रगो की तूलिका से रगती है, दिन रात तथा ऋतुएँ किस वनस्पति मे माँ वसुधरा का रस जमा करती हैं, पख फैलाकर उडने वाली तितलियाँ एव यत्र तत्र चमकने वाले पटबीजने कहाँ-से कहाँ जाते हैं, किस समय क्रौंच पक्षियो की कलरव करती हुई पक्तियाँ मानसरोवर से लौटती हुई हमारे हरे-भरे लहलहाते हुए खेतो मे मगल करती हैं, किस समय मे तीन दिन तक बहने वाला प्रचड फगुनहरा वृक्षो के पुराने पत्तो को धराशायी कर देता है, और किस समय पुरवाई हवा चलकर आकाश को मेघो की छटा से आच्छादित कर देती है? इस ऋतु विज्ञान की कथा विश्व के कानो मे कहते हुए सवत्सर का प्रत्येक पल अपनी तेज रफ्तार से आगे

बढता चला जाता है। उसी संवत्सर का आरम्भ इस शुभ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से होता है।

प्राचीन युग की मान्यता के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि-रचना इसी दिन से आरम्भ हुई थी। ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि दूसरे सभी देवी-देवताओं ने आज से ही सृष्टि के संचालन का कार्यभार सम्भाला। अथर्ववेद में विधान है कि आज के दिन उसी संवत्सर की सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर पूजनी चाहिए। यह संवत्सर ही तो साक्षात् सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्माजी का मूर्तिमान प्रतीक है।

आज के दिन से रात्रि की अपेक्षा दिन का परिमाण बढने लगता है। ईरानियों में आज ही के दिन नौरोज मनाया जाता है, जो संवत्सरारम्भ का पर्याय है। धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टियों से इस तिथि का इसीलिए इतना अधिक महत्त्व है।

शक्ति-सम्प्रदाय के अनुयायियों के मत से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवरात्रि का आरम्भ होता है। शाक्त लोग अपने व्रत अनुष्ठान आदि आज की तिथि से आरम्भ करते हैं। और समूचा वर्ष हमारे तथा देश के लिए शुभ हो, इस मंगल-कामना से शक्तिस्वरूपा भगवती दुर्गा का पाठ आरम्भ करते हैं जो नौ दिन तक चलता है। वैष्णव लोग भी आज से रामायण आदि का पाठ आरम्भ करते हैं।

वैदिक युग में समस्त नागरिक प्रातःकाल स्नान करके गंध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर विधिवत् संवत्सर का पूजन करते थे और परस्पर एक-दूसरे से मिलकर हरे भरे एवं सरसों के पीले फूलों के परिधान में लिपटे खेतों पर जाकर नई फसल का दर्शन करते थे। बाद में अपने-अपने घरों पर आकर नई बनी हुई चौकी अथवा बालू की वेदी पर स्वच्छ वस्त्र बिछाकर उस पर हल्दी अथवा केसर से रंगे हुए अक्षत् का अष्टदल कमल बना, उसके ऊपर साबुत नारियल या संवत्सर ब्रह्मा की सुवर्ण प्रतिमा रखकर 'ओ ब्रह्मणे नमः।' मंत्र से ब्रह्मा का आह्वान और पूजन करके गायत्री मंत्रों से हवन करते थे। अंत में सारा वर्ष सबका कल्याण करने वाला हो यह प्रार्थना करते थे।

आज भी देश को हरा भरा और सुसम्पन्न बनाने के लिए हमारी

'अधिक अन्न उपजाओ' योजना के अनुसार समस्त नागरिको का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने श्रम से उत्पादित नई फसल का खेतो पर जाकर दर्शन करें। और यदि उसमे कमी है तो उसे पूरा करने का शुभ सकल्प करें, एव जरुरतमदो को और गरीबो को भोजन करावें तथा सामर्थ्य के अनुसार नए वस्त्रो का दान करें। इससे समाज मे सुख और शान्ति होगी, आपस का प्रेम बढेगा। निर्धनो को धन देकर और निर्बलो की सहायता करके ऊँचा उठने का अवसर प्रदान करे। गिरे हुए पिछड़े लोगो को आगे बढने का मौका दे। आपसी कटुताओ को दूर करें और छोटे-बडे या ऊँच नीच की भावना मिटाकर सबके साथ समानता का व्यवहार आरम्भ करे। यही सवत्सर-पूजन का रहस्य है।

2 अरुन्धती व्रत

चैत्र शुक्ला तृतीया

अरुन्धती प्रजापति कर्दम ऋषि की पुत्री और महर्षि वशिष्ठ की धर्मपत्नी थीं। उन्ही के नाम पर इस व्रत की परम्परा आरम्भ हुई थी। सौभाग्याकांक्षिणी महिलाओ को उनके चरित्र से प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं, साथ ही बाल वैधव्य दोष का परिहार होता है। यह व्रत चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होकर तृतीया को पूरा होता है। प्राचीनकाल मे लोग किसी नदी पर अथवा घर मे स्नान करके इस व्रत का सकल्प करते थे। दूसरे दिन द्वितीया को नवीन धान्य पर कलश रखकर उसके ऊपर अरुन्धती, वशिष्ठ और ध्रुव की तीन मूर्तियाँ स्थापित करते थे। गणपति के पूजन के पश्चात् उसका पूजन होता था। तृतीया को शिव-पार्वती का पूजन करके व्रत की समाप्ति होती थी। आज-कल इस व्रत का रिवाज कम हो गया है। इसकी कथा पुराणो मे इस प्रकार दी गई है •

बहुत प्राचीनकाल मे किसी विद्वान् ब्राह्मण की कन्या छोटी उम्र मे ही विधवा हो गई। एक दिन यमुना नदी मे स्नान करके वह शिव-पार्वती का पूजन कर रही थी कि स्वयं आशुतोष शकर-पार्वती आकाश मार्ग से उधर निकले। देवी पार्वती ने शकर से उसके बाल-वैधव्य का कारण पूछा। शिव ने कहा—देवि! पहले जन्म मे यह लडकी पुरुष थी और एक ब्राह्मण परिवार मे इसका जन्म हुआ था। परन्तु परस्त्री मे आसक्ति रखने के कारण इसे नारी का जन्म मिला और अपनी विवाहिता पत्नी को दुखी रखने के हेतु वैधव्य का दुख उठाना पड रहा है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' के नियमानुसार इसे यह दुख सहना पडेगा।

पार्वती ने पूछा—प्रभो! क्या इस पाप का प्रायश्चित्त किसी रीति से हो सकता है?

शकर ने कहा—अवश्य! आज से बहुत पहले जन्मी हुई सती अरुन्धती के पावन चरित्र को स्मरण करती हुई यह बालिका यदि अपना शरीर त्याग दे तो इसे अगले जन्म मे सदाचार पालन करने की बुद्धि प्राप्त हो सकती है और इसके बाल वैधव्य योग का परिहार हो सकता है।

देवी पार्वती ने अवसर देखकर अकेले ही उस बालिका के सामने पहुँच उसके दोष और गुण उसे समझाए। एवं अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए पतिव्रत धर्म का महत्त्व तथा देवी अरुन्धती के चरित्र को समझाया। पार्वती की सीख पाकर उस बालिका ने चिरकाल तक देवी अरुन्धती का स्मरण करते हुए शरीर त्याग किया। जिसके फल-स्वरूप उसे दूसरे जन्म मे सुखी गृहिणी का जीवन प्राप्त हुआ।

अपनी विवाहिता पत्नी का अनादर और परस्त्री मे अनुराग रखना दोनो ही भयकर सामाजिक अपराध हैं। इन दोनो दुष्प्रवृत्तियो के फल घातक होते हैं। इनके हेतु काफी दड भोगना पडता है। इनसे बचने का उपाय यही हो सकता है कि ऐसे व्रत और अनुष्ठानो के द्वारा शुद्ध मनो-वृत्ति का विकास किया जावे। यही इस कथा का रहस्य है। यदि पुरुष यह चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली

गृहलक्ष्मियो के समान हो तो उन्हे भी एक पत्नीव्रत का पालन करते हुए स्त्रियो का आदर करना सीखना होगा। तभी उनके जीवन मे सुख और शान्ति कायम रह सकेगी।

3 गनगौर व्रत

चैत्र शुक्ला तृतीया

गनगौर व्रत—चैत्र शुक्ला तृतीया को रखा जाता है। यह हिंदू स्त्री मात्र का त्यौहार है। भिन्न-भिन्न प्रदेशो की प्रथा एव भिन्न भिन्न कुल परम्परा के भेद से पूजन के तरीको मे थोडा-बहुत अंतर हो सकता है। परन्तु इसकी धाराओ मे भेद नही है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ बहुत प्राचीनकाल से इस व्रत को रखती आई हैं।

मध्याह्न तक उपवास रखकर, पूजन के समय रेणुका की गौर स्थापित करके, उस पर चूडी, महावर, सिन्दूर, नए वस्त्र, चन्दन, धूप, अक्षत, पुष्प और नैवेद्य आदि अर्पण किया जाता है। उसके बाद कथा सुनकर व्रत रखने वाली स्त्रियाँ गौर पर चढा हुआ सिन्दूर अपनी माग मे लगाती हैं। गनगौर का प्रसाद पुरुषो को नही दिया जाता है। इस व्रत के सम्बन्ध मे जो लोक-कथा आमतौर पर गाँवो मे प्रचलित है वह इस प्रकार है

एक बार देवर्षि नारद के सहित भगवान् शकर विश्व-पर्यटन के लिए निकले। सती पार्वती भी उनके साथ थी। तीनो एक गांव मे गए। उस दिन चैत्र शुक्ला तृतीया थी। गांव की सम्पन्न स्त्रियाँ शिव-पार्वती के आने का समाचार पाकर बडी प्रसन्न हुईं और उन्हें अर्पण करने के लिए तरह-तरह के रुचिकर भोजन बनाने लगी। परन्तु गरीब स्त्रियाँ जो जहाँ जैसे बैठी हुई थी, वैसे ही हल्दी-चावल अपनी-अपनी थालियो मे रखकर दौडी और शिव-पार्वती के पास पहुँच गईं।

हमारा देश तो गरीबो का देश है। गरीबों का उपास्य शकर के अलावा और कौन देवता हो सकता है, जिसके पास पहनने को बढ़िया वस्त्रों के बजाय बाघम्बर मात्र है एव रहने के लिए फूंस की झोपडी भी नही है। फिर भी गरीबो के उस देवता की शक्ति अपरम्पार है। विश्व की कोई भी निधि ऐसी नही है जो उस देवता के चरणो पर न लोटती हो। इसलिए अपनी सेवा मे आई हुई गांव की ग़रीब और सीधी-सादी महिलाओ के झुड को देखकर शिव गदगद हो गए और उनके सरल एव निष्कपट भाव से अर्पण किये हुए पत्र-पुष्प को स्वीकार करके आनन्द मग्न हो गए। अपने पति को हर्ष से भरा हुआ देखकर, सती पार्वती का मन भी आनन्द से नाच उठा। उन्होंने आगन्तुक महिलाओ के ऊपर सुहाग रस (सौभाग्य का टीका लगाने की हल्दी) छिड़क दी। वे महिलाएँ सौभाग्य दान पाकर अपने अपने घर चली गई।

इसके बाद सम्पन्न कुलो की वधूटियाँ आईं। वे सब सोलहो शृगार से सुसज्जित थी। उनपर चमकते हुए आभूषणो और सुन्दर वस्त्रो की बहार थी। चाँदी और सोने के थालो मे वे अनेक प्रकार के पकवान बनाकर लाई थी। उन्हें देखकर आशुतोष शकर ने पार्वती से पूछा—देवि! तुमने सपूर्ण सुहाग रस तो अपनी दीन पुजारिनो को दे दिया। अब इन्हें क्या दोगी?

अन्नपूर्णा पार्वती ने कहा—'इन्हें मैं अपनी अगुली चीरकर रक्त का सुहाग रस दूँगी। निदान जब वे स्त्रियाँ वहाँ आकर पूजन करने लगी तब अन्नपूर्णा ने अपनी अगुली चीरकर सब पर उसका रक्त छिड़क दिया और कहा—बढ़िया वस्त्रो और चमकीले आभूषणो से अपने-अपने पतियो को रिझाने की अपक्षा अपने प्रत्येक रक्त बिंदु को स्वामी सेवा मे अपण करके तुम सौभाग्यशालिनी कहलाओगी। सेवा धम का यह अनोखा उपदेश प्राप्त करके वे कुल-वधूटियाँ अपन अपने घरो को लौटी और अपने परिवार की सेवा मे रत हो गईं।

इसके उपरान्त उन्होंने स्वय भी शिव से आज्ञा लेकर—भगवान् शिव तथा महर्षि नारद को वही छोड—कुछ दूर आ नदी मे स्नान

किया और बालू के शिव बनाकर श्रद्धापूर्वक उनका पार्थिव पूजन किया। प्रदक्षिणा करके उन्होंने उस शिव प्रतिमा से यह निवेदन किया कि मेरे दिये हुए वरदान को सत्य करने की शक्ति आप मे ही है। इसलिए प्राणेश्वर ! मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मेरे वचनो को पूर्ण करने का वरदान प्रदान कीजिए। शकर अपने पार्थिव रूप में साक्षात् प्रकट हुए और सती से कहा—देवि ! जिन स्त्रियो के पतियो का अल्पायु योग है उन्हें मैं यम के पाश से मुक्त कर दूँगा। पार्वती वरदान पाकर कृतकृत्य हो गई और शिव वहाँ से अतर्धान होकर फिर उसी स्थान पर आ पहुँचे जहाँ पार्वती उन्हें छोडकर गई थी।

पूजन के उपरान्त जब सती पार्वती लौटकर आईं तो शिव ने उनसे देर से आने का कारण पूछा—प्रिये ! देवर्षि नारद यह जानने को उत्सुक हैं कि तुमने इतना समय कहाँ लगाया ?

पार्वती ने उत्तर दिया—देव ! नदी के तीर पर मेरे भाई और भावज आदि मिल गए थे। उनसे बातचीत करने मे विलम्ब हो गया। उन्होने बडा आग्रह किया कि हम अपने साथ दूध भात आदि लाए है, जिसे बहन को अवश्य खाना पडगा। उनके आग्रह के कारण ही मुझे देर हुई है।

अपनी पूजा को गुप्त रखने के अभिप्राय से उन्होने बात को इतना घुमा फिराकर कहा था। यह शकर को अच्छा नही लगा। इसलिए उन्होने पार्वती से कहा—यदि ऐसी बात है तो देवर्षि नारद को भी अपने भाई भावज के यहाँ का दूध भात खिलाने की व्यवस्था करो तभी कैलाश चलेंगे। पार्वती बडे असमजस मे पडी, क्योकि उन्हें यह आशा नही थी कि शकर उनकी परीक्षा लेने को तैयार हो जाएंगे। अस्तु उन्होने मन ही मन शिव से प्रार्थना की कि उन्हें इस सकट से पार करें। फिर भी उन्होने ऊपरी मन से कहा—अवश्य चलिए, वे लोग यहाँ से थोडी ही दूर पर हैं। देवर्षि नारद को साथ मे लिये हुए शकर पार्वती सहित उसी ओर चलने को उठ खडे हुए।

कुछ दूर जाने पर एक सुन्दर भवन दिखाई पडने लगा। जब ये लोग उस भवन के अन्दर पहुँचे तो शकर के साले और सलहजने आगे

बढ़कर उनका स्वागत किया तथा देवर्षि नारद सहित बड़े प्रेम से उन्हें दूध-भात खिलाया। दो दिन तक बड़ी अच्छी मेहमानदारी हुई। तीसरे दिन सब लोग विदा होकर कैलाश की ओर चल दिए।

पार्वती के इस कौशल और सामर्थ्य को देखकर शंकर प्रसन्न तो बहुत हुए, परन्तु धर्मानुष्ठान को असत्य के आवरण में ढकना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। वह उसका भंडाफोड़ करके निष्कपट होने की शिक्षा सती को अवश्य देना चाहते थे। क्योंकि निष्कपट नारी ही सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति है। कुछ दूर जाने पर भगवान् शंकर ने कहा—अन्नपूर्णे! तुम्हारे भाई के घर पर मैं अपनी माला भूल आया हूं। पार्वतीजी माला ले आने के लिए तत्पर हो गई।

परन्तु इसी बीच देवर्षि नारद बोले—ठहरो अन्नपूर्णे! इस छोटे से काम को करने का अवसर मुझे ही प्रदान करो। तुम यहीं शंकर के साथ ठहरो, मैं माला लेकर अभी आता हूं। पार्वतीजी घबरा गईं। उन्होंने शंकर के आशय को समझ लिया। परन्तु करती क्या? देवर्षि नारद तो उनके गुरु थे। उनका आग्रह कैसे टालतीं? शंकर ने मुस्करा कर उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी। नारद उधर की ओर चल दिए।

किंतु उस स्थान पर पहुंचकर उन्होंने देखा कि न तो वहां कोई मकान है और न मनुष्य के रहने का संकेत। चारों ओर घना जंगल ही जंगल। स्वच्छन्द रूप से दौड़ते-भागते हुए जंगली जानवरों का झुंड एवं सघन अंधकार। मेघों से घिरा हुआ आकाश और जंगल की बीहड़ता को बढ़ाने वाली सियारों और उल्लुओं की बोलियां।

नारद यह देखकर सोचने लगे कि मैं कहां आ पहुंचा। मगर आसपास का दृश्य यही था। केवल वे महल, मकान और सती के भाई-भावज वगैरह वहां कुछ भी नहीं थे। दैवात्—उसी समय बिजली की चमक के प्रकाश में देवर्षि नारद ने एक पेड़ पर लटकती हुई माला देखी। उसे लेकर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए वह शंकर के पास पहुंचे और उनसे जंगल की भयानकता का वर्णन करने लगे। शिव बोले—देवर्षि! आपने जो कुछ अब तक देखा वह सब आपकी शिष्या महारानी पार्वती की अद्भुत माया का चमत्कार था। वह अपने

पार्थिव पूजन के भेद को आपसे गुप्त रखना चाहती थी, इसीलिए नदी मे देर से लौटकर आने के कारण को दूसरे ढग से प्रकट किया।

देवर्षि बोले—महामाये! पूजन तो गोपनीय ही होता है, परन्तु आपकी भावना और चमत्कारी शक्ति को देखकर मुझे अपार हर्ष है। आप विश्व की नारियो मे पातिव्रत धर्म की प्रतीक हैं। मेरा आशीर्वाद है कि जो देवियाँ गुप्त रूप से पति का पूजन करके उनकी मगल कामना करेंगी उन्हें भगवान् शकर के प्रसाद से दीर्घायु पति के सुख का लाभ होगा।

शिव और पार्वती उन्हें प्रणाम करके कैलाश की ओर चले गए।

4. रामनवमी

चैत्र शुक्ला नवमी

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूना षट् समत्ययु ।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥८॥
नक्षत्रे दिति दैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पचसु ।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पता विदुना सह ॥६॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथ सर्व लोक नमस्कृतम् ।
कौसल्या जनयद्राम दिव्य लक्षण सयुतम् ॥१०॥

—श्रीमद्वालमीकि रामायण, सर्ग १८

श्रीमद्वालमीकि रामायण से लिये हुए उपर्युक्त श्लोको मे महाराज दशरथ द्वारा किये गए पुत्रेष्टि यज्ञ के संदर्भ से आगे का हाल दिया गया है।

"यज्ञ के समाप्त होने पर छ ऋतुएँ और बीती अर्थात् एक वर्ष बीता, बारहवें चैत्र महीने मे नवमी तिथि को जब पुनर्वसु नक्षत्र था, पाँच (रवि, मगल, शनि, गुरु और शुक्र) ग्रह अपने उच्च स्थान पर

थे, बृहस्पति चंद्रमा के साथ थे, तब कर्क लग्न में कौशल्या ने अलौकिक लक्षणों से युक्त राम को जन्म दिया—वे जगन्नाथ थे और सबसे नमस्कृत थे।"

उन्हीं श्रीराम का जन्मोत्सव इस तिथि को सारे भारत में बड़ी श्रद्धा से मनाया जाता है। उनके पवित्र जीवन से मानव समाज को जो प्रेरणाएँ प्राप्त हुई हैं उन्हीं से उपकृत होकर हम उनकी जन्म-तिथि को अपना सबसे बड़ा त्योहार मानते हैं। इस देश के प्रत्येक प्रान्त का साहित्य उनके पावन चरित्र की गाथाओं से अलकृत है। हिंदी भाषा में तो गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने उनकी जीवन-कथा को दोहे चौपाइयों और छदों में लिखा है। उन्होंने आज ही के दिन श्री रामचरितमानस ग्रथ की रचना आरम्भ की थी। इस ग्रथ का निर्माण श्री अयोध्या में हुआ। इस ग्रथ की भाषा, भाव और शैली इतनी चित्ताकर्षक और हृदयग्राही है कि आज एक किसान की झोपड़ी से लेकर बड़े से बड़े राजभवनों में भी उसका गान बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ होता है।

विक्रमीय सवत्सरों में दो नवरात्रियाँ होती हैं। एक चैत्रमास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और दूसरी आश्विन मास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक। पहली को वासतीय नवरात्र और दूसरी को शारदीय नवरात्र कहते हैं। इसी वासतीय नवरात्रि के अतर्गत राम-नवमी का महोत्सव होता है। इस दिन श्री अवध में—जिसे श्रीराम की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है—बड़ा भारी मेला लगता है। अनेक रामभक्त इस अवसर पर प्रतिवर्ष इस मेले में आते हैं। उपवास रखकर पतितपावनी सरयू के जल में स्नान करके, भजन-कीर्तन आदि में अपना दिवस व्यतीत करते हैं। श्रद्धालु भक्त देवमन्दिरों में या अपने अपने घरों में ही श्रीराम का स्मरण करते हुए वाल्मीकि रामायण अथवा रामचरितमानस का पाठ करते हैं।

श्रीराम की जीवन-गाथा से कदाचित् ही कोई व्यक्ति अपरिचित होगा। उनका अवतार त्रेता युग में अवध नरेश महाराज दशरथ की बड़ी रानी कौशल्या के गर्भ से हुआ। उनके तीन और भी छोटे सौतेले

भाई थे परन्तु चारो भाइयो का प्रेम हमारे देश के जीवन के लिए आदर्श प्रेम का प्रतीक था। श्रीराम ने बचपन की अवस्था मे ही अपने शौर्य से बडे-बडे बहादुरो के दाँत खट्टे कर दिए थे। महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा करते हुए उन्होंने विघ्नकारियो और उपद्रवी राक्षसो का दमन किया। शिव का धनुषभग करके मिथिलापति राजा जनक की कन्या सीता के सग विवाह किया। अयोध्या मे वापस आने पर विमाता कैकेई के हठ के कारण राज्य छोडकर वन जाना स्वीकार किया और चौदह वर्षो का दीर्घ समय भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के सहित वहाँ रहते हुए व्यतीत किया और राक्षसो का दलन करके रामराज्य की स्थापना की।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने श्री रामचरित्र लिखकर सस्कृत भाषा मे प्रथम पुस्तक का निर्माण किया। यह ग्रथ श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के नाम से हमारे समाज मे विख्यात है। उन्होने लिखा है—'रामो विग्रहवान्धर्म' अर्थात्—श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरूप है। तत्कालीन समाज का चित्रण करते हुए कविवर गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस मे लिखा है—

> बाढ बहु खल चोर जुआरा।
> जे लम्पट परधन परदारा॥
> मानाहि मातु पिता नहि देवा।
> साधुन सन करवावहि सेवा॥
> जिनके यह आचरण भवानी।
> ते जानहु निशिचर सम प्राणी॥

ऐसे चरित्र वाले लोगो की अधिकता देखकर महर्षि विश्वामित्र को बडी चिंता हुई। उन्होंने महाराज दशरथ के पास जाकर समाज की इस दशा का वर्णन किया और समाज को अच्छे चरित्र का पाठ पढाने की आशा से श्री राम-जैसे चरित्रवान पुत्र को मांगा। उन्ही श्री राम ने समाज सेवा का व्रत लेकर हिमालय से लका तक एक ऐसे राज्य की स्थापना की जिसे हम राम राज्य के नाम से आज तक स्मरण करते हैं। उस राज्य मे कोई किसी से द्वेष नही करता था। सब लोग पार-

स्परिक प्रेम के साथ रहकर एक दूसरे को सहयोग देते थे। कोई दुःखी नहीं था, कोई रोगी और अन्न-वस्त्र से हीन नहीं था। दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को सताते नहीं थे।

यही कारण है कि हजारों वर्षों का समय बीत जाने पर भी श्री राम की पुनीत-स्मृति हमारे हृदय में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इतना ही नहीं, श्री राम तो हमारे जीवन में इतने समा गए हैं कि वह रोज़-मर्रा की मामूली राम राम से लेकर 'राम नाम सत्य' तक में व्यापत हो गए हैं। उन्हीं श्री राम का जन्मदिन चैत्र शुक्ला नवमी को प्रत्येक भारतीय उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाता है और इसी कारण इसे रामनवमी कहते हैं।

5 श्री रामदास जयन्ती

चैत्र शुक्ला नवमी

आधुनिक आन्ध्र प्रदेश के तिलगाना क्षेत्र मे औरंगाबाद जिले में आवड परगना मे जाम्ब नामक एक पुराना गाँव है। इसी जाम्ब गाँव मे श्री सूर्याजी पत और उनकी पत्नी राणूबाई नामक एक अत्यन्त सुशील, धार्मिक एवं भगवद्भक्त दम्पति निवास करते थे। श्री सूर्याजी सूर्य के उपासक थे। छत्तीस वर्षों तक कठोर तप करके उन्होंने सूर्य की उपासना की थी। इसी व्रत के फलस्वरूप सवत् 1662 वि० (1605 ई०) मे राणूबाई के गर्भ से प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बालक का नाम गगाधर रखा गया, जो आगे चलकर श्रेष्ठ रायो रायदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके उपरान्त सवत् 1665 वि० (अप्रैल सन् 1608) मे चैत्र शुक्ला नवमी को दोपहर बारह बजे के समय श्री राणूबाई ने दूसरे बालक को जन्म दिया। इसका नाम नारायण रखा गया। यही नारायण हमारे समर्थ गुरु श्री स्वामी रामदासजी महाराज हैं। गत

पाँच-छ सौ वर्षों मे भारत मे बडे-बडे सत हुए है उनमे समर्थ रामदास जी का आसन निर्विवाद रूप से बहुत ऊँचा है। उत्तर भारत मे तो कुछ शिक्षित और भक्त लोग ही उनके नाम से परिचित है, परन्तु महाराष्ट्र देश मे श्री समर्थ के नाम से बच्चा-बच्चा परिचित है। इतना ही नही उस प्रान्त मे उनको हनुमानजी का अवतार मानते है और उनकी देवता के तुल्य पूजा होती है।

श्री समर्थ केवल दिग्गज विद्वान् और बहुत बडे महात्मा ही नही थे, वरन् बहुत बडे समदर्शी और राजनीतिज्ञ भी थे। छत्रपति महाराज शिवाजी ने जिस महाराष्ट्र साम्राज्य की स्थापना की थी, उसका बहुत बडा श्रेय श्री समर्थ को ही प्राप्त था। आमतौर पर यही माना जाता है कि श्री समर्थ की प्रेरणाओ से प्रेरित होकर ही शिवाजी महाराज ने बहुत-से बडे-बडे काम किए। श्री समर्थ ने अपने उपदेशो से महाराष्ट्र मे और उसके द्वारा सारे देश मे बहुत बडी राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की थी। उन्होंने अपने युग मे केवल स्वराज्य की भावना मात्र ही पैदा नही की बल्कि ऐसे सुराज्य की स्थापना कराई थी जो बहुत बडे अश मे 'राम-राज्य' के सदृश ही माना जाता था।

समर्थ के शैशव काल मे सत एकनाथ की बडी ख्याति थी। श्री सूर्याजी पत और उनकी पत्नी राणूबाई अपने पुत्रो के सहित उनके दर्शनो को गए। सत एकनाथ ने अपने योगबल से बालक को देखते ही पहचान लिया और सूर्याजी से कहा—'यह बालक महावीरजी के अश से उत्पन्न हुआ है। यह बहुत बडा महापुरुष होगा और अपने देश का उद्धार करेगा। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति श्री महावीरजी ने नारायण को सात वर्ष की अवस्था मे केवल अपना दर्शन ही नही दिया वरन् उन्हें श्री राम का दर्शन भी कराया। श्री राम ने स्वय उन्हे यह आदेश दिया था कि धर्म और समाज की दशा बहुत बिगडती जा रही है, अत तुम दोनो का उद्धार करो। उन्होंने ही उनका नाम रामदास रखा था।

बारहवें वर्ष मे उनकी माता ने बालक नारायण का विवाह रचाने का विचार किया, परन्तु उसके मन मे तो देशोद्धार की लगन थी।

इसलिए वह घर छोड़कर भाग गये हुए और विवाह का अवसर टलने पर घर लौटे। इसपर माँ ने अपनी शपथ दिलाकर विवाह करने को विवश कर दिया। परन्तु अन्तःपट पकड़न की रस्म में ब्राह्मणों के मुख से 'शुभ मगल सावधान' का महामन्त्र सुनकर वे सावधान हो गए और गृह त्यागकर वनस्थली की ओर भाग गए।

गोदावरी गंगा के तीर पर पंचवटी में पहुँचकर वह अपनी तप-साधना में लग गए और बारह वर्ष तक अखंड तप में सलग्न रहे। उसके बाद तीर्थों का भ्रमण करने के लिए निकल पड़े। इस तीर्थ-यात्रा में उन्हें लोगों की मनोवृत्ति को परखने का अवसर मिला। सत्य-धर्म में लोगों की आस्था को निर्बल पाकर उन्होंने पुन अपनी तप पूत प्ररणाएँ देना प्रारम्भ किया।

इन्हीं दिनों छत्रपति शिवाजी महाराज ने श्री समर्थ से दीक्षा लेने का विचार किया। श्री समर्थ की सूक्ष्म दृष्टि ने शिवाजी में योग्य-पात्रता को परख लिया और उन्हें दीक्षा दे दी। साथ ही उन्हें सत्य-धर्म के प्रचार एव स्वराज्य की स्थापना के कार्य में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया। इतिहास इसका साक्षी है कि किस प्रकार शिवाजी ने गुरु की आज्ञा के अनुसार चलकर एक सर्वप्रिय लोकराज्य की स्थापना की। महाराष्ट्र में रामदास जयन्ती विशेष समारोह के साथ मनाई जाती है।

6 कामदा एकादशी

चैत्र शुक्ला एकादशी

कभी-कभी छोटी सी भूल की भी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। धैर्य और साहस यदि हम न खोयें तो अल्प साधनों से भी उन पर आसानी से विजय प्राप्त की जा सकती है जिन्हें हम दुख का पहाड़ कह

सकते हैं। कामदा एकादशी की कथा से हमे यही शिक्षा प्राप्त होती है। चैत्र मास की शुक्ला एकादशी को कामदा एकादशी कहते हैं। इसकी कथा वाराह पुराण में इस प्रकार कही गई है—

नागलोक मे एक पुण्डरीक नाम का राजा था। उसके दरबार मे बहुत-से किन्नर और गधर्व गाना गाया करते थे। एक दिन उसके सामने ललित नाम का गधर्व गान कर रहा था। गाते-गाते उसे अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। इसलिए उसके ताल-स्वर विकृत होने लगे। इस भेद को उसके शत्रु कर्कट ने ताडकर राजा से कह दिया। इस पर पुण्डरीक ने अप्रसन्न होकर उसे राक्षस होने का श्राप दे दिया। राजा के श्राप से ललित राक्षस होकर विचरने लगा। उसकी पत्नी ललिता भी उसके साथ फिरने लगी। अपने पति ललित की दशा देखकर उसे बडा दुख होने लगा। अन्त मे ललिता घूमते-घूमते विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाले महात्मा ऋष्यमूक के पास गई और श्राप से अपने पति के उद्धार पाने का उपाय पूछने लगी। ऋषि ने उसे कामदा एकादशी का व्रत करने का साधन बता दिया। पत्नी के श्रद्धापूर्वक व्रत करने से ललित श्राप से मुक्त होकर अपने गधर्व स्वरूप को प्राप्त हो गया।

7. श्री हनुमज्जयन्ती

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा

चैत्र की पूर्णिमा को सेवा-धर्म के मूर्तिमान प्रतीक श्री महावीरजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। श्री राम कालीन वनचर (वनो मे घूमने वाली) जाति मे उनका जन्म हुआ था। उनकी माता का नाम अंजना और पिता का नाम केसरी था। कुछ लोग उन्हें वानर ही समझते हैं। परन्तु वे साक्षात् भगवान् शकर के अवतार थे। और श्री राम की सेवा के लिए ही वह रूप रखा था। यही उनके जीवन का

या था । उनकी निष्काम सेवा और अनन्य राम भक्ति के कारण भारतीय संस्कृति का प्रत्येक भक्त उनकी पूजा करता है । श्री राम के पावन चरित्र के समान इनका भी चरित्र अत्यन्त पवित्र और ऊँचा है । भारतीय इतिहास मे उनकी महिमा का वर्णन स्वर्णाक्षरों मे अंकित है । यह वीरता के स्वरूप और ससार के ज्ञानियो मे अग्रगण्य माने जाते हैं ।

इनकी राम भक्ति की एक कथा अत्यन्त मार्मिक है । लका जीतने के बाद श्री अवध मे राम के पदार्पण करने पर उनका राज्याभिषेक हुआ । उस समय महारानी सीता ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर एक बहुमूल्य मणियो का हार पारितोषिक के रूप में उन्हें प्रदान किया । हनुमानजी उस चमकते हुए रत्नहार की मणियों के दानो का दाँत से तोड-तोडकर देखने लगे । यह बात श्री राम के अनुज लक्ष्मण को बहुत बुरी लगी । उन्होंने सोचा—वानर को मणियो का मूल्य क्या मालूम । वह उसके महत्त्व को क्या समझे ? इसलिए रोष मे भरकर वह पूछ बैठे—"हनुमान ! यह क्या कर रहे हो ?" हनुमानजी तुरन्त नि शक होकर बोल उठे—"मैंने सुना है कि मेरे प्रभु राम सब म समाए हुए हैं । इसलिए जरा परीक्षा कर रहा था कि इन चमकीले पत्थरों के किस हिस्से मे वह छिपे बैठे हैं ?" श्री लक्ष्मण न उत्तेजित होकर कहा, "क्या राम तुम्हारे कलेजे मे भी छिप बैठे हैं ?" महावीर ने विश्वास क साथ अपने नाखूनों से अपना हृदय चीरकर दिखा दिया और उसमे बैठे हुए श्री राम जानकी का प्रत्यक्ष दर्शन उन्हें करा दिया । उन्ही भक्त शिरोमणि श्री महावीर का जन्मोत्सव आज के दिन प्रत्येक आस्तिक के घर मे मनाया जाता है ।

भारतीय संस्कृति मे हनुमानजी को बल का प्रतीक माना गया है । उनमे सब प्रकार के बलो का विकास हुआ था । यथा—

मनोजव मारुत तुल्य वेग
जितेंद्रिय बुद्धिमता वरिष्ठ
वातात्मज वानरयूथ मुख्य
श्री राम दूत शरण प्रपद्य ।

हनुमानजी केवल शारीरिक बल मे ही पुष्ट नही थे, वे मन की

तरह चचल भी थे। उनका वेग वायु के समान था। उनका शरीर वज्र के समान कठोर और मन पुष्प की भाँति कोमल था। बड़े-बड़े पर्वतो को वह अपने चरण के प्रहार से चूर्ण कर सकते थे और बड़ी-से-बड़ी चट्टान को लेकर आकाश मे उड सकते थे।

इस अपार शारीरिक शक्ति के साथ उनमे मनोबल भी अपार था। वे जितेन्द्रिय थे, सयमी थे, शीलवान, सच्चरित्र और व्रती थे। उन्होने कभी भी अपनी शक्ति का अपव्यय नही किया। उन्होने वासनाओ पर विजय पाई थी। वे बुद्धिमानो मे वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ थे। आमतौर पर लोग यह मानते है कि जिसमे शारीरिक बल अधिक होता है उसमे बुद्धिबल की कमी होती है और जो बुद्धिमान होता है वह शरीर की शक्ति मे दुर्बल होता है। परन्तु हनुमानजी इसके अपवाद थे। शरीर, हृदय और बुद्धि तीनो को बलवान बनाने के बाद एक और भी जरूरी चीज बचती है, वह है—सगठन की कुशलता। हम खुद तो अच्छे हो सकते हैं, परन्तु दूसरो को बनाने की योग्यता प्राप्त करना सबसे महान् गुण है। हनुमानजी मे यह भी गुण था। वे वानर दल के प्रधान थे और उन्हें बडे-बडे कामो के करने की प्रेरणा देते थे। इसीलिए समाज उनकी पूजा करता है।

8 शीतला अष्टमी

वैशाख कृष्ण अष्टमी

शीतला या चेचक के प्रकोप को दूर करने के लिए आज के दिन माँ शीतला के निमित्त व्रत या उपवास किया जाता है। भारत धर्म-प्राण देश है। हमारे यहाँ प्रत्येक बात के मूल मे धार्मिक भावनाएँ समाई हुई है। और यह सत्य भी है कि 'विश्वासो फलदायक'। मानव अपने विश्वास के बल पर असम्भव को भी सम्भव करके दिखा सकता

है। इसी आधार पर चेचक जैसे माता रोग के अवसर पर भौतिक उपचारों का भरोसा छोड़कर लोग देवी-देवताओं की भक्ति पर भरोसा रखकर, चलते हैं, और प्राय उसके परिणाम भी शुभ होते हैं। परन्तु आधुनिक युग ने तो इस तरह के क्षेत्रों में बहुत उन्नति की है। स्वास्थ्य विज्ञान के जानने वाले विशेषज्ञों ने चेचक से बचने के अच्छे से अच्छे साधन ढूंढ निकाले हैं। माता निकलने के अवसर पर बाहरी उपचारों का आसरा छोड़कर बैठे रहने वाले भाई बहनों की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बिना हम यह आग्रह अवश्य करेंगे कि वे लोग आज के युग में की गई खोजों और उसके अनुसार दिये गए सुझावों का लाभ अवश्य उठाएँ। यह ठीक है कि इस रोग में रोगी को अधिक दवा वगैरह नहीं देनी चाहिए।

स्वर्गीय डाक्टर क्रिस्टो का तो यह मत था कि इस रोग के सामान्य आक्रमणों में तो किसी औषधि के देने की जरूरत ही नहीं है। जहाँ इसका प्रचंड कोप हो वहाँ अभी तक कोई औषधि ऐसी नहीं ईजाद हो पाई है जो विश्वासपूर्वक सफलता दे सके। इसलिए रोगी को प्रकृति के भरोसे पर ही छोड़ देना चाहिए। उसी प्रकृति देवी को माता के रूप में मानकर उसका पूजन करना हमारे देशवासियों ने बहुत प्राचीन काल से सीख रखा है। इस दिन बासी खाने की पद्धति है अर्थात् एक दिन पहले का पकाया हुआ भोजन खाया जाता है और इस दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता। इसका वैज्ञानिक आधार खोज निकालने की आवश्यकता है।

9 वरूथिनी एकादशी

वैशाख कृष्ण एकादशी

वैशाख के कृष्ण पक्ष की एकादशी को वरूथिनी एकादशी कहते हैं। भविष्य पुराण में इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं —

द्यूत क्रीडा च निद्रा च ताम्बूल दन्त धावनम् ।
परापवाद पैशुन्य स्तेय हिंसा तथा रतिम् ॥
क्रोध चानृत वाक्य च एकादश्या विवर्जयेत् ॥

एकादशी के व्रत के दिन जुआ खेलना, निद्रा, ताम्बूल, दतधावन, दूसरे की निंदा, क्षुद्रता, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध और झूठ इन ग्यारह बातो का त्याग अवश्य करना चाहिए।

उपर्युक्त नियमो का पालन करते हुए एकादशी का व्रत करने से सब प्रकार के मनस्ताप दूर होते है। व्रत करने वाले को—दशमी को यज्ञ मे अर्पण किया जाने वाला हविष्यान्न भोजन करना चाहिए और रात्रि मे जागरण करके अपने परिवार के लोगो के साथ बैठकर भगवान् के नाम का स्मरण और कीर्तन करना चाहिए। इससे मन के विकार दूर होते है।

10. अक्षय तृतीया

वैशाख शुक्ला तृतीया

वैशाख शुक्ला तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। यह तिथि बसत ऋतु मे पडती है। इस समय ग्रीष्म ऋतु के सब अनाज—जौ, गेहूँ आदि तैयार होकर घरो मे आ जाते है। हमारे देश की प्राचीन प्रथाओ के अनुसार—पहले दान और पीछे भोजन, यह नियम है। आज के दिन जौ के दान का बडा महत्त्व माना जाता है। 'यवोऽसि धान्य राजोऽसि' अर्थात्—'तुम जौ हो, तुम धान्यो के राजा हो।' श्रीमद्भागवत मे श्री कृष्ण ने उद्धव से कहा है कि—'औषधीनामऽह यव' अर्थात्—फसल पकने पर जो पौधे काट लिये जाते हैं उनमे 'यव' मेरा स्वरूप है।

भारत-जैसे कृषि प्रधान देश मे यह अनुभूतियाँ कितने महत्त्व की हैं, इसकी व्याख्या अत्यन्त मधुर और राष्ट्रहित की दृष्टि से उपयोगी है।

राष्ट्र के हित में अधिक से अधिक उपयोग में आने वाली वस्तु की महत्ता को साथ में लिये हुए हमारे त्योहार अपनी उपयोगिता को स्वत सिद्ध करते हैं।

आज तो क्रान्ति का युग है। यह केवल आर्थिक या राजनैतिक क्रान्ति ही नहीं है। यह तो शतमुखी क्रान्ति है। सारा ससार एक खास तरीके की करवट ले रहा है। ऐसे समय में नई दृष्टि भी आवश्यक है। श्रमिकों को अधिक-से-अधिक परिमाण में पेटभर भोजन कैसे मिले यह अत्यन्त प्राचीन काल से भारत का दृष्टिकोण रहा है। इसीलिए दान को सबसे अधिक माहात्म्य दिया गया है और दान भी उस वस्तु का होना चाहिए, जिसे हम अपनी अमूल्य निधि मानते हैं। घर के कूड-कचरे को निकाल फेंकन का नाम दान नहीं है। दान समाज हित की दृष्टि से किया जाता है। उसका सबसे बडा लक्ष्य है जरूरतमन्दों की जरूरत को पूरा करना। इसीलिए दानकर्ता को स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। दान करते समय पात्र का विचार करना बहुत जरूरी है। गीता म कहा गया है कि—

अदेश-काल यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञात तत्तामसमुदाहृतम् ॥
गीता अ० १७ श्लोक २२

अर्थात्—अयोग्य स्थान मे, अयोग्य काल में और अपात्र मनुष्यको तथा बिना सत्कार के दिया हुआ दान तामसी दान है। उससे समाज का हित नहीं होता।

एक पाश्चात्य विद्वान् का कहना है कि—'लोक में दो नीतियाँ प्रचलित हैं। एक ऋण नीति और दूसरी धन नीति।' ऋण नीति का उपासक चुपचाप बैठकर माला फेरता है। मत्र जाप करता है। तीन बार नहाता है चदन और त्रिपुड लगाता है। किन्तु उससे यदि यह पूछा जाय कि देश में फली हुई भुखमरी हटाने के लिए तुमने क्या किया? समाज को नई प्ररणा देने के लिए तुमने क्या-क्या काम किए? लोगों मे फली हुई बेकारी का हटाने मे तुम्हारा क्या योगदान है? इन प्रश्नो के उत्तर देने में वह मौन रह जाता है। तब उसके व्रत, अनुष्ठान

और पर्व सारहीन बन जाते हैं । इसीलिए हर त्योहार को मनाने से पहले उसका सही उपयोग और महत्त्व समझना जरूरी है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति धन-नीति का पालन करता हुआ स्नान सध्या न करे, देव-दर्शन और पूजन एव कथा-कीर्तन में भाग न ले, माला, चन्दन और त्रिपुड मे अटका न रहे किन्तु समाज को अन्याय से मुक्त करने के लिए आतुर हो, गरीबो की मदद के लिए सदा प्रस्तुत हो, दलितो और पीडितो की सेवा के लिए दौड पडे, और उन्हें कष्ट-मुक्त करने के लिए आत्म-बलिदान तक के लिए तैयार रहे, वही मनुष्य समाज मे वन्दनीय है, पूजने के योग्य है । इसीलिए आज के दिन भगवान् परशुराम की जयन्ती मनाई जाती है । उन्होने ब्राह्मण होते हुए भी शोषण करने वाले क्षत्रि-राजाओ के विरुद्ध अस्त्र उठाकर पीडित समाज की रक्षा की थी। आज के युग में हम उनकी हिंसक नीति का प्रश्रय भले ही न लें, परन्तु उनकी समाज-सेवा और अन्यायियो के विरुद्ध खडे होकर अकेले ही मुकाबिला करने की भावना को अवश्य अपना सकते हैं । उनकी कथा यह है—

बहुत प्राचीन काल मे हैहय नरेश कार्तवीर्य अर्जुन ने परशुराम के पिता जमदाग्नि के पास कामधेनु गाय देखी जो मनुष्य की सभी अभिलाषाओ को पूर्ण करती थी । कार्तवीर्य ने गाय उनसे माँगी और उनके मना करने पर उसने उन्हें मार डाला । सयोगवश उस समय परशुराम वहाँ नही थे। वह जब कही से वापस लौटे तब उन्होंने अपनी माता से सारा हाल सुना। इससे उनका क्रोध भडक उठा। उन्होंने महिष्मती नगर मे पहुँचकर कार्तवीर्य को ललकारा और उसकी असख्य सेना सहित उसका सहार किया । उसके अन्य साथी परशुराम से बदला लेने के लिए दौड पडे । इक्कीस बार उन्होने इस धरती के बडे-बडे क्षत्रिय योद्धाओ का विनाश किया और उनके द्वारा किए जाने वाले उग्र कर्मों से अनेक पीडितो को बचाया।

सीता स्वयवर मे श्री राम के द्वारा जनकपुर में अपने इष्टदेव शिव का धनुर्भंग सुनकर वह पुन दौडपडे परन्तु श्री राम के शील-सौजन्य से प्रसन्न होकर उन्होने अपना धनुष और बाण श्री राम को समर्पण करके सन्यस्त

जीवन व्यतीत करने का सकल्प ले लिया। आसाम राज्य की उतरी पूर्वी सोमा पर, जहां से ब्रह्मपुत्र नद भारत में प्रवेश करता है वहां एक परशुराम कुड है, वही उन्होने अपने परशु का त्याग किया। यह भी अनुमान है कि इसी कुड को खोदकर परशुराम ने ब्रह्मपुत्र को भारत भूमि मे लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया। जयन्ती मनाने का विधान भी सभवत तभी से प्रचलित हुआ होगा। अक्षय तृतीया उन्ही पराक्रमी परशुराम के शौर्य सेवा और सयम की कथा सुनाती है।

11 सूरदास जयन्ती

वैशाख शुक्ला पचमी

भक्ति रस के रसज्ञ वैष्णवो के समुदाय पर जिस सत ने अपनी वाणी का चमत्कारी प्रभाव अकित किया है वह है महात्मा सूरदास। आपका जन्म सवत् 1635 मे आगरा से मथुरा जाने वाली सडक के किनारे बसे हुए रुनकता ग्राम मे हुआ था। इनके पिता श्री रामदासजी सारस्वत ब्राह्मण थे। सूरदास मे बचपन से ही प्रतिभा का अलौकिक निखार था। कृष्ण प्रेम म शराबोर होकर उन्होने अलौकिक गीतो की रचना की थी। उनके बारे मे यह दोहा हिदू समाज मे बहुत प्रचलित है—

> सूर सूर तुलसी शशि उडगन केसवदास।
> अबके कवि खद्योतसम जहँ तहँ करत प्रकास॥

प्रस्तुत ग्रथ मे हमे उनकी कवित्व शक्ति की आलोचना नही करनी है। हमारा उद्देश्य तो केवल उनकी उस शक्ति से लोगो को परिचित कराने का है जिससे उन्होने समाज को एक नए ढग से कुछ सोचने या समझने की राह दी। इस दिशा मे सूर की प्रतिभा अपने धर्म गुरु श्री वल्लभाचार्यजी से भी आगे बढ गई है। सूरदास के समय से

पहले हिन्दी भाषा के कवियो ने या तो शृ गार-रस-धारा बहाकर लोगो को विषयो की ओर प्रवृत्त किया था या राजाओ के दरबार मे रहकर उनकी स्तुति की थी। समाज की विषयोन्मुखी प्रवृत्ति को कृष्ण-भक्ति की ओर मोड देने मे सूर का प्रयत्न अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। अनन्य-भक्ति की भावनाओ से भरा हुआ लगभग सवालाख पद्यो का 'सूर-सागर' उनकी एक अमर रचना है। इसमे विशेषकर वात्सल्य रस की जो धारा महात्मा सूरदास ने प्रवाहित की है उसकी समता विश्व का कोई भी कवि नही कर सकता। और केवल वात्सल्य रस ही नही गोपियो के अनन्य हरि अनुराग की महिमा को प्रकट करते हुए उन्होंने भ्रमरगीत मे उद्धव के ब्रह्मज्ञान का जो उपहास उडाया है वह अपने ढग का एक अनोखा तत्व-दर्शन ही कहा जा सकता है। उसमे इनकी उत्कृष्ट कृष्ण अनुराग की छाया स्पष्ट दीख पडती है।

बौद्धो के शून्यवाद को अद्वैत की एकान्तिक भावना मे रंगकर जगतगुरु भगवान् शकराचार्य ने समाज को एक ऐसी विचारधारा प्रदान की जिसने धार्मिक जगत् मे एक महान क्रान्ति का युग ला दिया। ठीक उसी तरह अद्वैत की भावना को सरसता का जामा पहनाकर कृष्ण-भक्ति के रस के साथ सूर ने जन-जीवन के मानस को अनन्यता की ओर बढने की प्रेरणा प्रदान की। उनका पूरा साहित्य रस माधुरी ब्रजभाषा मे है। भाषा की सरसता के साथ ही भावो की सरसता का सम्मिश्रण पाकर समाज उनकी वाणी से उपकृत हुआ। लोगो ने धार्मिक क्रान्ति के नेता के रूप मे उनका अभिवादन किया। कहते हैं कि उनके अनेक पद्यो की पूर्ति स्वय उनके इष्टदेव भगवान् मुरली मनोहर ने की है।

सूरदासजी जन्म से ही अधे थे और रोजाना मथुरा के प्रभु श्री द्वारिकाधीश के मदिर मे दर्शनार्थ जाया करते थे। इस पर कुछ चचल वृत्ति के लोगो ने उनपर एक तीखा व्यग कसते हुए प्रश्न किया कि—'बाबा! तुम यहाँ क्या करने आते हो?" बात तो सीधी सी थी, परन्तु तीखेपन से खाली नही थी। ठीक भी तो है। अधे को दर्शनो मे क्या दिखाई देता होगा? परन्तु सूरदासजी ने बडे धैर्य के साथ उत्तर दिया—

"भैया, मेरी आँखें फूटी हैं परन्तु उस जगत् के मालिक की आँखें तो फूटी नहीं हैं। वह तो देखता ही है कि एक अंधा उसके दरबार में आकर अपनी हाजिरी बजा गया।" सूर के इस उत्तर ने लोगों को निरुत्तर कर दिया। कदाचित् इसी बात को सूर ने अपने इस दोहे मे लिखकर प्रकट किया है—

बाहर नैन विहीन सो, भीतर नैन विशाल।
जिन्हें न जग कछु देखियो, लखि हरि रूप रसाल।।

अपने गुरु श्री स्वामी वल्लभाचार्यजी महाराज से कृष्ण प्रेम की दीक्षा लेकर जब सूरदास व्रज-वीथियो के करण करण मे अपने इष्टदेव की खोज मे भटक रह थे, उस समय वह किसी अंधे कुएँ मे गिर पडे। भगवान् मुरली मनोहर ने ही उन्हें सहारा देकर उसमे से निकाला। सूर को प्रभु के उस कर-स्पर्श मे ही मोक्ष की सरस शीतलता का अनुभव हुआ। बाहर के नेत्र बद होते हुए भी उन्होंने अपने सहायक प्रभु को पहचान लिया। परन्तु प्रभु तो अपना हाथ छुडाकर चल दिए। सूर ने भटकते हुए गुहार लगाकर ज़ोर से अधीर होकर कहा—

हाथ छुडाए जात हो, निबल जान मे मोहि।
हिरदै सों जब जाहुगे, सबल बदोंगो तोहि।।

रासेश्वरी महारानी राधिका का चिर-वियोगिनी के रूप मे वर्णन करके महात्मा सूर ने अपने हृदय की उस छटपटाहट का चित्र खीचा है जिसमे अनेक जन्मो से हरि मिलन की भावनाएँ तडप रही हो। भगवद्दर्शन एक ही जन्म मे हो जाता हो ऐसा सौभाग्य किसी विरले को ही मिलता है। उन्हें पाने के लिए तो लाखो जन्मो का पुण्य चाहिए। परन्तु उस पुण्य को धीरे-धीरे अनेक तप व्रत और अनुष्ठानो को साधते हुए जीव की एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब उसका इष्ट स्वयं अपने जन की खोज करने के लिए आकुल हो उठता है। महात्मा सूर और उनकी विरहिणी राधिका दोनो ही इस अवस्था के मूर्तिमान प्रतीक हैं। ऐसे सत का पावन चरित्र, उसकी तन्मयता के गीत किस मानव की हृतन्त्री को झकृत न कर देंगे ?

कृष्ण प्रेम के इस मूर्तिमान विग्रह की पुण्य स्मृति मे इस वैशाख

शुक्ला पचमी को उनकी जयन्ती मनाकर हम अपने आदर का परिचय ही नही देते, वरन् उनकी अमर वाणी का तत्व अपने जीवन की गागर मे भर लेने का प्रयत्न करते हैं। भारतीय समाज उस महात्मा के चरणो मे श्रद्धा के साथ अपनी भक्ति पुष्पाञ्जलि अर्पण करता है।

12. श्री शंकर जयन्ती

वैशाख शुक्ला पंचमी

वैशाख शुक्ला पचमी को पडित शिवगुरु की पत्नी विशिष्टा देवी के गर्भ से आचार्य शकर का जन्म वि० स० 845 (ई० 788) में हुआ। भारत के सुदूर दक्षिण मे केरल प्रदेश के अन्तर्गत कोचीन शोरानूर रेलवे लाइन के आलबाई स्टेशन से पाँच या छ मील दूर कालटी ग्राम को भगवान् शकराचार्य की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है।

शकर एक प्रतिभा सम्पन्न शिशु थे। तीन वर्ष की अवस्था मे ही उन्होंने अपनी मातृभाषा मलयालम् का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनके पिता की यह उत्कट अभिलाषा थी कि उनका पुत्र सस्कृत भाषा का उच्चतम ज्ञान प्राप्त करे। किंतु असमय मे ही उनकी मृत्यु हो गई। तब इनके विकास का भार माता विशिष्टादेवी के कधो पर आ पडा। उन्होने पाँचवें वर्ष मे इनका उपनयन कराके वेदाध्ययन के लिए गुरु के आश्रम मे भेज दिया। वहाँ अपनी प्रखर-प्रतिभा से बालक शकर ने अपने गुरु को भी चकित कर दिया।

माँ की यह लालसा थी कि पुत्र के योग्य होने पर जल्दी से उसका विवाह करके पुत्र वधू का मुख देखे। परन्तु शकर को ससार के विषयो से विरक्त होकर सन्यास धारण करने की चिंता उद्विग्न कर रही थी। इसी समय किसी ज्योतिषी ने उनकी कुण्डली देखकर आठवें अथवा सोलहवें वर्ष मे उनका भीषण मृत्यु योग बतलाया, जिसने उनके चित्त

को वैराग्य की ओर बढने का और भी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने सन्यास लेकर लोक सेवा का सकल्प भी ले लिया। बडी कठिनाइयो में वह इस मार्ग पर चलन की आज्ञा अपनी माता से प्राप्त करने मे सफल हुए।

नर्मदा के तीर पर एक गहन गुफा मे उन्होने योग सूत्रो के रचयिता महर्षि पतञ्जलि के अवतार आचार्य गोविंद भगवत्पाद से वेदान्त धर्म की शिक्षा ग्रहण की। यहाँ लगभग तीन वर्ष तक वे अद्वैत तत्व की साधना करते रहे, और उन्ही से सन्यास मार्ग की दीक्षा लेकर लोकोपकार मे प्रवृत्त हो गए। सन्यास धर्म को ग्रहण करने के बाद आचार्य शकर भगवान् विश्वनाथ का दर्शन करने काशी पहुँचे। राह मे उन्होंने चार भयानक कुत्तो से घिरे हुए एक चाण्डाल को देखा। वह राह रोककर खडा हुआ था। शकर ने उसे एक ओर हट जाने का आदेश दिया। परन्तु उस चाण्डाल ने कहा—

शुचिर्द्विजाऽह श्वपच व्रजेति
मिथ्याग्रहस्ते मुनिवर्य कोऽयम्।
सत शरीरेष्व शरीरमकम्
उपेक्ष्य पूर्णं पुरुष पुराणम्॥

—शाकर दिग्विजय, सर्ग ६, श्लो०, ३०

हे मुनिवर्य! मैं पवित्र ब्राह्मण हूँ तुम श्वपच हो इसलिए एक ओर हटो। यह आपका मिथ्याग्रह कैसा है? क्योकि सभी शरीरो मे रहने वाले एक पूर्ण अशरीरी पुराण पुरुष की उपेक्षा करने का साहस तुम कैसे कर रहे हो?

चाण्डाल के मुख से उपरोक्त देववाणी का सदेश पाकर आचार्य शकर ने कहा—

यत्र यत्र च भवेदिह बोधर
तत्तदर्थ समवेक्षण कात।
बोधमात्रमवशिष्टयह तद्-
यस्य धीरिति गुरु स नरो म॥

इस ससार मे विषय के अनुभव के समय जहाँ-जहाँ ज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ सब उपाधियो से रहित ज्ञान स्वरूप मैं ही हूँ। मुझ

से भिन्न और कोई पदार्थ नही हैं, ऐसी जिसकी बुद्धि है वही मेरा गुरु है।

यह कहकर उन्होंने चाण्डाल को प्रणाम किया। उसी क्षण उन्हें चाण्डाल के स्थान पर स्वयं देवाधिदेव शकर और कुत्तों के स्थान पर चारो वेदों का दर्शन हुआ। इस रीति से सत्य-ज्ञान प्राप्त करके वह वहाँ से आगे बढ़े और काशी पहुँचकर वेदान्त सूत्रों का भाष्य लिखना आरम्भ किया। काशी से चलकर आचार्य शकर महिष्मती नगरी में सुप्रसिद्ध कर्मठ कर्मकांडी आचार्य मंडन मिश्र से मिलने गए। राह में उन्हें मंडन के यहाँ पानी भरने वाली दासियाँ मिल गईं। दैवात् उन्होंने उनसे मडन मिश्र के घर का पता पूछा। उन्होंने तेजस्वी ब्रह्मचारी शंकर की ओर देखकर कहा—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
कीरागना यत्र गिरा गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धा
जानीहि तन्मडनं पडितौ क.।

शा० दिग्विजय० स० ८।६

दासियों ने कहा—जिस द्वार पर पिंजड़े टँगे हों और उनके भीतर बैठी हुई मैना—वेदवाक्य स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, फल का देने वाला कर्म है या ईश्वर तथा जगत् ध्रुव है या अध्रुव है, इस बात पर विचार कर रही हो, उसे ही मंडन पंडित का घर समझ लीजिएगा।

आचार्य शकर उन दासियों की वाक्चातुरी और विद्वान् मडन के पक्षियो का हाल सुनकर चकित हो गए। किन्तु उनके पास पहुँचने पर उन्होंने अपनी युक्तियों से आचार्य मडन की युक्तियों का खण्डन करके उन्हें शास्त्रार्थ मे परास्त कर दिया।

शंकर और मंडन के वाद-विवाद में निर्णायिका मडन की विदुषी पत्नी शारदादेवी थीं। उन्होने अपने पति की पराजय देखकर आचार्य से कहा—"महात्मन्! अभी आपने आधे ही अंग को जीता है। इसलिए शास्त्रार्थ में मुझे अपनी युक्तियो से परास्त करके ही आप विजयी

घोषित किये जायेंगे।" आचार्य ने उसके प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार कर लिया। शारदादेवी ने काम शास्त्र पर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। परन्तु शंकर तो बाल-ब्रह्मचारी थे। उन्हें काम-शास्त्र का कोई ज्ञान न था। इसलिए वह शारदादेवी के प्रश्नों का उत्तर न दे सके। उन्होंने उसके लिए कुछ समय मांगा और परकाय प्रवेश करके तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करके उसे परास्त कर दिया। दिग्विजयी होकर शंकर ने इस देश में फैली हुई नास्तिकता को दूर करने का दृढ संकल्प कर लिया। उन्होंने कई मठ स्थापित किए और वेदान्त धर्म का प्रचार करते हुए अनेक ग्रन्थ लिखे और तैंतीस वर्ष की अवस्था में इस पार्थिव शरीर को त्याग करके परमपद प्राप्त किया।

आचार्य शंकर का इस देश पर महान् उपकार है, उसके लिए किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें। वे शंकर के अवतार थे। हम लोग उनके चरित्र से अपने जीवन को पवित्र बनाएं। यह श्रद्धांजलि देने के लिए ही प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला पंचमी को शंकर जयन्ती का आयोजन किया जाता है।

13. रामानुज जयन्ती

वैशाख शुक्ला षष्ठी

वैशाख के शुक्ल पक्ष की छठ को परम वैष्णव संत श्री रामानुजाचार्य की जयन्ती मनाई जाती है। आचार्य शंकर के बाद शुष्क अद्वैत साधन को भक्ति की सरसता का रंग देकर उन्होंने समाज को एक नवीन विचारधारा प्रदान की।

आचार्य रामानुज में गौतम बुद्ध की-सी दया, ईसा की सहनशीलता और प्रेम तथा लोगों में कर्त्तव्य-निष्ठा और धर्म की लगन उत्पन्न कराने का अदम्य उत्साह था। तिरुकोट्टियूर के संत महात्मा नाम्बि से

उन्होने अष्टाक्षर मन्त्र की दीक्षा ली थी। महात्मा भाम्बि ने उन्हे गुरु-मन्त्र लेते समय उसे गुप्त रखने का आदेश दिया था। परन्तु श्री रामानुज ने सभी वर्णों के लोगो को एकत्र करके एक मदिर के शिखर पर खडे होकर सब लोगो को जोर-जोर से 'ओ नमो नारायणाय' का अष्टाक्षर मत्र सुनाया और सबको जोर से कहने के लिए उत्साहित किया। महात्मा भाम्बि ने जब यह हाल सुना तो वह बडे रुष्ट हुए और बोले—मेरी आज्ञा को भग करने के अपराध मे तुम्हे घोर नर्क भोगना पडेगा। श्री रामानुज ने इस पर बडी विनम्रता के साथ निवेदन किया कि भगवन्! यदि आपके दिये हुए महामत्र से हजारो व्यक्ति नर्क की यन्त्रणा से बच सकते हैं, तो मैं नर्क का दुःख भोगने को तैयार हूँ। रामानुज के इस उत्तर से गुरु का क्रोध जाता रहा और उन्होने अपने इतने प्यारे शिष्य को हृदय से लगा लिया।

रामानुज की यही प्राणिमात्र को जीवन की यथार्थ भावना देने की लगन उत्तरोत्तर बढती चली गई। उन दिनो श्री रगम पर चोल देश के राजा कुलोत्तुंग का अधिकार था। वे बडे कट्टर शैव थे और अपनी मान्यताओ के विरुद्ध कुछ भी कहने वाले को मृत्यु दण्ड दे देते थे। एक बार राजा ने इन्हें भी अपने दरबार मे बुलवाया। रामानुज उसके अभिप्राय को समझ गए। वह निर्भीक होकर जाने के लिए तैयार हो गए। परन्तु इनके शिष्य कूरतालवार ने कहा—प्रभो! पहले मुझे उस मिथ्याभिमानी के दरबार मे हो आने दीजिए। यदि वह मेरी बातो से वैष्णव धर्म की महत्ता स्वीकार कर ले तब आपका वहाँ पधारना उचित होगा। रामानुज ने इसे स्वीकार कर लिया। कूरतालवार रामानुज का सा वेष बनाकर वहाँ चले गए और राजा के सामने वैष्णव-धर्म की महानता एव कोमलता का वर्णन किया। राजा ने क्रुद्ध होकर उनकी आँखें निकलवा ली। श्री रामानुज को इस घटना से बडा दुःख हुआ। उन्होने उसी दिन अपने नेत्रहीन शिष्य को लेकर श्री रगम का परित्याग कर दिया। राह मे कुछ डाकुओ ने उन पर आक्रमण किया। परन्तु आसपास के रहने वाले अछूतो ने उनकी रक्षा की। इन लोगो के प्रेम ने उन्हें मुग्ध कर दिया। इसलिए तिरुनारायणपुर के मन्दिर

—जिसे उन्होंने स्थापित किया था—में अछूतों के प्रवेश की आज्ञा प्रदान कर दी और अछूतों का नाम तिरुक्कुलत्तर (हरिजन) रखा।

कुलोत्तुंग का देहान्त हो जाने पर आचार्य रामानुज ने श्री रंगम में प्रवेश किया। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने उनसे वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली। धीरे-धीरे शैवों को अपने मत से प्रभावित करके उन्होंने साम्प्रदायिक कटुताओं को दूर हटाने का सुदृढ़ प्रयत्न किया। देश-भर में भ्रमण करके लोगों में वैष्णव-धर्म का प्रचार किया। उनकी दृष्टि में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच और धनी तथा निर्धन का एक-सा महत्त्व था। प्रेम, दया और भक्ति के गुणों से मानव के जीवन को अलंकृत करने का व्रत उन्होंने अपने जीवन में अपना लिया था। इसलिए लोगों को पारस्परिक प्रेम और सद्भाव का उपदेश देते हुए उन्होंने अनेक मन्दिरों की स्थापना कराई और लोगों को दीक्षित किया।

श्री रामानुज के सिद्धान्त के अनुसार पुरुषोत्तम भगवान् ही जगत् के आधार हैं। वे प्राणिमात्र में समान रूप से व्याप्त हैं। अपने व्यक्तिगत अभिमान को मिटाकर समष्टि में भगवान् के रूप को साक्षात् करना ही सही भगवदुपासना है। धर्म आत्मा के प्रकाश और भगवत्मिलन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसी धर्म की स्थापना करने के लिए जगन्नियन्ता प्रभु इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और धर्म से विमुख लोगों को जीवन की सीधी-सादी राह दिखाते हैं। भगवान् लक्ष्मी-नारायण इस जगत् के माता-पिता हैं। माता-पिता का प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना सन्तान का सबसे बड़ा धर्म है। वाणी से भगवान् का नाम-स्मरण करना और शरीर से उनकी सेवा करनी चाहिए। इन्हीं उपदेशों को पाकर समाज ने स्वामी रामानुजाचार्य की प्रतिष्ठा की। उनका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत मत कहलाता है। वैशाख शुक्ला छठ को उनकी स्मृति में देश के कोने-कोने में समारोह होते हैं, जिनमें वैष्णव मत के मानने वाले लोगों के साथ-साथ विद्वान मंडली श्री रामानुज की पुण्य-स्मृति में श्रद्धांजलि समर्पण करती है।

14. गगा सप्तमी

वैशाख शुक्ला सप्तमी

वैशाख शुक्ला सप्तमी को गगा सप्तमी कहते हैं। भारतवर्ष के लगभग 1500 मील के लम्बे क्षेत्र को अपने निर्मल जल से सिंचित करने वाली पवित्र गगा नदी की महिमा का वर्णन करते हुए आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे एक अद्भुत कथा लिखी है कि सूर्य के वश मे उत्पन्न महाराजा सगर के परपौत्र राजा भगीरथ ने अपने पैरो के एक अगूठे पर खडे रहकर एक वर्ष पर्यंत भगवान् शकर की आराधना की। एक वर्ष बीतने पर शकर ने महाराज भगीरथ के सामने प्रकट होकर कहा—राजन्! इस कठोर तप को करने का क्या उद्देश्य है? महाराज भगीरथ ने कहा—देवाधिदेव, पूर्वजो के समय से ही इस देश मे स्वर्ग से गगा की निर्मल धारा को लाने का एक अविरल प्रयत्न हमारे वश मे हो रहा है। आपके आशीर्वाद से हमे अपने उस श्रम के वरदान मे प्रजापति ब्रह्मा से यह आश्वासन मिल चुका है कि वह गगा की विमल जल धारा को स्वर्ग से छोड देंगे। परन्तु उनका कहना है कि गगा के वेग को सिवाय आपके और कोई नही सम्हाल सकता। अत यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके गगा का भार सम्हालने का वचन प्रदान करें। यह सुनकर शकर ने कहा—

प्रीतस्तेऽह नरश्रष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्।
शिरसाधारयिष्यामि शैलराज सुतामहम्॥

—वा० रा० स० ४३ श्लोक ३

नर श्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और मैं तुम्हारा प्रिय कार्य पूरा करूँगा। हिमवान की कन्या गगा को मै अपने मस्तक पर रोकूँगा।

उसके बाद सब लोको के द्वारा पूजित गगा बहुत बडे विकट प्रवाह के रूप मे दुस्सह वेग से आकाश से शिव के मस्तक पर गिरी। उस समय परम दुर्धरा गगादेवी ने सोचा कि अपनी धाराओ के साथ मैं महादेव को लेकर पाताल लोक मे घुस जाऊँगी। गगा का यह

लिखा हुआ था कि--' मैंने आज तक जो राज्य स्थापित किया है वह सब गुरुदेव के चरणों मे अर्पण है ।" शिवाजी की ऐसी गुरुभक्ति देखकर श्री समर्थ बडे प्रसन्न हुए । परन्तु उन्होंने पूछा—"राज्य तो तुमने मुझे दे दिया, अब तुम क्या करोगे ?' शिवाजी ने कहा—"आप की सेवा करूँगा ।" कहते हैं उस समय शिवाजी ने श्री समर्थ की झोली अपने कंधो पर रखी और गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर नगर में भिक्षा माँगी । समर्थ के भोजन करने के बाद स्वय उसी मे से उनका प्रसाद खाया । बाद मे श्री समर्थ न उनसे कहा—' मैं यह राज्य लेकर क्या करूंगा ? राज्य करना तो क्षत्रियो का काम है । तुम सुचारु रूप से इसका पालन करके प्रजा को सुखी करो । यही मेरी सबसे बडी सेवा होगी ।" इसके उपरान्त उन्होंने श्री रामचद्रजी की वह कथा सुनाई जिसमे उन्होंने गुरु वशिष्ट को अपना सारा राज्य अर्पण कर दिया था और वशिष्टजी ने उन्हे प्रजा-पालन का उपदेश दिया था । अत में उन्होंने शिवाजी को यह उपदेश दिया कि—' मेरी ओर से प्रधान मत्री के रूप मे तुम्हीं इस राज्य का सचालन करो ।" शिवाजी ने नत मस्तक होकर कहा— अच्छा तो अपनी खडाऊ मुझे प्रदान करें । मैं उसी को सिंहासन पर रखकर के आपके आमात्य के रूप मे राज्य के सारे काम करूंगा । सब लोगो को यह सूचित करने के लिए कि यह राज्य श्री समर्थ का है शिवाजी न अपने राज्य की ध्वजा का रग भगवा कर दिया, जिस रग के वस्त्र श्री समर्थ पहनते थे।

छत्रपति शिवाजी वास्तव मे और सच्चे अर्थ मे राष्ट्र निर्माता थे जिन्होंने भारतीय सस्कृति के पुन प्रतिष्ठान का अनुष्ठान अपने जीवन-काल मे पूर्ण कर डाला । सारे महाराष्ट्र म विशेष रूप से तथा पूरे भारतवर्ष में साधारण तौर पर इस पुण्य पर्व को बडे समारोह के साथ मनाया जाता है ।

16 मोहनी एकादशी

वैशाख शुक्ला एकादशी

कूर्म पुराण मे मोहनी एकादशी के बारे मे एक कथा मिलती है कि—सरस्वती नदी के तीर पर बसी हुई भद्रावती नगरी मे द्युतिमान नाम का राजा राज करता था। उसके कई पुत्र थे। एक लडके का नाम धृष्टबुद्धि था। वह बहुत पापाचारी था। जुआ खेलना, व्यभिचार करना दुजनो का सग और बड बूढो का अपमान करना इत्यादि दुर्गुणो का वह पुंज था। उसकी बुराइयो से दुखी होकर पिता ने उसे घर से निकाल दिया। तब वह वन मे रहने लगा। वहाँ भी वह लूटमार करता और जानवरो को मारकर खाता था। एक दिन वह अपने किसी पुण्य सस्कार वश कौडिन्य मुनि के आश्रम पर आ पहुँचा। यह महात्मा सूक्ष्मदर्शी थे। एक बार देखते ही उन्होने धृष्टबुद्धि के मन का रहस्य जान लिया। वह बोले —

य॰ साधूश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वपिए ।
प्रत्यक्ष कुरते परोक्षममृत हालाहल तत्क्षणात् ॥
तामाराधय सत्क्रियां भगवती भोक्तुं फल वाञ्छित ।
हे साधो ! व्यसनैर्गुणेपु विपुल स्वास्था वृथा मा कृथ ॥

अर्थात्—मनोवाछित फल चाहने वाले पुरुषो ! दूसरी बातो मे वृथा कष्ट और परिश्रम न करके केवल सत्क्रिया रूपी भगवती की आराधना करो। यह दुष्टो को सज्जन मूर्खों को पडित, शत्रुओ को मित्र गुप्त विषयो को प्रकट एव हलाहल विष को भी अमृत कर सकती है।

महात्मा की सीख और थोडी देर के सत्सग से धृष्टबुद्धि का मन बदल गया। वह अपने गत जीवन के अपराधो को स्मरण करके क्षुब्ध हो उठा। उसने विनम्र होकर अपनी आत्मशान्ति का उपाय पूछा। कौडिन्य ऋषि ने उसे इस एकादशी के व्रत करने का उपाय बता दिया। इसी के फलस्वरूप उसकी बुद्धि निर्मल हो गई और वह सच्चरित्रो की भांति जीवन व्यतीत करने लगा। इस एकादशी व्रत का

अभिमान देखकर शंकर बड़े क्रुद्ध हुए और त्रिनयन-शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में छिपा लेने का विचार किया। वह पवित्र गंगा शिव के मस्तक पर गिरी और हिमवान के समान शिव की जटाओं के गह्वर जाल में समा गई। पृथ्वी पर आने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। पर वह आ न सकीं। बहुत वर्षों तक उन्हें बाहर जाने की राह ही न मिली। इस पर भगीरथ महाराज ने अत्यन्त चिन्तित होकर पुन. अपने तप से शिव को प्रसन्न करके गंगा को मुक्त करने का वर माँगा। आशुतोष शिव ने धीरे-धीरे अपनी जटाओं से गंगा को मुक्त किया। राजा भगीरथ एक रथ पर बैठकर आगे-आगे चले और उनके पीछे गंगा की निर्मल जल-धारा बड़े वेग से प्रवाहित होती हुई आगे बढ़ी। सब जलचर गंगा के पीछे-पीछे प्रसन्न होकर चले। जिधर-जिधर राजा भगीरथ जाते थे उधर-उधर गंगा भी चली जा रही थीं।

उस समय अद्भुत कार्य करने वाले जन्हुमुनि यज्ञ कर रहे थे। गंगा ने उनकी यज्ञ सामग्री बहा दी। गंगा के इस उद्धतपने से वे ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक अद्भुत काम किया। गंगा का समस्त जल पी लिया।

यह देखकर स्वर्ग के देवता, गंधर्व और ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महात्मा जन्हु की उन सबने मिलकर पूजा की और कहा कि गंगा आपकी कन्या के नाम से जगत् में विख्यात होगी। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और अपने कानों की राह से उन्होंने गंगा को निकाल दिया। इसी से गंगा जान्हवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

उसी पुनीत दिवस की स्मृति में आज तक 'गंगा सप्तमी' के नाम से इस तिथि को हमारे देश में मनाया जाता है।

15 शिवा जयन्ती

वैशाख शुक्ला अष्टमी

विक्रमीय सवत् 1737 की वैशाख शुक्ला अष्टमी को महाराष्ट्र प्रदेश मे दक्षिण के सुप्रसिद्ध वीर छत्रपति महाराज शिवाजी की याद को चिरस्मरणीय रखने के लिए, शिवा जयन्ती बडी भावना के साथ मनाई जाती है।

शिवाजी महाराज ने भारत मे सुराज्य स्थापित करने का सबल प्रयत्न किया था। उनका निजी जीवन अत्यन्त सादा और धर्ममय था। उह राष्ट निर्माण की प्ररणा अपने धर्मगुरु श्री समर्थ रामदासजी महाराज से मिली थी। शिवाजी को दीक्षा देते समय उन्होने कहा था कि ' लोगो मे धर्म भाव तथा आत्म-गौरव का ह्रास हो जाने के कारण ही देश की इतनी अवनति हुई है। और यदि लोगो मे फिर से यथेष्ठ धर्म प्रचार और जागृति उत्पन्न कर दी जाय तो इस दुदशा का अत हो सकता है। श्री समथ ने सदैव इसी विचार के अनुसार सब काम किए और शिवाजी से भी वैसे ही काम कराए। उनके उपदेशो का प्रभाव शिवाजी के जीवन पर यहाँ तक पडा था कि वह राज्य कार्यो को भी उनसे सकेत लिए बिना नही चलाते थे।

ईस्वी सन् 1665 अर्थात विक्रमीय सवत 1722 की बात है कि एक बार श्री समथ सतारा मे अपने दूसरे शिष्यो के साथ भिक्षा माँगने के लिए निकले और घूमते हुए सतारा के किले मे पहुँचे। वहाँ द्वार पर खड होकर उन्होने 'जय जय श्री रघुवीर समथ' का जय घोष किया। उस समय श्री शिवाजी महाराज उस किले मे ही थे। उन्होग सोचा कि ऐसे सुयोग्य और सत्पात्र गुरु की झोली मे डालने के लिए कुछ उपयुक्त भिक्षा चाहिए। अत उन्होने अपने लेखक से एक दान पत्र लिखवाया और बाहर आकर वही दानपत्र श्री समथ की झोली मे डाल दिया। श्री समथ ने पूछा— यह क्या है ?'' शिवाजी ने कहा— भिक्षा है ?'' श्री समथ ने वह दान पत्र झोली मे से निकालकर पढा। उसमे

साधना करने वाला साधक यदि अपने जीवन में सत्क्रिया अर्थात् सदाचरण को ढालने का सक्षम प्रयत्न करे तो उसे अवश्य मोहन मंत्र और मनोवाञ्छित फलों की प्राप्ति होगी ।

17 नृसिंह चतुर्दशी

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को बाल-भक्त प्रह्लाद का मान रखने के लिए त्रैलोक्यपति भगवान् विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण किया था। आज उन्हीं की पवित्र स्मृति को सजग रखने के लिए यह त्योहार मनाया जाता है । परन्तु सत्य तो यह है कि आज के दिन भगवान के नरसिंह रूप में प्रकट होने से अधिक महत्ता उस पांच वर्ष के बालक के अटल विश्वास की है जिसकी रक्षा के लिए उन्हें प्रकट होना पड़ा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक स्थान पर लिखा है—

प्रेम बढ़ो प्रह्लाद को जिन पाहन ते परमेसुर काढ ।

नृसिंह का अवतार भक्त के विश्वास और दृढ़ता का एक ज्वलंत उदाहरण है। ईश्वर सब व्यापी है—यदि यह विश्वास हृदय में अटल है तो वह पत्थर में से भी प्रकट हो सकता है । यही बात इस अवतार से सिद्ध होती है । कहते हैं—बहुत प्राचीन काल में कश्यप नाम के एक नरेश थे । उनकी पत्नी का नाम दिति था । दिति के गर्भ से दो पुत्र हुए। एक का नाम था हिरण्याक्ष और दूसरे का नाम हिरण्यकशिपु था । दोनों बड़े पराक्रमी थे। हिरण्याक्ष को वाराह रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने मारा था। इसी से क्रुद्ध होकर हिरण्यकशिपु ने विष्णु से अपना बदला लेने का निश्चय किया। उसने अपने तप से प्रजापति ब्रह्मा को प्रसन्न करके अजेय होने का वर प्राप्त किया। बाद में उसकी कठोरता और अत्याचार बढ़ने लगे। संसार में अपने

सभी शत्रुओ को परास्त करता हुआ वह विष्णु का कट्टर विरोधी वन बैठा। दैवयोग से उसकी पत्नी कयाधु के गर्भ से परम विष्णु-भक्त बालक प्रह्लाद का जन्म हुआ। बालक चद्रमा की कला की भाति दिनो-दिन बढने लगा। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत के अनुसार बालक प्रह्लाद मे शैशव काल से ही सरसता, दया, श्रद्धा और विष्णु-भक्ति के चिन्ह प्रकट होने लगे, जिसके कारण उसे अपने पिता का कोप-भाजन बनना पडा। परन्तु पिता के अत्याचारो को सहते हुए भी बालक प्रह्लाद का मन डिगा नही और विश्वास के पथ मे उसकी निष्ठा दिनो दिन दृढ होती गई।

एक दिन नगी तलवारो से सुसज्जित चौदह हज़ार राक्षसो से भरे हुए दरबार मे अपना खड्ग चमकाता हुआ क्रूर हिरण्यकशिपु बालक प्रह्लाद से रोष मे भरकर पूछ बैठा कि—"मूर्ख! मेरे परम शत्रु का भक्त होकर तू मेरे समक्ष क्या जीवित रह सकता है? आज तुझे बताना पडेगा कि तेरा वह इष्टदेव विष्णु कौन है और कहाँ रहता है?" बालक ने आत्म-विश्वास के साथ कहा—"वह कहाँ नही है पिताजी? मुझमे, आप मे, खड्ग मे, खभ मे सबमे तो वही मेरा इष्टदेव समाया हुआ है।"

हिरण्यकशिपु इन गूढ वचनो के मर्म को नही समझ सका। उसने तमककर खभे मे गदा मारी और कहा—"कहाँ है तेरा भगवान् रे मूर्ख बालक?" परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसी खभ के दो टुकडे हो गए और उसमे से एक विचित्र मूर्ति ने प्रकट होकर उसे पकड, अपने घुटनो पर रख, अपने नखो को उसके पेट मे भोक दिया। श्रीमद्भागवत मे महर्षि वेदव्यास लिखते है :—

सत्य विधातु निजभृत्य भाषितम्
व्याप्ति च भूतेष्वखिलेषु चात्मन
अदृश्यतात्यद्भुत रूपमुद्वहन—
स्तम्भे सभाया न मृग न मानुषम् ॥

अर्थात्—अपने भक्त के कहे हुए वचनो को सत्य सिद्ध करने के लिए और त्रिलोकी मे व्याप्त होने की महिमा को चरितार्थ करने के लिए

उग्ररूप धारी भगवान् खम्भ मे से ही प्रकट हो गए। जिनका आधा अग पशु और आधा अग मनुष्य का सा था। वह समय दिन के अन्तराल अर्थात् सध्या का था। ठीक मकान की देहरी पर बैठकर भगवान् ने उसे मारा था। उस समय श्री हरि का उग्ररूप देखकर देवता भी काँप उठे। परन्तु बालक प्रह्लाद ने निर्भीक होकर उनकी वदना की और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके अमर पद पाया। भक्त की पुकार पर दौड आने वाले भगवान् का प्रत्येक भारतवासी चिर कृतज्ञ रहता आया है और अपनी कृतज्ञता के ज्ञापन के लिए वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को समारोहपूर्वक नृसिह जयन्ती मानता है।

18 वट सावित्री व्रत

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी से अमावस्या तक, अपने पति और पुत्र की दीर्घायु तथा मगल-कामना के लिए प्राय हर प्रदेश की सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस तीन दिन के व्रत को करती हैं।

स्त्रियाँ प्राय हर देश की सभ्यता और सस्कृति की रक्षिका रही हैं। उनमे शील, सौजन्य, उदारता और सहनशीलता के जो स्वाभाविक गुण होते हैं उन्हें पाकर हमारे परिवार स्वर्गीय सुखो का अनुभव करते हैं। स्वर्ग तो सचमुच उस सुखी गृह म रहता है जिसमे कलह, द्वेष, कटुता और विरोध न हो। गरीबी के दिन काटकर भी एक सद-गृहस्थ दैवी गुणो से अलकृत होकर चिर शातिमय जीवन बिता सकता है और यह तभी सभव होता है जब घर की स्त्रियाँ समझदार और शील युक्त हो। स्त्रियो को गृहलक्ष्मी कहा जाता है। परन्तु दुर्भाग्यवश बहुत दिनो से हम उनकी उपेक्षा और अवहेलना करते रहने के आदी हो गए हैं। आज तो उनकी सामाजिक दशा बडी शोचनीय है। जन्म के समय

से ही कुछ परिवारो मे तो उनके साथ पक्षपात का वर्ताव होने लगता है। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर भी उतना ध्यान नही दिया जाता जितना लडको पर। और कभी-कभी विवाह के पश्चात् उन्हें तुरन्त ससुराल वालो का ही नही वरन् अपने पतियो का भी दुर्व्यवहार सहन करना पडता है। प्राचीन काल के लोगो का इतिहास और विशेषत 'वट-सावित्री व्रत' की कथा तो स्पष्ट रूप से इस बात की द्योतक है कि स्त्रियो का आदर करने वाले परिवार केवल सुखी ही नही होते वरन अपने ऊपर आई हुई मृत्यु की कालिमा को भी वे जीवन के प्रकाश मे बदल सकते हैं।

कथा यह है कि—मद्रदेश मे महाराज अश्वपति नाम के एक नरेश थे। उनके कोई सन्तान नही थी। इसलिए उन्होने अपनी पत्नी समेत देवी सावित्री के मन्त्र का जप, व्रत और पूजन तथा अनुष्ठान शास्त्रोक्त विधि के अनुसार किया। एक दिन उनके आराधन से प्रसन्न होकर सावित्री ने स्वप्न मे दर्शन देकर कहा—तुम्हारे गृह मे पिता और पति के कुलो की कीर्तिपताका फहराने वाली एक कन्या का जन्म होगा।

कुछ दिन बाद महाराज अश्वपति के घर मे एक सद्गुण-सम्पन्ना सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। राजा और रानी ने पुत्र जन्मोत्सव के समान बडी धूम-धाम से बालिका का जन्मोत्सव मनाया। धीरे-धीरे वह कन्या जब विवाह के योग्य हुई तब महाराज ने उसे अपने अनुकूल वर का चुनाव करने की आज्ञा प्रदान की एव अपने वृद्ध मन्त्री को उसके साथ कर दिया। कुछ काल बीतने पर एक दिन देवर्षि नारद राजा अश्वपति से मिलने आए। उसी दिन सावित्री भी वर का चुनाव करके लौटी थी। राजा ने यह समाचार देवर्षि से कहकर अपनी कन्या को उनके सामने बुलाया और मनोनुकूल वर पाकर उसका जीवन सुखी हो यह आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। नारद सावित्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुए परन्तु आशीर्वाद देने से पहले उन्होने पूछा—"बेटी! तुमने किस योग्य वर को अपने लिए पसन्द किया है?"

सावित्री ने कहा—"देवर्षि! महाराज द्युमत्सेन का राज्य मन्त्री ने हरण कर लिया है। वह अन्धे होकर अपनी पत्नी के समेत सघन वन

में रहते हैं। उन्हीं के इकलौते पुत्र सत्यवान को मैंने अपना पति स्वीकार किया है।"

सावित्री के वचन सुनकर देवर्षि नारद ने गणना करके महाराज अश्वपति से कहा—"राजन्। तुम्हारी कन्या ने वर तो बहुत अच्छा चुना है। सत्यवान को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। वह बहुत ही सुशील, योग्य और सत्यवादी है। वह नर-रत्न है। उसके समान उज्ज्वल चरित्र वाला कोई दूसरा राजकुमार नहीं है। परन्तु उसमें एक ही दोष है और वह यह कि आज से पूरे एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो जाएगी।"

महाराज अश्वपति देवर्षि के इन वाक्यों को सुनते ही सहसा चौंक पड़े। उन्होंने सावित्री से दूसरा वर ढूँढने के लिए कहा। परन्तु सावित्री ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया—'पिताजी! आर्य कन्याएँ जीवन में एक बार ही पति का वरण करती हैं। दूसरे पुरुष की ओर दृष्टि डालना भी पाप है। अत जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे कोई दूसरा नहीं मिटा सकता। इसलिए वह चाहे दीर्घायु हो अथवा अल्पायु। आपकी कन्या दूसरे को अब पति रूप में स्वीकार नहीं कर सकती।" सावित्री की यह दृढ़ता देखकर देवर्षि नारद बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महाराज अश्वपति को सावित्री का विवाह सत्यवान के साथ करने की अनुमति प्रदान कर दी। तदनुसार सावित्री और सत्यवान विवाह-सूत्र में बद्ध हो गए। जंगलों में रहकर साध्वी सावित्री अपने पति की सेवा के साथ साथ अंधे सास ससुर की सेवा में रत रहने लगी।

उधर देवर्षि ने जो बात बताई थी उससे भी वह बेखबर नहीं थी। वह एक एक दिन गिनती जाती थी। धीरे धीरे आसन्न मृत्यु का वह भयानक दिवस भी आ पहुँचा। किन्तु उसके तीन दिन पहले ही सावित्री ने उपवास आरम्भ कर दिया था। तीसरे दिन प्रात उसने नित्य कर्मों से निवृत होकर अपने कुल देवता और पितृ गणों का वन्दन एवं पूजन बड़ी श्रद्धा के साथ किया। संध्या के समय जब सत्यवान अपने नित्य के नियम के अनुसार जंगल से लकड़ी काट लाने के लिए जाने लगे तब सावित्री ने भी साथ चलने का आग्रह किया और अपने सास-

ससुर से आज्ञा लेकर सत्यवान के साथ हो ली ।

सत्यवान ने जगल मे पहुँचकर पहले कुछ मीठे फल तोडे और उसके बाद लकडी काटने के विचार से वह एक पेड पर चढकर जब लकडी काट रहे थे तब एकाएक उनके मस्तक मे पीडा आरम्भ हुई । वह लकडी काटना छोडकर नीचे उतर आए और एक वट वृक्ष की शीतल छाया मे सावित्री की जघा पर सिर रखकर लेट गए। सावित्री का भी हृदय अन्दर से धक धक कर रहा था । उधर सत्यवान की पीडा बहुत बढ गई, वह बेचैन होकर छटपटाने लगे । इतने मे देवी सावित्री ने देखा कि अपने हाथ मे पाश लिये हुए दूतो के सहित स्वय यमराज सामने खडे हैं । सावित्री ने उन्हे प्रणाम किया और उनके वहाँ आने का कारण पूछा । यमराज ने विधि-विधान की रूपरेखा सावित्री को सुना दी और सत्यवान के प्राणों को अपने पाश मे बद्धकर अपने लोक की ओर जाने लगे । सावित्री भी अपने स्थान से उठकर उनके पीछे-पीछे चलने लगी । बहुत दूर पहुँचने पर यमराज ने अपन पीछे आती हुई सावित्री को मुडकर देखा । वह रुककर बोले—"सावित्री ! ससार मे मनुष्य जहाँ तक मनुष्य का साथ दे सकता है वहाँ तक तुमने भी अपने पति का साथ दिया । अब लौट जाओ । इससे आगे तुम्हारी गति नही है ।"

सावित्री ने कहा—"धर्मराज ! पति का छाया की तरह अनुसरण करते रहना ही पत्नी की मर्यादा है । जहाँ पति जाय वही उसके साथ जाना ही वैदिक धर्म की दीक्षा है । इसलिए उस मर्यादा के विरुद्ध कुछ कहना आपको शोभा नही देता । "

सावित्री का धर्मज्ञान और दृढता देखकर धर्मराज बडे प्रसन्न हुए और उन्होंने गम्भीर वाणी मे कहा—"देवि ! तुम्हारी निष्ठा और धर्म-भावना से मैं प्रसन्न हूँ । अपने पति के प्राणों को छोडकर यदि तुम कोई वर मुझसे माँगना चाहती हो तो माँगो मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होने का वर दूँगा ।"

सावित्री ने कहा—"जब मेरे पति के प्राण हरण करके आप मुझसे दूर ले जाना चाहते हैं तो दूसरी अभिलाषा मन मे आ ही कैसे

सकती है। फिर भी आप मुझ पर प्रसन्न होकर कोई वर देने का वचन दे चुके हैं तो यही दें कि मेरे अपने सास-ससुर को अपनी खोई हुई निधियाँ नेत्रों की ज्योति और दीर्घायु प्राप्त हो।"

यमराज 'तथास्तु" कहकर आगे बढ़े। परन्तु कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि सावित्री अभी भी उनके पीछे चला आ रही है। पातिव्रत धर्म के प्रभाव के कारण यमराज उसकी गति में अवरोध नहीं कर सकते थे। अत उन्होंने पुन पास आकर कहा—"सावित्री! इस जगह से आगे किसी शरीरधारी प्राणी की गति नहीं है। अब तुम यहाँ से पीछे लौट जाओ।'

परन्तु सावित्री विनम्रभाव से बोली—"धर्मराज! पति को छोड़कर नारी की कोई दूसरी गति नहीं है। अत मेरे पति को जब आप एक राह पर लेकर चले जा रहे हैं तब मुझे क्यों दूसरी राह पर जाने का आदेश दे रहे हैं?" सावित्री की विनयशीलता और निष्ठा यमराज के हृदय मे सहानुभूति उत्पन्न करती जा रही थी। इसलिए वह कुछ दयार्द्र होकर बोले— सावित्री! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। यदि तुम और कोई वर पाना चाहती हो तो मागो मैं तुम्हें अवश्य दूंगा।' सावित्री ने अपने लिए सौ भाइयो की बहन होने का वरदान माँगा। यमराज "तथास्तु कहकर आगे बढ गए। परन्तु सावित्री ने अभी भी पीछा नही छोडा। कुछ दूर बढने पर उन्होने मुडकर पीछे देखा। सावित्री अभी भी आग बढती हुई चली आ रही थी। यम ने रुककर उससे कहा—'सावित्री! क्या अभी भी कुछ पाने की लालसा तुम्हारे मन मे है यदि है तो एक वर और माँग लो और लौट जाओ।"

अपने श्वसुर और पिता के कुल के हित का अभिलषित वर पा लेने के बाद पतिपरायणा स्त्री को अपने पति की दीर्घायु के सिवाय क्या बचता है? इसलिए सावित्री ने सोचकर कहा—' धर्मराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और दया करके एक और वरदान देना स्वीकार करें तो मेरे सौ पुत्र हो यही वर प्रदान करें।" यमराज 'तथास्तु" कहकर आगे बढे। परन्तु सावित्री ने अभी भी उनका पीछा नही छोडा। कुछ दूर आने पर उन्होन मुडकर पीछे देखा। सावित्री अभी भी आगे बढती

चली आ रही थी। यम ने रुककर उससे कहा—"सावित्री! अब क्या चाहती हो?" सावित्री ने कहा—"धर्मराज! क्या बिना पति के भी आज तक कोई स्त्री संतान का मुख देख सकी है?" यमराज बोले—"ठीक है, देवि! तुमने ऐसा वर मुझ से मांग लिया है जो बिना तुम्हारे पति को पाश से मुक्त किए पूरा नहीं हो सकता। किन्तु वचनबद्ध होने के कारण मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सौ पुत्रों की माता बनो और साथ ही तुम्हारे पति को भी अपने पाश से मुक्त करता हूँ। तुम्हारी निष्ठा, धर्म-ज्ञान और पतिव्रत की कहानी जगत् में अमर होगी। जाओ, अब लौट जाओ।"

सावित्री यम को प्रणाम करके अपने पति के प्राणों को लेकर वापस लौटी। जिस वट के नीचे उसने प्राण छोड़े थे, सावित्री ने पहले उसकी ही प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा पूरी होने-होते सत्यवान जीवित होकर उठ बैठे। सावित्री उन्हें जीवित देखकर हर्ष से फूली न समाई। दोनों वहाँ से उठकर महाराज द्युमत्सेन के पास पहुँचे। उन्हें नेत्रों की ज्योति मिल चुकी थी। साथ ही उनके मंत्री आदि उनकी खोज करते हुए वहाँ पहुँच चुके थे। उन्होंने पुन: महाराज को ले जाकर उनके राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया। समय पाकर सावित्री के पिता श्री महाराज अश्वपति को सौ पुत्र प्राप्त हुए। चारों ओर देवि सावित्री के पतिव्रत धर्म पालन की कीर्ति का गान होने लगा। और उन्हें सौ पुत्रों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सती सावित्री का यशोगान करते भारत की नारियाँ नहीं अघातीं। वर्ष में तीन दिन ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी से अमावस्या तक वे व्रत रखकर सावित्री के जीवन वृत्त से पातिव्रत धर्म पालन करने की प्रेरणा लेती आ रही हैं।

19 गंगा दशहरा

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को पुण्यतोया भगवती भागीरथी गंगा का जन्म-दिन मनाया जाता है। भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से गंगा नदी की महिमा हमारे देश में व्याप्त है ही, परन्तु धार्मिक दृष्टि से भी गंगा माता ने भारतीय जन-जीवन को बहुत ही प्रभावित किया है। पुराणों में उनकी महिमा का यहाँ तक वर्णन किया गया है कि—

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

गंगा से सौ योजन दूर बैठकर कोई व्यक्ति परम श्रद्धा से उनके नाम का उच्चारण करे तो भी वह पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक की प्राप्ति करता है। आज के दिन वही गंगा आर्य जाति की माता बनकर स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरी। आर्यों के बड़े-बड़े साम्राज्य इसी पवित्र नदी के तट पर स्थापित हुए। कुरु तथा पांचाल देश से लेकर उत्तर में ब्रह्मावर्त, बिहार और बंगाल प्रदेश की भूमि को अपनी निर्मल वारिधारा से उर्वरा बनाती हुई माँ गंगा हमारे देश की लगभग 1500 मील की धरती का सिंचन करती है। मानसरोवर के विशाल जलभण्डार से हिमालय की उत्तुंग शृंग माला के घुमाव फिराव को पार करते हुए जिस महापुरुष ने इस सरिता को देश हित की दृष्टि से इस क्षेत्र में लाने की योजना पहले-पहल बनाई थी वह महापुरुष भगवान् सूर्य के कुल में उत्पन्न महाराजा सगर थे। उन्हें अपनी प्रजा प्राणों के समान प्रिय थी। उसके जल-संकट को दूर करने के लिए महाराज ने एक विशेष अनुष्ठान किया। वह अनुष्ठान था—गंगा माता को लोक-कल्याण के लिए धरती पर लाने का दृढ संकल्प। सगर के साठ हजार पुत्रों ने मिलकर अपने श्रम से उस यज्ञ को सफल बनाया। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में विस्तारपूर्वक इसका उल्लेख है। महर्षि विश्वामित्र ने यह यज्ञवार्ता राम को जनकपुरी की पैदल यात्रा करते

समय गंगा के तीर पर खड़े होकर सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

एक बार महाराज सगर ने बहुत बडा यज्ञ किया। उस यज्ञ की रक्षा का भार उनके पौत्र अशुमान ने अपने ऊपर लिया। यज्ञ करने वाले यजमान सगर के यज्ञीय-अश्व को देवराज इन्द्र ने चुरा लिया। अश्व के चुराए जाने को यज्ञ का विघ्न मानकर, अशुमान और उनकी प्रजा के साठ हजार मनुष्यो ने मिलकर खोज आरम्भ की। परन्तु सारी पृथ्वी पर कही भी घोडे का पता नही चला। तब पाताल लोक तक ढूँढ निकालने की भावना से उन्होने पृथ्वी का बहुत बडा भाग खोद डाला। वहाँ सनातन भगवान् वासुदेव महर्षि कपिल के रूप मे बैठे हुए तप कर रहे थे। उनके पास सगर का यज्ञाश्व भी चर रहा था। वे सब उन्हें देखकर सहसा ही चोर-चोर चिल्ला उठे। इससे महर्षि कपिल की समाधि भग हो गई। योगनिद्रा से जागते ही जिस समय महर्षि कपिल ने उन लोगो को अपने आग्नेय नेत्रो से देखा तो वे सब वही भस्म हो गए।

बहुत दिनो बाद उन मरे हुए लोगो की कल्याण चिन्ता से व्याकुल महाराज दिलीप के पुत्र भगीरथ ने कठोर तप करके प्रजापति ब्रह्मा से गगा को माँगा। प्रजापति ने कहा—राजन्! तुम गगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारकर ले आना चाहते हो किन्तु तुमने पृथ्वी से कभी यह पूछा भी है कि क्या वह गगा के वेग और भार को सम्हाल लेगी। मेरे विचार मे तो केवल कैलाशवासी शकर ही उसका वेग सम्हाल सकते हैं। इसलिए तुम उनसे गगा का भार सम्हाल लेने का वर प्राप्त करके मेरे पास आना। महाराज भगीरथ ने अपने तप से शकर को प्रसन्न करके गगा को मस्तक पर सम्हालने का वर प्राप्त कर लिया। तब प्रजापति ने अपने कमडलु (मानसरोवर) से गगा की वारिधारा को छोडा। शिव ने अपनी सघन जटाओ मे गगा का जल लेकर जटाएँ बाँध ली। भगवती गगा भी उन जटाओ के जाल मे से बाहर जाने की राह न पा सकी।

इस पर महाराज भगीरथ को बडी चिन्ता हुई। उन्होने अपने मृत पूर्वजो का उद्धार करने के लिए स्वर्ग से गगा को लाने का श्रम किया

था। परन्तु गंगा को बीच में ही रोक लेने वाले शंकर के पराक्रम से उनकी आशा अधूरी रह गई। इसलिए उन्होंने पुनः तप करके शंकर को प्रसन्न किया और गंगा की धारा को मुक्त करने का वर प्राप्त कर लिया। शिव की जटाओं से छूटकर गंगा हिमाचल की घाटियों से टकराती हुई मैदान की ओर बढ़ चली। गंगा के निर्मल जल-स्पर्श से उन सबका उद्धार हो गया। उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर महाराज भगीरथ से कहा—

> तच्च गंगावतरणं त्वया कृतमरिंदम।
> अनेन च भवान्प्राप्तो धर्मस्यायतनं महत् ॥
> प्लावयस्व त्वयात्मानं नरोत्तम सदोचिते।
> सलिले पुरुष श्रेष्ठ शुचि पुण्य फलो भव ॥

अर्थात्—हे शत्रुनाशन! आप जो पृथ्वीतल में गंगा ले आने में समर्थ हुए हैं, उससे आप बहुत बड़े धर्म के भागी हुए हैं। गंगा में स्नान सदा कल्याणकारी है और भविष्य में इसके एक एक बूंद जल से मानव का जीवन उपकृत होगा। इससे आप स्वयं पवित्र होंगे और दूसरों को पवित्र कर सकेंगे। आपका कल्याण हो। लोक में यही गंगा युगों तक आपके श्रम की अक्षय कीर्ति निरन्तर लोगों को सुनाती रहेगी। गंगा को लाकर प्यासी भूमि को सींचना, मरे हुओं को जीवनदान देने के बराबर है, उस महान् अनुष्ठान की पूर्ति का यशोगान भारत का जन-जन आनन्द में विभोर होकर किया करता है। और ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को, जिस दिन पुण्यतोया भागीरथी ने पृथ्वीतल को छुआ, लोग महान् पर्व मनाते हैं।

20 निर्जला-एकादशी

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी

प्रत्येक मास में दो बार एकादशी तिथि पड़ती है। और प्रत्येक एकादशी का महत्त्व उसी ऋतु के अनुसार अलग-अलग होता है। सत्य तो यह है कि एक पक्ष मे कम-से-कम एक दिन का उपवास अवश्य करना चाहिए। ताकि इससे पाचन के जो यंत्र हमारे शरीर मे दिन-रात कार्य करते रहते हैं, उन्हें कुछ विश्राम मिल जाय। यह तो हुई मास में दो बार उपवास करके अपने शरीर को नीरोग बनाने की प्रक्रिया, किंतु उसमे आध्यात्मिक उत्कर्ष का कार्य उस समय तक प्रशस्त नही हो सकता जब तक उपवास के साथ-साथ साधक ब्रह्म चिन्तन मे लीन न हो। श्रीमद्भगवद्गीता मे कहा गया है कि—

विषयाविनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥

गीता, अ० 2 श्लो० 59

अर्थात्—निराहार रहने से मनुष्यों के विषय यदि छूट भी जाएँ तो भी वासनाओ का अन्त नही होता। परन्तु ब्रह्म का सम्यक् ज्ञान होने पर वासनाएँ छूट भी जाती है। इसी बात को गीता के छठे अध्याय मे दूसरे ढग से कहा गया है कि—आदर्श जीवन बनाने के लिए यह ज़रूरी नही है कि बहुत ज्यादा भूखा रहा जाय। उचित यह है कि आहार और विहार का क्रम ऐसा बनाया जाय कि हमारा सारा जीवन ही सदाचार का एक व्रत बन जाय।

कहते है कि एक बार महाबली भीमसेन ने वर्ष की चौबीस एकादशियो की कथा महर्षि वेदव्यास से सुनी। भीमसेन अपनी दूसरी कमजोरियो को जीतने का प्रयत्न तो करते भी थे, परन्तु निराहार रहकर व्रत करना उन्हे बिलकुल नही भाता था। इसलिए उन्होंने व्यासजी से कहा—"मेरे अन्य भाई तो आए दिन कोई न कोई व्रत करते रहते हैं। क्या उनके पुण्य का कोई अंश मुझे नही मिल सकता ?" व्यासजी

ने चकित होकर कहा—भीम ! तुम्हारे आशय को मैं समझा नहीं, जरा और समझाकर कहो। भीम बोले—प्रभो ! मैं भूखा एक दिन भी नहीं रह सकता। इसलिए मुझे तो आप कोई एक ऐसा व्रत बता दें जिसे मैं वर्ष में केवल एक बार कर लिया करूँ। व्यासजी ने भीम का प्रयोजन समझ लिया और कहा—तुम ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी का व्रत कर लिया करो। इससे तुम्हारा जो अन्य एकादशियों में अन्न खाने का दोष है वह नष्ट हो जायगा। भीम ने प्रसन्न होकर यह मान लिया। और निर्जला एकादशी का व्रत किया। इस एकादशी को इसीलिए भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं।

निर्जला एकादशी व्रत अत्यन्त कष्ट-साध्य है। ज्येष्ठ के महीने में दिन बड़े होते हैं और प्यास बहुत सताती है। ऐसी दशा में जल का त्याग करके रहना बड़े संयम का काम है। परन्तु इस दिन नियम पूर्वक व्रत करना और सामर्थ्य के अनुसार द्रव्य एवं जलयुक्त कलश दान का बड़ा महत्त्व है।

21 कबीर जयन्ती

ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा

हिंदू समाज के मानस पर जिन संतों ने अपने पावन चरित्र और उपदेशों से एक स्थायी प्रभाव अंकित किया है, उनमें महात्मा कबीर को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा संवत् 1455 को उनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि उनकी माता एक विधवा ब्राह्मणी थी, जिसने लोक लाज के भय से इन्हें काशी के लहरतारा कुंड के निकट फेंक दिया था। नीरू और नीमा नामक एक जुलाहा दम्पति की नजर इस नवजात बालक पर पड़ी और उन्होंने उसे उठाकर उसका पालन-पोषण किया। कौन जानता था कि इस धरातल पर इस

प्रकार असहाय अवस्था मे प्रकट होने वाला बालक पृथ्वी माता का एक जाज्वल्यमान रत्न है जो इस युग के जन जागरण का अग्रदूत बनकर अमर हो जाएगा। आज भी युगावतार कबीर एक आदर्श प्रतीक के रूप मे जनता के हृदय सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। भगवान् बुद्ध के पश्चात् भारत के धार्मिक क्षेत्र मे कबीर ने एक ऐसी विचार-धारा को जन्म दिया है जो अब तक बेजोड है और जिससे युग प्रवर्तक संत-महात्माओ ने प्रेरणा ले-लेकर अपने अपने पथ चलाए है। महात्मा गाधी-जैसा युगपुरुष भी उनसे कितना प्रभावित हुआ था यह बात समय-समय पर गाधीजी की लेखनी और व्यवहार द्वारा प्रकट होती रही है।

समाज के अन्दर फैले हुए बाह्याडम्बरो का तीव्रतम विरोध करते हुए महात्मा कबीर ने एकेश्वरवाद को स्थापित किया था और विशुद्ध मानवता के प्रेमी होने के नाते निर्भीक होकर धार्मिक एव सामाजिक विषमताओ पर उन्होंने निर्भय प्रहार किए थे। वे चाहते थे कि साम्प्रदायिक कटुताओ को दूर हटाकर जन-मानस को प्राञ्जल बनाया जाय, जिससे प्रेम तथा भ्रातृत्व भाव का प्रसार हो और वातावरण मे शान्ति और सौम्यता छा जाय। समाज के सभी वर्गो को एकता के सूत्र मे बाँधने को उन्होने न केवल एक राष्ट्रीयता की भावना का बीजारोपण किया वलिक मानवता के स्तर पर अभिन्नता का साक्षात्कार कराया। परमात्मा मे सच्ची लगन और प्राणी-मात्र के साथ निष्कपट व्यवहार ही सत्य धर्म का सार है। इसे कबीर ने प्रत्यक्ष कर दिखाया और इसी धारणा को अपने जीवन का सम्बल बनाया। धर्म के मूल तत्व को गाधीजी ने भी इसी रूप मे स्वीकार किया था। हरिजन उद्धार और अहिंसा व्रत का पालन इसी तत्व के क्रियात्मक रूप थे। गाधीजी ने आध्यात्मिक शक्ति को समाज-सेवा के क्षेत्र मे सीमित न रखकर राजनैतिक क्षेत्र मे भी उसका उपयोग किया और सत्याग्रह का प्रचार करके राजनीति के साथ धर्म का मेल कराया। इस क्षेत्र मे जो वे आगे बढ सके हैं उसमे कबीर से उन्हें बडी प्रेरणा मिली है। साराश यह कि कबीर का अपना एक विशिष्ट स्थान है। धार्मिक क्षेत्र मे हम उन्हे क्राति-

कारक विचारक और नैष्ठिक कर्मयोगी के पद पर आरूढ़ पाते हैं। उन्होंने सीधी-सादी भाषा में धर्म के गहन तत्त्वों को भरा है। भक्ति की भावना और सूफीमत की छाप उनकी वाणियों में पूरी तरह झलकती है।

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सकै तो जागि॥

कुछ लोगों का कहना है कि कबीर कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। हो सकता है कि उनकी दृष्टि में यह ठीक भी हो परन्तु कबीर का यह मत जरूर था कि—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय॥

कबीर इसी भाँति के पंडित थे। साधना और आत्मानुभूति के क्षेत्र में वह बड़े-बड़े दिग्गजविद्वानों से भी कहीं आगे हैं। उनका कहना था—

कबिरा सांई पीर है, जो जाने पर पीर।

महात्मा कबीर दिव्य प्रतिभा के धनी थे इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वे जन्मजात जगद्गुरु थे। उनकी प्रच्छन्न प्रतिभा स्वामी रामानन्द का स्पर्श पाकर उसी प्रकार मुखर हो उठी थी, जिस प्रकार पारस को छूकर लोहा सोना बन जाता है। आज सैकड़ों वर्ष बीत गए पर हम कबीर को जन-जीवन में इतना घुला पाते हैं कि उनको अपने से अलग मानना प्राय असम्भव-सा प्रतीत होता है। वे राज्य के, धर्म के और समाज के ठेकेदारों के विरोधी थे और शोषित एवं पीड़ित मानव समुदाय के साथी और समर्थक। समाज में परम्पराओं के प्रति जो अध-निष्ठा प्रचलित थी उसने उन्हें विद्रोह के लिए मजबूर कर दिया था। जो उनकी ज्ञान अनुभूति की कसौटी पर खरा उतरता था उसका ही वे समर्थन करते थे और उनके लिए अत प्रेरणा अनुभूति देती थी वही उन्हें ग्राह्य था। शेष का विरोध वे बड़े तीव्र शब्दों में करते थे।

मानव समाज के प्रति प्रेम, सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना का पुण्य संदेश लेकर अवनीतल पर अवतरित होने वाले विश्ववन्द्य कबीर की मानव लीला की अंतिम झाँकी भी उन्हीं के अनुरूप भव्य और अनोखी

थी। वे जानते थे कि अंतिम भावना का नही बल्कि व्यक्ति का पुजारी शिष्य समुदाय उनके शव के लिए लड मरेगा। उन्होने ऐसा आयोजन कर दिखाया कि जहाँ शव था वहाँ फूलो का एक ढेर रह गया। और शव गायब कर दिया गया। उन फूलो के आधे भाग को लेकर हिन्दुओ ने दाह संस्कार किया और आधे ढेर को मुसलमानो ने दफना दिया।

अन्ध परम्पराओ के कितने विरोधी थे वे, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण उनकी मृत्यु की घटना मे निहित है। धार्मिक पुस्तको मे मगहर मे मरना निश्चित रूप से निषिद्ध करार दिया गया है। कहा जाता है कि मगहर मे मरने से निश्चित रूप से गति नही होती। किन्तु धार्मिक क्राति के इस अग्रदूत ने अपनी मृत्यु के लिए मगहर को ही चुना। 'जो कबिरा काशी मरै, रामहि कौन निहोर।" यह पंक्ति कबीर की अपनी भावना की द्योतक है।

ऐसे अनोखे मानव को कितना ऊँचा पद दिया उसके देशवासियो ने, इसका सबूत इसी से मिलता है कि ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिवर्ष देश के कोने-काने मे उनकी जयन्ती मनाई जाती है।

22 रथ-यात्रा

आषाढ शुक्ला द्वितीया

आषाढ शुक्ला द्वितीया को रथ यात्रा का पर्व मनाया जाता है। यद्यपि सारे देश मे यह उत्सव होता है परन्तु जगन्नाथ पुरी (उडीसा प्रदेश) मे विशेष धूमधाम रहती है। क्योकि इस पर्व का सम्बन्ध जगन्नाथ पुरी से विशेष है।

जगन्नाथ पुरी भारत के प्रधान चार धामो मे से एक है। जो उडीसा प्रदेश म समुद्र तट पर स्थित है। जगन्नाथजी का मन्दिर

भारतीय शिल्पकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। कहा जाता है कि इसका निर्माण विश्वकर्मा ने किया था।

सबसे बड़े महत्त्व की बात यह है कि देश भर में फैली साम्प्रदायिक कटुता और छुआछूत के विरुद्ध इस तीर्थ की परम्पराओं ने क्रियात्मक रूप से प्रचार किया है। यहाँ के प्रसाद में जातीय बंधनों की मर्यादा का त्याग अनिवार्य है, यही इस तीर्थ की विशेषता रही है। बाद में धर्म प्रचारकों द्वारा डाले नए अनेक प्रकार के संकुचित विचार और अन्धविश्वासों से वह भावना छिन्न-भिन्न हो गई जो मानवता के लिए एक अभिशाप सिद्ध हुई। हमारी संकीर्ण भावना ने हमारे सामाजिक जीवन मे आपसी कटुता का विष घोल दिया। जगन्नाथ धाम में देव प्रतिमाएँ मंदिर में बन्द नही रहती। वर्ष में एक बार उन्हें बाहर लाया जाता है और रथ में पधराकर नगर-यात्रा कराई जाती है। रथ को खीचने का अधिकार एक चांडाल तक को होता है। प्रस्तर कला के सौन्दर्य के साथ-साथ इस मंदिर की दीवारों पर उन सारे भौतिक जीवन सम्बन्धी कार्यकलापों के चित्र अंकित किये गए हैं जिनमें दैहिक सुख प्राप्त करने का इच्छुक प्राणी निरन्तर बहता रहता है। परन्तु आज तक क्या किसी भी मनुष्य को अपने जीवन मे सांसारिक विलास-लालसा से तृप्ति प्राप्त हो सकी है? क्या अपार धन-सम्पत्ति, विलास और रति सुख आज तक किसी को चिर शान्ति दे सके है? प्रसन्नता हमारे खाने-पीने या ऐश-आराम लेने मे नही, यह तो आदर्श जीवन जीने से आती है, जिसका जन्म संकुचित विचारों से ऊपर उठकर भगवत्सेवा से ही प्राप्त होता है।

विलास-लालसा की तृप्ति के लिए अर्थोपार्जन के साथ-साथ नाना प्रकार की काम-चेष्टाओ के उत्तरोत्तर बढाते जाने से कही भी और कभी भी किसी को शान्ति प्राप्त नही हो सकी। केवल आत्मानुभूति से ही चिरशान्ति प्राप्त हो सकती है। इसी संदेश को गर्भ ग्रह में बैठे हुए जगन्नाथ स्वामी जगत् को देते रहते है। परन्तु ऊपरी आडम्बरो में फँस जाने के कारण हम उस सन्देश को नही सुन पाते। तब अपने रथ पर चलकर जगन्नाथ यात्रा को निकल खड़े होते हैं और जन-

जन को अपना सदेश सुनाने के लिए सारे नगर मे यहाँ तक कि आस-पास के ग्रामो मे यात्रा कर आते हैं। यही रथ-यात्रा का सदेश है।

आज हम रथ-यात्रा का महोत्सव तो हर जगह मनाते है परन्तु उसके साथ श्री जगन्नाथ का जो प्रिय सदेश है उसे नही सुन पाते। इसी कारण आपसी कलह और जातीय कटुताओ के अभिशापो से हमारी मुक्ति नही हो रही है। समाज को यह अमर सदेश भी कान लगाकर सुनना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष रथ-यात्रा मनाई जाती है जो केवल अब औपचारिक मात्र रह गई है।

23 हरिशयनी एकादशी

आषाढ शुक्ला एकादशी

इस तिथि को पद्मनाभा अथवा हरिशयनी एकादशी कहते है। इस दिन से चतुर्मास (चौमासे) का आरम्भ होता है। यह चतुर्मास्य का वातावरण एक विचित्र ढग का होता है। कई प्रकार के सयम-नियम को स्वीकार करने पर ही चौमासा कुशलतापूर्वक बीतता है। क्योकि कई विषैले तत्वो की सृष्टि इन चार मासो मे हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर होते हैं। आने-जाने मे कठिनाई होने के कारण ही किसी एक स्थान पर रहकर अध्ययन करने का पुराना रिवाज था।

ब्रह्माड पुराण मे कहा गया है कि प्राचीन काल मे किसी मान्धाता नामक राजा ने आज के दिन व्रत रखकर अपने राज्य मे अनावृष्टि का दोष दूर कर दिया था। ऐसे छोटे-से साधन से इतने बड काम का होना सुनकर हममे से बहुतो को बडा आश्चर्य होगा। परन्तु सच तो यह है कि कोई भी साधन कभी छोटा नही होता बशर्ते उसे श्रद्धा और आत्मविश्वास के साथ किया जाय। असल मे बडे कामो को पूरा करने

से यह साधन चाहे भले ही छोटे हों परन्तु सबसे बड़ी चीज तो हमारे मन का उत्साह है। यह उत्साह यदि मन के भीतर पूरी तरह से भरा हुआ है, तो हम छोटे-छोटे साधनों से भी बड़े से बड़ा काम कर सकते हैं।

जिस समय निराशा के वश होकर हम अपना मानसिक उत्साह खो बैठते हैं तब हमारी सभी शक्तियाँ क्षीण पड़ जाती हैं। उनमें पारस्परिक सहयोग टूट जाता है और प्रतिभा के कुंठित हो जाने के कारण कार्यदक्षता का अंत हो जाता है। इस गत्यवरोध स्थिति को भंग करने के लिए केवल आध्यात्मिक साधनों का ही प्रयोग किया जाता है। उपवास उस दिशा में पहला कदम है। आत्म शुद्धि से नया उत्साह, नई हिम्मत पैदा हो जाती है और ऐसे कामों को कर डालने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जिनसे दुनिया चकित हो उठे।

हमारे पुराणों में यह भी कहा गया है कि आज के दिन से चार महीने के लिए सृष्टि के पालनकर्ता भगवान् पृथ्वी तल के नीचे पाताल में चले जाते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशी तक पाताल के राजा बलि के द्वार पर रहते हैं। यह तथ्य तो और भी रहस्यमय है। बात यह है कि वर्षाऋतु ही एक ऐसी ऋतु है जिसमें अनेक प्रकार की नई औषधियाँ पृथ्वी पर जन्म लेती हैं और पुराने वृक्ष वर्षा के जल के साथ अन्य प्रकार के पोषक तत्वों को पृथ्वी से प्राप्त करते हैं। भगवान् की विधायक और पोषक शक्ति को प्राप्त कर पृथ्वी के गर्भ से असंख्य पेड़ पौधे और जड़ी बूटियाँ फूट निकलती हैं।

अतः सृष्टि के पालनकर्ता द्वारा पृथ्वी के तल के नीचे जाकर विश्राम करने की कल्पना बड़ी मार्मिक है और रहस्यपूर्ण भी। वरन् सृष्टि के पालनहार को विश्राम कहाँ—गीता में भगवान् कृष्ण का कथन है कि—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

गीता, अ० 3 श्लो० 22

अर्थात्—मेरे (भगवान् के) लिए कोई कर्म करना शेष नहीं है।

फिर भी मैं निरतर कुछ न कुछ करता ही रहता हूँ। तब उसे विश्राम कहाँ—पृथ्वी के धरातल मे भी विश्राम की अवस्था मे उसकी क्रिया-प्रक्रिया गतिमान रहती है।

विश्राम के बारे मे हमारे आज के युग-निर्माता राष्ट्रपिता बापूजी ने अपने अनुभवो मे एक जगह पर लिखा है कि—"काम करते-करते थककर दूसरा काम शुरू कर देना ही विश्राम है।" (Change of occupation is rest) मालूम होता है कि सृष्टि तत्व की मौलिक छानबीन के बाद ही महात्माजी मे इस अनुभूति का प्रस्फुरण हुआ था। सर्दी और गर्मियो मे ससार के सभी काम जिस रूप मे चलते है, वर्षा ऋतु मे उन्हें एक दूसरे ही ढग से किया जाता है। काम तो कोई रुकता है नही बल्कि कुछ काम तो ऐसे होते हैं जो विशेष ऋतु मे ही होते हैं। अतएव सृष्टि की प्रक्रिया और कामो में कोई बाधा नही पडती।

इसे कुछ लोग यदि भगवान् का विश्राम कहे तो गाधीजी की अनुभूति शाश्वत सत्य की ही अनुभूति मानी जायगी। यह बात दूसरी है कि हम अपने आलस्य के कारण उसे अपने जीवन मे उतार न सकें। तो देव-शयनी एकादशी से वे सारे सामूहिक कार्य स्थगित कर दिए जाते हैं, जिनके क्रियान्वित करने मे दूर-दूर से स्वजन-सबधियो के लिए एकत्रित होना आवश्यक होता है। वर्षा ऋतु मे मार्ग अवरोध होने के कारण जो असुविधाएँ होती है इससे उनका आना-जाना रुक जाता है। इन चार मास तक केवल दो ही काम शेष रह जाते हैं—एक तो खेतो पर काम करना, दूसरे, स्वाध्याय करना और उन्ही के आरम्भ का यह पर्व है।

24 व्यास पूर्णिमा

आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायत पत्र नेत्र।
येन त्वया भारत तैल पूर्णः
प्रज्ज्वालितो ज्ञानमय प्रदीप ॥

—महाभारत, आदि पर्व

खिले हुए सुन्दर कमल पुष्प के समान नेत्र वाले, विशाल-बुद्धि व्यास को हमारा प्रणाम है जिन्होंने भारत रूपी तेल भरकर अर्थात् भारत के इतिहास से शक्ति और सम्बल प्राप्त करके—ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित किया।

इसी ज्ञान दीपक के सहारे हमें भारतीय संस्कृति का दर्शन हुआ आज के दिन उन्हीं महर्षि वेदव्यास की पूजा की जाती है। उनका हमारे देश और जाति पर महान् उपकार है। उन्होंने एक ही दृष्टि से नहीं, अनेक पहलुओं से मानव-जीवन की समस्याओं पर विचार करके अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि आज संसार में जो भी ज्ञान है वह उन्हीं व्यासजी का उच्छिष्ट माना जाता है। यह बात प्रमाद या मोहवश नहीं कही गई। वरन् उनके रचित ग्रंथों का अध्ययन करने से ही, उनके अगाध ज्ञान भंडार का परिचय मिलेगा। उन्होंने जो कुछ लिखा वह मानव-जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने के लिए है। उनका यह महान् कार्य देव वरदान के समान सिद्ध हुआ। समूचे देश के भौतिक रूप का उन्हें पूर्ण परिचय था। और एक-एक वस्तु के साथ उनका निकटतम संबंध था। एक एक सरोवर, कुंड, नदी और झरने की महिमा से उन्होंने देश-वासियों का परिचय कराया। उसका नामकरण किया, और उसका माहात्म्य बताया। इतना ही नहीं, व्यास भगवान ने देश की वंदना

करते हुए जिस रूप मे उसका दर्शन हमे कराया वह प्रत्येक भारतीय के लिए वदनीय है। उन्होने लिखा है कि :—

समुद्र वसन देवि पर्वत स्तन मडले।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व म ।।

समुद्र के वसन (वस्त्र) पहने हुए, पर्वत रूपी स्तन-मडलो से सुशोभित, विष्णु पत्नी माँ वसुन्धरा ! मैं जो तुम्हारे शरीर को अपने पाँवो से स्पर्श करता हूँ तो मेरे इस पाद स्पर्श को क्षमा करना।

भूमि के साथ माँ का सबध स्थापित करने की पुण्य-कल्पना मे भारत के बच्चे बच्चे के समस्त जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। मातृ-भूमि के स्तन मडलो से प्रवाहित होने वाली अनेक सरिताएँ माँ के दूध की धारा के समान हैं जिससे राष्ट्र को जीवन मिलता है, बल मिलता है। यह भावना जब देश के जन-जन मे व्याप्त हो जाती है तभी राष्ट्र का कल्पवृक्ष हरियाता है। देश प्रेम के भाव जाग पडते हैं और उसपर निछावर होने को, मर मिटने को ही हम अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। इस स्थिति को ही हम राष्ट्र का जन-जागरण कहते हैं। उस समय जो भी उत्तम विचार धारा धरती के ऊपर पुण्य भावनाएँ बरसाकर जन मानस को सीचती है, उसी मेघ जल को पीकर प्रजा नई-नई प्रेरणा लेकर आगे बढती है।

इस भुवन का आश्रय लेकर हमारे पैर लडखडाएँ नही, हमारे पैरो मे कही ठोकर न लगे, हम कही से उत्क्रात न हो ऐसे ज्ञान से जन-जन को परिचित कराना ही युग-पुरुष की देन होती है। उसे ही सच्चे रूप मे गुरु कहा जा सकता है। एतरेय ब्राह्मण के चरैवेति गान मे कहा गया है—

कलि_ शयानो जयति सजिहानस्तु द्वापर
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन्।

अर्थात्—जनता के पराक्रम की चार अवस्थाएँ होती हैं—कलियुग द्वापर त्रेता और सत्ययुग। जनता का सोया हुआ रूप कलियुग है। अगडाई लेता हुआ या बैठने की चेष्टा करता हुआ रूप द्वापर है। खडा हुआ रूप त्रता है और चलता हुआ रूप सतयुग है।

जन साधारण को उसके सोते हुए रूप से चलते हुए रूप तक पहुँचाने के लिए जिस महापुरुष ने ज्ञान रूपी दीपक को प्रज्ज्वलित किया उसकी वन्दना किन शब्दों में की जाय?

आज व्यासजी का पार्थिव रूप हमारे सामने नहीं है इसलिए समाज ने अपने-अपने गुरुओं में व्यास को व्याप्त मानकर, उनको उसी रूप में देखकर जयघोष किया।

> अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
> चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

गुरु पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमा का त्योहार अवश्य ही मनाने के योग्य है। परन्तु अंध-विश्वासों के साथ नहीं। भक्ति और श्रद्धा के साथ। व्यास महिमा और उनके रचे हुए ग्रंथ का पाठ करके उनके विचारों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और उनके उपदेशों पर आचरण करने की निष्ठा का वर माँगना चाहिए।

25 हरियाली तीज

श्रावण शुक्ला तृतीया

भारत कृषि-प्रधान देश है। भारतवासियों ने वर्षाऋतु को जीवन प्रदान करने वाली ऋतु माना है। श्रावण और भाद्रपद वर्षा के मास हैं। वर्षा की प्रत्येक फुहार पर आनन्दोत्सव मनाए जाते हैं और बच्चों से लेकर बूढ़े तक आनन्द में विभोर हो जाते हैं।

श्रावण शुक्ला तृतीया को हरियाली तीज इसलिए कहते हैं कि आज के दिन कुमारी कन्याएँ हरी दूब (दूर्वा) लेकर घर-घर जाती हैं और गोधन को, गौवों को जीवनदान करने वाली दूर्वा को, सौभाग्य और सदाशयता के प्रतीक के रूप में पहुँचाकर प्रेम और सौहार्द्र के

वचनो को सुदृढ करती है। लोग इन कुमारिकाओ के दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं।

वर्षा के कारण चारो ओर हरियाली छाई हुई होती है। हवा शीतल होती है। प्राय आकाश भी निर्मल होता है। ऐसे अवसर पर झूला झूलने मे भी बडा आनन्द आता है। गाँवो मे बडे पेडो की डाल पर झूला डाला जाता है। बालिकाएँ तथा युवतियाँ टोली बनाकर झूलने का आनन्द लेती हैं और 'अमवाँ' की डाल पर पडे झूले पर बडी-बडी पेगे लेकर कोयल को मात करने वाले पचम सुरो मे मल्हार रागिनी से वातावरण को मुखरित कर देती हैं।

असल मे यह खेल-कूद से भरा हुआ स्वच्छन्द जीवन ही तो हमारे जातीय जीवन का सर्वस्व है। भारतीय सस्कृति ने उत्सवो को इसी आन्तरिक उल्लास से अलकृत किया है। भारतीय जन-जीवन आनन्द और उल्लास से स्पदित रहता आया है।

26 नाग पचमी

श्रावण शुक्ला पचमी

श्रावण शुक्ला पचमी को नाग पचमी कहते हैं। आज के दिन नागो की पूजा की जाती है। गाँवो मे घरो के द्वार पर गोबर से नाग की मूर्तिया लिखी जाती है। महाराष्ट्र प्रदेश मे जगल से चिकनी मिट्टी लाकर उसका नाग बनाते हैं और घुघचियो से उनकी आँख तथा दूर्वा दल लगाकर उसकी दो जीभ बनाते ह और तब कुल परम्परा के अनुसार उनका पूजन किया जाता है। पूजन म सुगन्धित पुष्प और उपलब्ध होने पर कमल लिया जाता है। नैवेद्य मे दूध अथवा खीर सर्पो को अर्पित की जाती है।

नाग पचमी पर महाभारत मे बडा रोचक वर्णन मिलता है।

भारत के हर त्योहार के पीछे कोई न कोई कथा तो जुड़ी ही है। लेकिन जिन कारणों से नाग-पूजा भारत का त्योहार बन गया उसके बारे मे इतिहास से नई जानकारी प्राप्त होती है।

एक बार आखेट के लिए गये हुए महाराज परीक्षित ने समाधिस्थ शृगी ऋषि के गले मे मरा हुआ सर्प डाल दिया। इस पर उनके पुत्र ने राजा को श्राप दे दिया कि "जो सर्प तुमने ध्यान मे बैठे हुए मेरे पिता के गले मे डाला है वही आज के सातवें दिन जीवित होकर तुम्हें डसेगा।" सर्प के काटने से महाराज परीक्षित की सातवें दिन मृत्यु हो गई। इस पर नाग जाति से बदला लेने के लिए परीक्षित के पुत्र महाराज जन्मेजय ने एक बहुत बडा सर्प-यज्ञ किया। दूर-दूर से आकर बडे-बडे सर्प उस प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि मे भस्म होने लगे। उसी समय आस्तीक ऋषि ने राजा के पास जाकर कहा—राजन्! बदला लेने की बात आर्य सस्कृति के विरुद्ध है। भारतीय सस्कृति तो क्षमा, दया और प्रेम का आधार लेकर बढती है। आपकी सुलगाई हुई यज्ञाग्नि मे नाग जाति के रूप मे भारतीय सस्कृति की मर्यादा भस्म हो रही है। तब राजा ने अपने किये हुए यज्ञ पर पश्चात्ताप किया और यज्ञ समाप्त कर दिया गया। महर्षि आस्तीक के उपदेश से प्रभावित होकर उन्होने घृणा को प्रेम के रूप मे बदलकर अपनी उदारता का परिचय दिया और सारे देश में नाग वश का आदर हो यह राजाज्ञा प्रसारित की।

एक और भी महत्त्व की बात है कि आस्तीक ऋषि के पिता आर्य और माता नाग जाति की थी। इसलिए दोनो पक्ष के लोगो पर उनका प्रभाव था। नाग जाति के लोग बडे वीर, कला प्रेमी, वस्तुकला के विशेषज्ञ, नगर रचना मे कुशल और विद्वान होते थे। वर्षों तक वे आर्यों के साथ घुल मिलकर रह चुके थे। यहाँ तक कि उनमे अतर्जातीय विवाह भी होने लगे थे। परन्तु तक्षक के दुष्कर्म के फलस्वरूप नागो और आर्यों मे आपसी फूट का बीज पड गया था। जिसका आस्तीक ऋषि के प्रयत्नो से अन्त हुआ। इस आपसी मेलजोल की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए उनका एक त्योहार आर्यों के महोत्सवो मे नाग पूजा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

हमारे गाँवो मे आज के त्योहार के सम्बन्ध मे एक लोक-कथा प्रचलित है कि एक किसान अपने परिवार के सहित मणिपुर नामक ग्राम मे रहता था। उसके दो पुत्र और एक कन्या थी। एक दिन जब वह खेत मे हल चला रहा था तो फाल मे फिसकर तीन सर्प के बच्चे मर गए। उनकी माता पहले तो बडी दुखी हुई। बाद मे उसने किसान से बदला लेने का निश्चय किया। रात को उसने किसान, उसकी स्त्री और दो बच्चो को डस लिया। बेचारे सब के सब मर गए। दूसरे दिन वह नागिन, उनकी कन्या को डसने के लिए गई। कन्या ने घर मे सर्पिणी को देखकर उसके सामने दूध का कटोरा भरकर रख दिया और अपने पिता के अपराध के लिए क्षमा-याचना की। वह दिन नाग पचमी का था। इसलिए नागिन ने प्रसन्न होकर उसे छोड दिया और उससे वर माँगने को कहा—लडकी ने यही वर माँगा कि उसके माता पिता और भाई जीवित हो जाएँ। नागिन अपने काटे हुए व्यक्तियो के शरीर से अपना जहर चूसकर वापस चली गई। उसी दिन से नाग-पूजा प्रचलित हुई।

इतिहास अथवा किंवदतियो मे कुछ भी कथाएँ लिखी गई हो परन्तु सत्य तो यह है कि सर्प तो वन मे रहने वाले जीव हैं। वर्षा होने पर उनके बिलो मे पानी भर जाता है, तब वे आश्रय पाने के लिए हमारे घरो के पास आकर बैठ जाते हैं। क्षण भर के लिए ही क्यो न हो हमारा आश्रय चाहने वाले वे हमार अतिथि ही होते है। वैसे वे स्वभावत बस्तियो से दूर रहने वाले जीव हैं। उन्हें जगल और एकान्त ही प्रिय है। पवित्रता, स्वच्छता सुगन्धि और सुन्दर गाने उन्हे अच्छे लगते हैं। फूलो और सुगन्धित पेडो से वह लिपटे रहते है और अपनी ओर से किसी को काटते भी नही। परन्तु सताए जाने पर जब काटते हैं तो उनका दश अचूक होता है। चूहा उनका भोजन है। जिसे खाकर वे हमार खेतो की रक्षा करते हैं। उनके इस उपकार के बदले मे हम वर्ष मे एक दिन उन्हें दूध पिलाकर अपनी कृतज्ञता का परिचय दें यही पारस्परिक प्रेम की महत्ता और भारतीय सस्कृति की व्यापक दृष्टि की देन है।

27. तुलसी जयन्ती

श्रावण शुक्ला सप्तमी

गुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस जोय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

—रहीम खानखाना

मुगल सल्तनत के वजीर आज़म, अब्दुल रहीम खानखाना ने उपरोक्त दोहे में जिस पावन भावना को चित्रित किया है उससे तुलसी के प्रति ही नहीं बल्कि उस श्रद्धा के प्रति श्रद्धांजलि है जो आज इस देश के घर घर में संतों के प्रति उमड़ती हुई दिखाई दे रही है। एक गरीब किसान की झोपड़ी से लेकर बड़ी से बड़ी राज्यभवनों की प्राचीरों तक में उस संत की लिखी हुई चौपाइयों की गूंज सुनाई देती है। तब इस दोहे का रहस्य सहसा ही हृदय पर अंकित हो उठता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का आविर्भाव जिस समय इस देश में हुआ, वह हिन्दू जाति का संकट काल था। परतन्त्रता के साथ-साथ विषमता और साम्प्रदायिक कटुता हिन्दू समाज को बुरी तरह घेरे हुए थी। कोई राह नहीं सूझ रही थी। गोस्वामीजी ने राम भक्ति का—"कल्याणानाम् निधानम कलिमलमथन पावनम पावनानाम्।" रूप दिखाकर समाज को मिटने से बचाया। साथ ही जन-जन की भाषा में श्रीरामचरितमानस रचकर मृत प्राय हिन्दू जाति को नव जीवन प्रदान किया। तुलसी की देन से राम भक्ति का पीयूषपान करके मुर्दा समाज फिर से जी उठा। गोस्वामीजी ने समाज के हृदय में पैठकर राम नाम की महिमा का मन्त्र जागृत किया। कुछ लोगों का मत है कि—स्वयं आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने तुलसी के रूप में अवतरित होकर बोलचाल की भाषा में अपनी रामायण का परिमार्जित रूप रामचरितमानस के नाम से प्रकट किया।

तुलसीदासजी के जन्म स्थान के बारे में दो भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ लोग तुलसीदासजी का जन्म स्थान सोरों को बताते हैं और कुछ

बाँदा जिले के राजापुर ग्राम को। किंतु पुराण इस पक्ष मे है कि उनका आविर्भाव वि० स० 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी को बादा जिले के राजापुर ग्राम मे एक सरयू पारीण ब्राह्मण के घर मे हुआ।

आपके पिता का नाम प० आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। अभुक्त मूल मे जन्म होने के कारण माता-पिता ने उन्हें अपने से अलग कर दिया था। बचपन मे उनका नाम रामबोला था। वि० स 1583 मे उनका विवाह रत्नावलि नाम की एक रूपवती विदुषी बालिका के साथ हुआ। स्त्री पर उनकी बडी गहरी आसक्ति थी। एक दिन जब वह बिना कुछ कहे सुने अपने नैहर चली गई तब आप भी पीछे-पीछे वही जा पहुँचे। स्त्री को उनकी इस आसक्ति पर अत्यन्त खेद हुआ। उस समय उसने अपने पति को सामने देखकर कहा—

हाडचाम की देह मम, तापर इतनी प्रीति।
तसु आधो जो राम पर, होत मिटत भव भीति॥

आक्षेप तीखा था और तुलसी-जैसे भावुक के लिए असह्य। उसके वचनो से तुलसी का हृदय तिलमिला उठा। आप उसी क्षण घर छोड-कर निकल खड़े हुए और प्रयाग आकर विरक्त हो गए। चित्रकूट मे मदाकिनी गगा के तीर पर स्नान करने के बाद जब वह चदन घिस रहे थे उस समय श्री राम और लक्ष्मण किशोर अवस्था के कुमारो के रूप मे प्रकट हुए और तुलसी से चदन लगाने को कहा। तुलसी ने उन्हें सामान्य राजकुमार समझकर चदन तो लगा दिया परन्तु उसी समय एक वृक्ष पर बैठे हुए तुलसी के इष्टदेव श्री महावीरजी ने पुकारकर कहा—

चित्रकूट के घाट पर भई सतन की भीर।
तुलसीदास चदन घिसें तिलक देत रघुवीर॥

तुलसी की अतरात्मा यह सुनकर विह्वल उठी। उन्होने उठकर प्रभु के चरण पकडने चाहे परन्तु वह तो अन्तर्धान हो चुके थे। उस दिन से तुलसी, तुलसीदास बन गए। सभी तीर्थों मे भ्रमण करते हुए वे अयोध्या पहुँच और सवत् 1631 की चैत्र शुक्ला नवमी को मगलवार

के दिन श्री हनुमानजी की आज्ञा और प्रेरणा से 'श्री रामचरितमानस' को लिखना आरम्भ किया। दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिन में उन्होंने उस ग्रन्थ को पूरा किया। कहते हैं कि ग्रंथ पूरा होने पर हनुमान जी ने पुनः प्रकट होकर उसे सुना और तुलसीदासजी को आशीर्वाद दिया कि यह कृति उनकी कीर्ति को अमर कर देगी।

रामायण का बालकांड अयोध्या में पूरा करके वह भगवान् विश्वनाथ की नगरी काशी चले गए। इसलिए बालकाण्ड से आगे की कथा काशी में असीघाट पर एक झोंपड़ी में रहते हुए उन्होंने पूरी की। उनकी रचनाएँ इतनी लोक-प्रिय हुईं कि जो कुछ वह लिखते थे वह दो ही एक दिन में लोगों के कंठ स्वर में गूँजने लगता था। भाषा में लिखे इन दोहे और चौपाइयों में रामकथा के पावन गीतों का यह व्यापक प्रचार देखकर संस्कृत भाषा के कुछ ईर्ष्यालु पंडितों ने जब सुना तो वे लोग मिलकर तुलसी और उनके रचे हुए 'रामचरितमानस' ग्रंथ को ही नष्ट कर देने का उपाय सोचने लगे।

एक दिन ऐसी ही दुष्ट प्रकृति के लोग गोस्वामी तुलसीदासजी की कुटिया में अर्द्ध रात्रि के समय रामायण को चुराकर ले जाने के अभिप्राय से गए तो देखा कि श्याम और गौर रंग के दो कुमार हाथ में धनुष-बाण लिये हुए वहाँ पहरा दे रहे हैं। उन्हें देखकर पहले तो वे छिप गए, बाद में अवसर ताककर उन्होंने रामायण को चुराकर लेजाने की घात लगाई। कहते हैं कि ज्योंही उन चोरों ने रामायण में हाथ लगाया वैसे ही रुद्ररूप में भगवान् शंकर ने प्रकट होकर अपने त्रिशूल से उन्हें भयभीत करके भगा दिया। और चौकी पर रखी हुई रामायण की पोथी पर "सत्य शिव सुन्दरम्" लिखकर अंतर्धान हो गए।

'मानस' वास्तव में सत्य, शिव और सुन्दर है। हिंदू समाज के लिए देव-वरदान के समान है। आज कदाचित् ही कोई हिंदू सद्-गृहस्थी ऐसा होगा जो रामायण का पाठ न करता हो। वह हमारा एक अलौकिक धर्म ग्रंथ बन गया है। इसके नित्य पाठ से न जाने कितने ही बिगड़े हुए लोग सुधरे हैं कितनों को ही उसने मोक्ष का मार्ग दिखाया है और कितनों को भगवान् से मिलाया है।

126 वर्ष की अवस्थामे सवत् 1680की श्रावण शुक्ला सप्तमी को ही गोस्वामी तुलसीदास ने असीघाट पर अपना पार्थिव शरीर छोडकर साकेत लोक को प्रयाण किया।

28 रक्षा-बन्धन

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के त्योहार का रूप भारतीय सस्कृति की व्यवस्था मे विलकुल निराला है। ज्ञानोपार्जन के लिए कृत सकल्प, वीतरागी पुरुष समाज को नेह के बधन मे बांध, घर मे ही रहने को, आज के दिन वहनें मजबूर कर देती हैं। ज्ञान के साथ-साथ कर्म की उपासना का सबक, भारत की देवियाँ ही देती हैं। पुरुषो का कर्त्तव्य केवल ज्ञानार्जन ही नही है, देश, समाज तथा राष्ट्र की रक्षा का दायित्व भी उनपर है। साथ ही जिन खेतो मे बीज डालकर उन्होने यज्ञ और हवन करके वर्षा का आह्वान किया वे खेत लहलहा उठे हैं और कुछ ही दिनो मे सोना उगलेंगे, उस समय अकेली अवलाएँ क्या करेंगी ? क्या वे माँ धरित्री के जीवनदायी अन्यतम उपहार को बटोरकर घरो मे भरने का काम निभा सकेंगी। राष्ट्र की जीवन रक्षा का वह महान् कार्य तो समाज के दोनो अगो—स्त्री और पुरुष—को मिल-जुलकर करना है और फिर शरदागम पर यह भी तो आशका बनी रहती है कि कही दूसरे राज्यो की सेनाएँ हमला न कर द। उन्हें नवरात्र पर माँ शक्ति का आह्वान करके हथियारो को सजाने के साथ ही अन्य बहुत-से काम पडे हैं ससार मे करने को। ससार यदि ज्ञान भूमि है तो वह कर्म भूमि भी है। केवल ज्ञानोपार्जन मात्र से तो ससार चलता नही और न ज्ञान मार्ग को विसारकर केवल कर्म मार्ग को अपनाने से भव सागर से निस्तार हो सकता है। भारत के ऋषियो ने कभी

एकांगी चिन्तन नहीं किया, समन्वय और संतुलन उनके जीवन का लक्ष्य रहा है।

आर्यों को द्विज भी कहा गया है। द्विज शब्द से तात्पर्य द्विजन्म से है। अर्थात् एक जन्म तो प्राकृतिक रूप से जो माता के गर्भ से होता है तथा दूसरा और वास्तविक जन्म उस समय होता है जब उस भारतीय राष्ट्र का नागरिक होने के लिए दीक्षित किया जाता है अर्थात् जब कि उसका उपनयन संस्कार होता है और वेदाध्ययन के लिए गुरु के आश्रम में प्रवेश कराया जाता है। उस समय जनेऊ के तीन तारों में जो ब्रह्म गाँठ बाँधी जाती है वह अज्ञानरूपी गाँठ को सुलझाने के प्रण को याद दिलाने के लिए गले में पड़ी ब्रह्म फाँस है और यह फाँस गले से उस समय ही कटती है जब साधक ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार प्रति वर्ष जन्म की तिथि पर प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना जन्मोत्सव मनाया करता है उसी प्रकार द्विजों के लिए उपनयन धारण करके दूसरा जन्म प्राप्त करने वाले संस्कार को पुण्य-स्मृति के रूप में चिर-स्थायी बनाए रखने के लिए श्रावणी पूर्णिमा का दिन निश्चित किया गया है। इस दिन सामूहिक रूप में द्विज मात्र नया जनेऊ धारण करते हैं और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के अपने प्रण को दोहराते हैं। यह पुनीत कार्य नदी या जलाशय के किनारे अथवा बाग बगीचे में या जंगल में सम्पन्न होता है। इसे उपाकर्म संस्कार कहते हैं।

जिस समय इस संस्कार से युक्त होकर व्यक्ति अपने घर लौटता है तो आरती का थाल सजाए बहन-बेटियाँ स्वागत में आँख बिछाए घर पर तैयार मिलती हैं। उत्सव की तैयारी में नाना प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। उनकी भीनी भीनी सुगंध से घर भरा हुआ होता है। थालों में अनेक प्रकार के मिष्ठान्न फल तथा पुष्प सजाये हुए बहनें अपने भाइयों को शुद्ध आसन पर बिठला उसके दाहिने हाथ में रक्षा का डोरा बाँधती हैं। उसके कच्चे धागे में जो मजबूती रहती है वह लौह जंजीरों में भी नहीं पाई जाती। क्योंकि यह भावनात्मक बंधन है, जिसमें गली मोहल्ले के चाचा तथा गाँव गोत्र के भाई भतीजों को बाँधना मुश्किल नहीं। जब स्वयं भगवान् भी बँधे हुए अपने भक्तों के

पास चले आते है। इसे ही प्रेम की डोर कहते हैं।

रक्षा के इस कच्चे धागे के बधन मे दोहरी शक्ति होती है। बहन भाई को अपने प्रेमपूर्ण आशीर्वाद के कवच से मडित करती है, ताकि वह ससार मे रहकर और सांसारिक कृत्य करते हुए भी आध्यात्मिकता की साधना से विचलित न हो और नैष्ठिक जीवन बिताने मे समर्थ हो सके। दूसरी ओर यदि बहन के परिवार पर कोई सकट आवे तो भाई के नाते वह उस सकट मे उसकी सहायता को सदा प्रस्तुत रहे।

साराश यह कि श्रावणी पूर्णिमा के दिन दो त्योहारो का समन्वय किया गया है—एक आध्यात्मिक और दूसरा आधिभौतिक। श्रवणी उपाकर्म और रक्षाबधन की सतुलित समन्वय की रीति को अपनाकर ही हिन्दू-समाज अब तक जीवित रहा है।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि रक्षा-बधन के द्वारा विदेशी और विधर्मियो को भी प्रेम की डोर मे बाँधा गया है। जो लोग दूसरो को या अपने से कमजोरो को सताते रहने मे ही अपना बडप्पन मानते हैं ऐसे लोगो को समाज की हितचिन्ता का भार सौंपना भी इस त्यौहार का एक उद्देश्य बन गया था। आवश्यकता इस बात की है कि समाज मे इस प्रथा की प्रतिष्ठा को पुन. सस्थापित किया जाय।

भारतीय त्योहारो की यह भी विशेषता रही है कि पुरानी सस्कृति को उन्होने जीवित रखा है। इस युग के मानव से यह आशा की जाती है कि वह नए से नए विचारो को लेकर आगे बढे। नए से नए क्षेत्रो मे प्रगति की राह खोले। समूचे ज्ञान का सग्रह करके समाज का ढाँचा तैयार करे। हमारी सस्कृति जड नही है, वह चैतन्य है और जड को भी चेतन बनाना उसका लक्ष्य है। इस सस्कृति मे यदि प्रेरणा लेकर वे आगे बढें तो उन्हें बना बनाया मार्ग आगे बढने को मिलेगा।

राष्ट्रपिता गाधीजी को ही लीजिए। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नही है जिसमे उन्होने बुद्धि का दीप लेकर प्रवेश न किया हो। राजनीति मे तो वह रोज नए से नए प्रयोग करते ही थे। परन्तु उद्योग-धधे, राष्ट्रीय-शिक्षण, समाज-सुधार, स्वास्थ्य, आहार आदि के क्षेत्र मे भी उन्होने अनेकानेक सफल प्रयोग किए। इन प्रयोगो का आधार सत्य और

अहिंसा था। वे विचारशील व्यक्ति थे ही—आस्तिक और श्रद्धावान भी थे। शुद्ध विचारों के साथ उन्होंने हर कार्य को आगे बढ़ाया और बड़ी दृढ़ता से उसे पार पहुँचाया। इसी तरह प्रत्येक भारतीय संस्कृति के मानने वाले व्यक्ति का यह फर्ज हो जाता है कि वह युग के साथ चले और निरन्तर आगे बढ़ते रहने का शुभ संकल्प करे।

पुराने युग की भाँति आज भी किसी नदी में खड़े होकर पंचगव्य प्राशन से शरीर और मन की शुद्धि करके ऋषि-पूजन करना ही उपाकर्म की क्रिया है। ऋषि के अर्थ हैं विचारक। विचारकों की बात का आदर करना ही ऋषि पूजन है। आज के युग में विचार और विचारकों की आवश्यकता का अनुभव तो सब करते हैं परन्तु अपने अपने स्वार्थ के कारण न कोई आदरपूर्वक उनकी बातें ठीक से सुनता ही है और न व्यवहार में लाता है। इसलिए हमें ऐसे योग्य विचारकों का आदर करना सीखना चाहिए, उनकी बातों पर ध्यान देना और आगे प्रगति करने के लिए उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। यही रक्षा-बन्धन, उपाकर्म और ऋषि-पूजन के इस महापर्व का संदेश है। शिष्य और गुरु दोनों ही एक साथ सूर्य के सम्मुख मुख करके हाथ जोड़कर यह संकल्प करें—

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

29 हल षष्ठी

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी

भाद्रपद कृष्णा षष्ठी को यह पर्व होता है। इसी दिन लोक नायक श्री कृष्ण के बड़े भाई श्री बलरामजी का जन्म हुआ था। उनका प्रधान आयुध हल और मूसल था। आज के दिन उसी हल और मूसल की

पूजा विशेष रूप से होती है। भारतवर्ष तो गाँवो का देश है। हमारे गाँवो की सख्या पाँच लाख बासठ हजार है। देश की 83 प्रतिशत आबादी इन गाँवो मे रहती है और उसका प्रधान व्यवसाय है खेती। जिसका मूलभूत यन्त्र हल है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि हमारे प्राणो का आधार यह हल ही है और सारे जीवन को शक्तिवान बनाने का प्रधान साधन भी यही है।

हल और मूसल के पूजन से तात्पर्य कृषि के यन्त्रायुधो की साज-सभार है। देश की वर्तमान परिस्थिति मे तो इस पर्व को विशेष उत्साह के साथ मनाया जाना चाहिए। हमे ऐसे यन्त्र-आयुधो का आविष्कार करना चाहिए जिनसे कृषि की उन्नति हो। आज हमारे देश मे अन्न की कमी है। प्रतिवर्ष अन्य देशो से अन्न मँगाकर हमे उस कमी को पूरा करना पडता है। जो देश कभी धन-धान्य से परिपूर्ण था, आज उसकी यह शोचनीय दशा देखकर चित्त द्रवित हो जाता है। परन्तु सच तो यह है कि इस अवस्था का मूल कारण हल की प्रतिष्ठा को विस्मरण कर देना है। किसान की प्रतिष्ठा बडी होनी चाहिए। उसका परिश्रम महान् है। अपनी सेवा का प्रत्येक फल वह समाज की भेंट चढाता है। वह महान् कर्मयोगी है। सारा राष्ट्र कृषि से सम्बन्धित यत्रायुधो की साज-सम्हार से यह सिद्ध कर देता है कि कृषि व्यवसाय हेय नही वरन् वदनीय है।

उस महान् उपयोगी आयुध हल और उसे धारण करने वाले हलधर की प्रत्येक घर, गाँव और समूचे देश मे प्रतिष्ठा बढे इसलिए यह त्योहार हमारे यहाँ राष्ट्रीय पर्व के समान मनाया जाता रहा है।

30 जन्माष्टमी

भाद्रपद कृष्णा अष्टमी

भाद्रपद कृष्णा अष्टमी की रात्रि को बारह बजे मथुरा के कारागार में महामना वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। यह तिथि उसी शुभ घड़ी की याद दिलाती है। और सारे देश में बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है। आज दिन भर उपवास रखकर रात्रि को बारह बजे जन्मोत्सव की झांकी देखकर ही लोग भोजन करते हैं।

आस्तिकों की धारणा के अनुसार इस सृष्टि के पालन करने वाले भगवान विष्णु के अनेक अवतार हुए हैं। कृष्णावतार उन सबसे मुख्य माना जाता है। जन्म के समय में ही उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय अपनी माता देवकी को दे दिया था। वह समय देश के लिए बड़े संकट का था। उस समय मथुरा में अत्याचारी कंस का राज्य था। उसने देवर्षि नारद से यह सुनकर कि देवकी के गर्भ का आठवाँ बालक तेरा वध करेगा—देवकी को उसके पति वसुदेव समेत कारागृह में डाल दिया था और एक-एक करके उनके सात बच्चों को जन्म लेते ही मार चुका था। आठवें बालक श्री कृष्ण थे। देवकी और वसुदेव के इस संकट से गोकुल के गणराज्याधिपति नन्द बाबा और उनकी पत्नी यशोदादेवी बड़े दुःखी थे। उन्होंने इस दुःखी परिवार की सहायता करने का निश्चय करके इस आठवें बालक को रक्षा करने का उपाय रचा। उपाय की सफलता का मुख्य कारण यह था कि देवकी की गर्भावस्था के काल में यशोदा भी गर्भवती थी। उन्होंने देवकी के आठवें शिशु की प्राण रक्षा के लिए अपने बालक की बलि देने का निश्चय किया। दैवी विधान के अनुसार देवकी के गर्भ से जिस समय श्री कृष्ण ने जन्म लिया, ठीक उसी समय, माता यशोदा के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। पूर्व निश्चय के अनुसार महात्मा वसुदेव चोरी से कारागृह से निकलकर गोकुल गए और अपने नवजात बालक

को नन्द के यहाँ छोड़कर यशोदा की कन्या को उठा लाए। कानों-कान इसकी किसी को खबर भी न हुई कि देवकी के बच्चा पैदा हुआ। किन्तु उनके लौट आने पर कंस को यह सूचना मिली। उसने कारागार मे आकर देवकी के हाथ से नवजात कन्या को छीनकर पृथ्वी पर दे मारा। वह कन्या कोई सामान्य कन्या तो थी नही। साक्षात् भगवान् की योगमाया थी। उसने कंस के हाथ से छूटते ही आकाश मे स्थिर होकर कहा, मूर्ख ! जिस क्षण-भगुर शरीर को मृत्यु से बचाने के लिए तू इतने बालको की हत्या से अपने हाथ रग चुका है, उस शरीर को नष्ट करने वाला पैदा होकर अन्यत्र जा चुका है। वह जल्दी ही तुझे तेरे पापों का दण्ड देगा।

यह कहकर वह कन्या अतर्धान हो गई। कस इस आकाशवाणी को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसके अत्याचार बजाय कम होने के पराकाष्ठा की सीमा तक पहुँचने लगे। जिसके फलस्वरूप वह सभी नवजात शिशुओ की हत्या करने पर उतारू हो गया। उसने और उसके सेवको ने चारो ओर निरपराध बच्चो की हत्याएँ आरम्भ कर दी, जिससे जनसाधारण मे त्राहि-त्राहि मच गई। जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तब रक्षित क्या करे ?

परन्तु जिसकी कोई नही सुनता उसकी भगवान् सुनता है। अधे, लूले, लगडे, अपाहिज यहा तक कि भूत-प्रेत और पिशाच तथा बडे-बड़े विषधर सर्प भी आशुतोष भगवान् शिव का आश्रय पाकर निर्भय हो जाते हैं। भगवान् विष्णु तो दीनानाथ कहलाते ही है। श्रीकृष्ण के रूप मे प्रगट होकर तो उन्होंने यह बात पूरी तरह सिद्ध ही कर दी कि वह दीन-दुखियो के सच्चे सेवक है। राम के रूप मे—हमने उनके दर्शन मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे एक आदर्श नरेश की भाँति किए थे किंतु कृष्ण के रूप मे तो वह बिलकुल दीनबन्धु होकर मिले।

क्रूर कस के अत्याचारो से त्रस्त जनता की करुण पुकार से खिचकर उसकी रक्षार्थ ही कृष्णावतार हुआ, ऐसा दृढ विश्वास प्रत्येक भारतीय को है। श्रीकृष्ण ने बड़े-बड़े नृशस शासकों का मद चूर्ण किया। बड़े-बड़े शक्तिशाली चक्रवर्ती सम्राट् उनके आगे नतमस्तक हुए परन्तु वे

स्वय कभी राजा नहीं बने। उनका जीवन—शून्यों में जीवन फूंकने और दबे हुओं को ऊँचा उठाने में बीता। बालपन में कस के विरुद्ध ब्रज के ग्रामीणों में राष्ट्रीय भावना प्रबल करने और गणराज्यों का सगठन करने का महान् कार्य किया। ग्वालो के दल मे सहयोग और सगठन सबल करते हुए उन्होंने ऐसे ऐसे काम कर डाले कि लोगों की उँगली मुंह में दबी रह गई। उन्होंने जिस मानवी शक्ति को सगठित किया उसने प्रकृति तक से लोहा लेकर विजय पाई।

ब्रज के चौरासी कोस की भूमि प्रतिवर्ष जल-मग्न हो जाती थी। जननायक श्रीकृष्ण के नेतृत्व मे ब्रज के ग्वालो और गोपियो ने बाँध बाँधा और भयकर जल-प्रलय से छुटकारा पाया। देवताओं का राजा इन्द्र भी उनके इस कार्य से लज्जित हुआ और उसे मुँह की खानी पडी। ब्रजवासियो के श्रमदान का प्रतीक गोवर्धन आज भी श्रीकृष्ण के सगठन की क्षमता की विजय दुदुभि बजा रहा है।

जन नायक कृष्ण के दर्शन हमे अनेक रूपो मे होते हैं, अत्याचारियो से लोहा लेने वाले ग्वाल टोली के नेता के रूप मे—अल्हड गोपियो की भावनात्मक सरलता का उपयोगकर खेल ही खेल मे उन्हें सामाजिक तत्त्वो की महानता समझाकर सुसस्कृत बनाने वाले योगिराज के रूप मे—अत्याचारो के विरुद्ध लोगो की आवाज़ बुलदकर जन मानस को क्रातिकारी विचारो से ओतप्रोत करने की अपूर्व क्षमता रखने वाले सगठक के रूप में—धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे जूठन उठाने वाले के रूप मे—दुष्ट दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने के लिए चरण चाँपने वाले नदा नाई के रूप मे—निष्क्रिय पडी हुई अपार जनशक्ति को जगाकर लोक-कल्याणकारी कार्यों मे लगाने की अपूर्व क्षमता और शक्ति के स्रोत के रूप मे—कुरु क्षेत्र के समरागण मे अर्जुन को गीता-ज्ञान देने वाले जगद्गुरु के रूप मे और युद्ध करते समय अत्यन्त निपुण सारथी के रूप मे हम उनका साक्षात करते हैं। उन्होंने राजा महा-राजाओं और चक्रवर्ती सम्राटो के बीच दीन-हीन जनता के, पददलित, दीन और दुखियो के अधिकारो की रक्षा करते हुए एक निडर और सजग प्रहरी का सा कार्य किया। उनकी तिरछी नज़र नृशस एव

अत्याचारी शासकों का हृदय हिला देने के लिए काफी होती थी। उनकी हुँकार मे भूमंडल को कम्पायमान करने की क्षमता होती थी। उनका आयुध सुदर्शन-चक्र था जो शत्रुओ का मद भंग करके पुनः उनकी उगली मे वापस लौट आता था।

अपूर्व क्षमता के धनी होते हुए भी वे गोपी जन वल्लभ तथा गोपवधू ही रहे। यही उनकी विशेषता थी। सुदामा के तदुल, विदुर का साग और देवी द्रौपदी की सरल पहुनाई ही उन्हें बाँध सकी। ससार का वैभव वे सदा नगण्य समझते रहे। तीनो लोको का सौभाग्य उनके चरणो मे लोटता रहा और सारे विश्व की राजनीति उनके इशारे पर नाचती रही। किंतु माया का यह सब प्रपच उस मायावी को छूकर भी नही गया। राजा था कन्हैया जिसकी जन्म-तिथि प्रतिवर्ष इस देश का बच्चा-बच्चा सोत्साह मनाया करता है।

गीता उपदेशक के रूप मे इन्होने विश्व को कर्त्तव्य-निष्ठा का ज्ञान-सदेश दिया। उनकी उस प्रतिभा के तेज से आज विश्व की आँखें चौंधिया उठी हैं। हमारा अधिकार कर्त्तव्य करने का है फलो की आशा रखना उचित नही। वह हमारे अधिकार की वस्तु नही है। यही प्रशस्त मार्ग है, यह पाठ उन्होने विश्व को पढाया। आज उनके उपदेश से सारा ससार प्रभावित है। विश्व के हर भाग मे श्रीकृष्ण की गीता के भक्त मिलेंगे। जितना आदर, मान और प्रतिष्ठा गीता को प्राप्त हुई है अन्य किसी ग्रन्थ को नही। दुनिया की कोई भाषा ऐसी नही है जिसमे गीता का अनुवाद न हुआ हो।

उन्होंने अवतार लेकर मान-प्रतिष्ठा का मद भग कर दिया। दीन-हीन मानव को—दरिद्र-नारायण की प्रतिष्ठा स्थापित की। धर्म को एक नया रूप दिया और अपना मान छोडकर सदाचारियो और भक्तो का मान रखा। आज सारा भारतीय समाज उनके महान् आदर्शों से प्रभावित है। ससार की प्रत्येक परिस्थिति मे कैसे स्थिर रहा जाता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन उनके जीवन मे हुआ। उनके सामने छोटे-बडे अथवा ऊँच-नीच को एक-सा आदर मिला। उनके साथ मिल-जुलकर आदर्श जीवन कैसे बने इसका पूरा-पूरा ज्ञान उन्होने अपने जीवन से

समाज को सिखाया। सच तो यह है कि उन्होंने जो कुछ कहा और जो किया उसकी महिमा अक्षुण्ण है, उसका विस्तार अनन्त है और हमारे शब्दों का भडार सान्त है।

31 गंगा नवमी

भाद्रपद कृष्णा नवमी

भादो महीने की कृष्ण पक्ष की नवमी को गगा नवमी कहते हैं। गगा दशहरे के प्रकरण मे पुण्य तोया भगवती भागीरथी के अवतरण का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है परन्तु गगा नवमी का इतिहास एक दूसरे ही ढग की कहानी है।

कहते हैं कि त्रेतायुग मे अनाचारी पुरुषो के अत्याचारो से त्रस्त होकर कर्मठ और सदाचारी पुरुष बड बडे नगरो को छोडकर जगलो, पहाडो और गुफाओ मे छिपकर रहने लगे थे। वहाँ यद्यपि उन्हें अनेक प्रकार के दूसरे कष्ट उठाने पडते थे फिर भी व बस्तियो मे जाना पसन्द नही करते थे। दैव दुर्विपाक से तीन वर्षों तक वर्षा न होने के कारण उन्ह जगलो मे और भी अधिक कष्टो का सामना करना पडा। चारो ओर अकाल पड गया। जिसके कारण प्यास से व्याकुल होकर जीव जन्तु एक-एक बूद पानी के लिए तडप तडप कर मरने लगे। बडे बडे तालाब बावडियाँ और जलाशय आदि सभी सूख गए। पृथ्वी सतप्त होकर धधकने लगी। दिशाओ से अग्नि स्फुलिंग निकलने लगे और चारो ओर हाहाकार मच उठा।

एक ओर तो अत्याचारियो का आतंक और दूसरी ओर अनावृष्टि के ताप, इन दो पाटो के बीच पडे हुए मानव की दुर्दशा को देखकर महर्षि अत्रि बडे दुखी हुए। उन्होंने लोगो की प्राण-रक्षा के लिए निराहार रहकर कठोर तप किया। उनकी साध्वी पत्नी ने भी उनके

समान कठिन व्रत किया। कई दिन बीतने पर एक दिन सायकाल के समय उनकी समाधि टूटी। योग-निद्रा से जागने पर उन्होंने अपनी पत्नि अनुसूया से थोडा-सा जल पीने के लिए माँगा। पति की प्यास बुझाने के लिए अनुसूया कमडलु मे जल लेने के लिए जलाशय की ओर गईं। उनके आश्रम के निकट एक छोटी-सी नदी भी थी। परन्तु उसमे एक बूद भी जल नही था। जलाशय भी एक के बाद दूसरा देखा और दूसरे के बाद तीसरा पर कही पानी की एक बूद भी नही मिली। तब तो अनुसूया बडी दुखी हुईं।

उसी समय वृक्षो के झुरमुट मे से निकलकर एक युवती को उन्होंने अपनी ओर आते हुए देखा। उसने पास आकर अनुसूया से कहा—'देवि! इन हिंस्र पशुओ से भरे हुए वन मे तुम अकेली क्यो भटक रही हो?" अनुसूया ने कहा—"भद्रे! मैं अपने प्यासे पति के लिए जल लेने आई थी, किंतु खोज करके भी कही जल की एक बूंद नही पा सकी। इसलिए हताश होकर यहाँ खडी हुई थी। यदि तुम कोई जल का स्थान बता सको तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूंगी।"

युवती ने कहा—"बहन, तुम तो जानती ही हो कि आज कितने वर्षो से पृथ्वी पर एक बूंद पानी की वृष्टि नही हुई। ऐसी दशा मे पानी की आशा करना व्यर्थ है।"

देवी अनुसूया यह सुनकर उत्तेजित हो उठी और उस युवती से कहने लगी—"क्या कहा? पानी कही नही मिलेगा?" युवती बोली—"मैं तो समझती हूँ कि नही मिलेगा।"

अनुसूया ने आत्मविश्वास के साथ कहा—"अवश्य मिलेगा और यही मिलेगा।" युवती ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"यहाँ कैसे मिलेगा? क्या तुम पागल तो नही हो गई हो?" अनुसूयाजी ने उसी तरह शान्त भाव से कहा—"मैं पागल नही हो गई हूँ। सत्य कहती हूँ। यदि मैंने मन, वचन और कर्म से अपने पति को परमेश्वर मानकर उनकी पूजा सच्चे मन से की है तो मेरे धर्म की रक्षा करने परमेश्वर यही पतितपावनी गगा की निर्मल धारा को प्रकट कर दिखाएगा।"

सती अनुसूया के इस दृढ विश्वास को देखकर उस युवती ने

कहा—"देवि ! तुम्हारे यह वचन कहने से पहले ही भक्त वत्सल भगवान् तुम्हारे पतिव्रत की महिमा पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ उपस्थित हुई हूँ। तुम्हारे चरित्र और आत्मविश्वास को देखकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई है। तुम्हारी निष्ठा से जगत् का बहुत बड़ा कल्याण होगा।"

युवती के शब्दों से चकित होकर देवी अनुसूया ने उससे कहा—"बहन ! क्षमा करना, पति की सेवा और उनकी प्यास बुझाने की चिंता के कारण मैं तुम्हारा परिचय पूछना भी भूल गई थी। परन्तु क्या तुम मुझे अपना परिचय देने की कृपा करोगी ?" युवती ने कहा—"देवि, मैं गंगा हो हूँ और तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा से यहाँ आई हूँ। तुम्हारे पतिदेव प्यासे हैं। और तुम जल की खोज में यहाँ आई हो यह मुझे मालूम था। अब तुम्हें भटकना नहीं पड़ेगा। तुम्हारे पाँव के नीचे जो टीला है उसे कुरेदो और अपना जलपात्र भर लो।"

देवी अनुसूया ने तुरन्त वैसा किया। पृथ्वी को कुरेदते ही पापनाशिनी गंगा की निर्मल धारा का स्रोत फूट निकला। बस, प्रसन्नता पूर्वक कमंडलु में जल लेकर वह महर्षि के पास जाने लगी, परन्तु पैर आगे रखने से पहले उन्होंने कहा—"देवि ! मेरे पति प्यास से व्याकुल होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं उन्हें जल पिलाकर अभी आती हूँ। तब तक आप यहाँ ठहरें। और यदि कष्ट न हो तो आप मेरे साथ चलकर उन्हें भी दर्शन देने की कृपा करें।"

गंगा ने कहा—"क्षमा करो बहन ! मैं अधिक देर तक यहाँ नहीं ठहर सकती।" अनुसूया ने पूछा—"तो क्या आप मुझ पर असंतुष्ट हैं और आपने मुझे क्षमा नहीं किया। अन्यथा मेरी छोटी सी बात को आप नहीं टालती।" इस पर गंगा ने कहा—"यदि तुम अपनी पति-सेवा के एक वर्ष का फल मुझे दान कर दो तो मैं यहाँ ठहरकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकती हूँ। अन्यथा नहीं।"

अनुसूया ने सहर्ष कहा—"मैं यह फल आपको अर्पण करती हूँ परन्तु उसके लिए मुझे अपने पति की आज्ञा प्राप्त करनी होगी। आप मुझे क्षमा करें और उनकी आज्ञा लेकर आने तक मेरी प्रतीक्षा करें।"

गगा ने शान्त भाव से कहा—"अच्छा।" अनुसूया शीघ्रता से जल लेकर चली गईं। गगा एक वृक्ष की छाया मे वही बैठकर उनके लौट आने की प्रतीक्षा करने लगी। पत्नी के लाये हुए जल को पीकर महर्षि अत्रि ने अनुसूया से पूछा—"प्रिये। इतने दिनो से अनावृष्टि और दुर्भिक्ष के समय जल की बूँद का मिलना भी दुर्लभ हो गया है, परन्तु इतना अच्छा जल तुम्हें कहाँ और कैसे मिल गया ?"

अनुसूया ने सारी कथा वह सुनाई। पत्नी के मुख से जगज्जननी माँ गगा के आने का समाचार सुनकर अत्रि भी उनके दर्शनार्थ उठकर चल दिए और गगा के सामने पहुँचकर बोले—"माँ! तुमने मेरा आश्रम पवित्र कर दिया। मैं कृतार्थ हो गया। अब हम दोनों की यही प्रार्थना है कि आज से इस झरने का प्रवाह कभी न सूखे। इसी तरह शीतल और उज्ज्वल जलधारा सदा यहाँ बहती रहे।"

गगा ने प्रसन्न होकर कहा—"ऋषिवर! यह बात मेरे अधिकार में नही है। आप भगवान् शिव से यह वर प्राप्त करें। आपकी पत्नी ने अपनी पति-सेवा के एक वर्ष का फल मुझे अर्पण किया है, आप भी सहर्ष उनसे मुझे यह प्रसाद दिलावें। अनुसूया ने पति की अनुमति पाकर अपनी सेवा के एक वर्ष का पुण्य गगा को अर्पण कर दिया। और सच्चे मन से वही भगवान् शिव का आह्वान किया। शिव ने प्रकट होकर सती अनुसूया को आशीर्वाद देकर वहाँ रहना स्वीकार कर लिया और गगा को भी नित्य प्रवाहित होते रहने की आज्ञा प्रदान कर दी। अत्रि ऋषि की प्रार्थना पर शकर ने अनावृष्टि का सकट भी दूर कर दिया जिससे खूब वर्षा हुई। चारो ओर हरियाली छा गई। और सारे कूप, बावडियाँ और जलाशय आदि जल से भर गए।

महर्षि अत्रि ने आश्रम के निकट त्रिलोकीनाथ शकर को स्थापित करके उनका नाम वज्रेश्वरनाथ रखा। उन्ही के पास प्रवाहित होने वाली गगा का नाम अत्रि गगा प्रसिद्ध हुआ। पवित्रता के पुण्य प्रभाव की द्योतक गगा नवमी आज तक उनकी महिमा की गाथा सबको प्रतिवर्ष सुनाती जाती है।

32 अजा-एकादशी

भाद्रपद कृष्णा एकादशी

उत्सवों के अवसरों पर व्रत करने की प्रथा पर प्राय लोग यह पूछा करते हैं—"यदि त्योहार समाज की प्रसन्नता म वृद्धि करने वाले हैं तो उस समय भूखे रहने की क्या जरूरत है ?" क्यों न उस दिन और दिनो स अधिक भोजन किया जावे । ऐसा मानने वाले लोग शायद यह सोचते हैं कि व्रत तो दुख या शोक के समय ही करने चाहिएं । जबकि भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण दूसरा ही है । व्रत या उपवास को वह लक्ष्य की साधना मानती है । जिस उद्देश्य से व्रत किया जाय उसका यह अर्थ नहीं होता कि समारोह मनाया जा रहा है, वरन् यह होता है कि हमारे हृदय पर उस लक्ष्य का गुण अंकित हो । स्नान से शारीरिक पवित्रता होती है । मौन से मानसिक शांति का वातावरण बनता है । उसी तरह उपवास से वृत्तियाँ भी अंतर्मुख होती हैं । विचारों में सात्विकता का उद्रेक होता है । भोजन से शरीर म आलस्य बढता है। काम न करने की इच्छा होती है । इस दशा को हटाकर लक्ष्य की ओर बढा जाय यही उपवास का सही उद्देश्य है । कुछ मनस्वी इतनी लगन वाले होते हैं जो अपने उपवास की साधना का फल अवश्य पा लेते हैं । जिस तरह ब्रह्मचर्य का पालन केवल वीर्यरक्षा के हेतु नहीं होता । वह तो गौण है प्रधान लक्ष्य तो है संयमपूर्वक वेदाध्ययन या ज्ञान का अर्जन करने की अवस्था और उसमे तन्मयता का होना । इसी तरह उपवास का अर्थ है—साध्य का सान्निध्य या लक्ष्य की तन्मयता । इस तथ्य को प्रकट करते हुए ब्रह्माड पुराण म अजा एकादशी की कथा इस प्रकार वर्णन की गई है—

त्रेता युग म राजा हरिश्चन्द्र नामक एक नरेश थे । उन्होंने अपने जीवन को सत्यनिष्ठ बनाने का संकल्प किया । यहाँ तक की स्वप्न की अवस्था मे भी अपने किये हुए वचन को पालन करने की प्रतिज्ञा उन्होंने कर डाली । दैवात् एक दिन उन्होंने स्वप्न मे अपना

सारा राज्य दान कर दिया। उसी के दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र उनके दरबार मे जा पहुँचे। राजा ने स्वप्न मे जिस व्यक्ति को अपना राज्य दिया था उसकी शक्ल विश्वामित्र से मिलती हुई थी। इसलिए उन्होने अपना राज्य उन्हें सौंपकर अपनी पत्नी तारामती और पुत्र रोहिताश्व के समेत राज-भवन त्याग दिया। चलते समय विश्वामित्र ने पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएं राजा से और मांगी। राजा ने राज्य कोश से ले लेने की सलाह दी। इस पर विश्वामित्र ने कहा—"राजन! जो राज्य तुम मुझे पहले दान कर चुके उसकी किसी भी वस्तु पर अब तुम्हारा अधिकार नही है। राजा ने अपनी भूल पहचान ली और पत्नि-पुत्र को वेचकर सुवर्ण मुद्राएं सग्रह की। परन्तु इतने से सकल्पित मुद्राएँ पूरी नही हुईं। तब उन्होने स्वय को वेचकर मुद्राएँ पूरी कर दी। जिस व्यक्ति के हाथो मे उन्होने अपने आप को बेचा था वह जाति का डोम था। श्मशान का स्वामी था। मृत व्यक्तियो के सबधियो से कर लेकर वह शव-दाह करने देता था। यही उसकी जीविका थो। राजा हरिश्चन्द्र को उसने इसी काम पर नियुक्त किया, वह उसे ही अपना कर्त्तव्य समझकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करने लगे।

प्रत्येक साधक के सामने ऐसे अवसर भी आते रहते हैं जिस समय उसे अपनी निष्ठा की कठोर परीक्षा देनी पडती है। दरअसल परीक्षा के अवसर आने पर ही मनुष्य के धैर्य, सयम और धारणा को तौला जा सकता है। ऐसा ही अवसर महाराज हरिश्चन्द्र के सामने भी आया। उस दिन एकादशी का व्रत था। साथ ही श्मशान रक्षण का कर्त्तव्य करते हुए वह आधी रात के समय पहरा दे रहे थे। हठात एक युवती अपने पुत्र का शव लिये हुए उसका अन्तिम सस्कार करने के विचार से वहाँ आई। वह बडी दीन थी। उसके पास शव को ढांकने के लिए कफन का वस्त्र भी नही था। अपनी आधी साडी फाडकर उसने कफन का काम लिया था। परन्तु स्वामी की आज्ञा मे तत्पर महाराज हरिश्चन्द्र ने उसके पास आकर श्मशान-कर मांगा। पुत्र-शोक से दुखी उस असहाय नारी ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

33. हरतालिका व्रत

भाद्रपद शुक्ला तृतीया

भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया को सारे देश की स्त्रियाँ हरतालिका व्रत करती हैं। खास तौर पर यह स्त्रियों का त्यौहार है। शंकर और पार्वती का शास्त्रविधि के अनुसार पार्थिव पूजन आज के दिन विशेष रूप से किया जाता है।

इसके सम्बन्ध में भविष्योत्तर पुराण में यह कथा मिलती है कि—राजा हिमवान की कन्या पार्वती ने अपने मन में भगवान् शंकर को ही पतिरूप में वरण किया और उन्हें पाने के लिए जंगल में रहकर कठोर व्रत करने लगी। बहुत दिनों तक केवल शाक और पत्तों का आहार करके और बाद में केवल वायु का आधार लेकर संयम के साथ अनुष्ठान किया। पार्वती के उस तप को देखकर राजा हिमवान को बड़ी चिन्ता हुई। दैवात् उन्हीं दिनों देवर्षि नारद राजा हिमवान से मिलने के लिए आये। राजा ने पार्वती को दिखाकर उसके कठोर तप और अनुरूप पति के बारे में उनसे चर्चा की। नारद ने कहा—"इस कन्या के लिए भगवान् विष्णु से बढ़कर और कोई वर नहीं हो सकता।" पार्वती के पिता को यह सुझाव अच्छा लगा। परन्तु जब यह समाचार पार्वतीजी को मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उन्होंने अपनी एक सखी से कहा कि संसार में सम्पन्न, सुन्दर और स्वस्थ पति की याचना तो सभी लड़कियाँ करती हैं किन्तु मैंने तो अकुल, अगेह, दिगम्बर और दीन पति को वरण किया है। चाहे मेरा शरीर भले ही छूट जाय परन्तु शंकर को पतिरूप में पाने का मेरा हठ नहीं छूट सकता। तब सखियों ने उनसे कहा—"चलो वहीं ऐसी जगह चलकर रहें जहाँ महाराज को पता तक न चले।" अतः तदनुसार पार्वती ने एक एकान्त कन्दरा में रहते हुए पुनः घोर तप आरम्भ कर दिया। उन्होंने बालू की शिवमूर्ति स्थापित करके बड़ी श्रद्धा से उसकी पूजा की और शिव का आह्वान किया। देवाधिदेव शंकर की समाधि भक्तों के आह्वान

से भंग हुई इसलिए वे सती के सामने प्रकट हुए और वर मांगने का आदेश दिया। इस पर सती ने निवेदन किया—' देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे अपनी अर्द्धांगिनी बनाने की स्वकृति प्रदान करें।" शंकर एवमस्तु कहकर अन्तर्धान हो गए।

उसके कुछ काल के बाद उन्हें ढूंढ़ते हुए राजा हिमवान अपने सैनिकों समेत वहां जा पहुंचे और पार्वती के तपोमय जीवन की प्रशंसा करके अपने साथ घर ले गए। पार्वती ने शिव के वरदान की बात अपने पिता को कह सुनाई। महाराज ने उसकी बात स्वीकार कर ली और भगवान् शंकर के साथ उसका विवाह कर दिया

संसार में सती की महिमा अमर है। उन्होंने ग़रीब वर को चुनकर अमीरी की चाहना करनेवाली स्त्रियों के समाज को अपने संकल्प से चुनौती दी है। पति का कुल चाहे दीन भले ही हो परन्तु शुभ लक्षण पत्नी उसे धन धान्य से भरपूर बनाकर सुखी गृहिणी हो सकती है। विश्व के देवता उसकी वंदना करते हुए अपनी सारी निधियां उसके चरणों में अर्पण कर देते हैं। उसकी महिमा को प्रदर्शित करने के लिए आज का त्यौहार—हरतालिका व्रत—बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है।

34 गणेश चतुर्थी

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी

निर्विघ्नं कुरु मे देव शुभ कार्येषु सर्वदा।

गणेश अथवा गजानन बुद्धि के देवता हैं और मनुष्य स्वभाव से ही बुद्धिजीवी प्राणी है। संसार के जितने भी आविष्कार तथा चमत्कार हैं सब उसकी बुद्धि के ही परिणाम तो हैं। यदि मनुष्य में बुद्धि-बल और किसी भी तत्त्व पर गहराई से विचार करने की क्षमता न होती तो उसमें और दूसरे पशुओं में कोई अंतर नहीं होता। यह अंतर मिटाने

के लिए, मनुष्य ने अपने जीवन, रहन-सहन और तर्ज-तरीको मे बहुत कुछ सोचा, विचार किया और फिर उन्हें सदैव के लिए, दृढता के साथ अपने जीवन मे अपना लिया। यही उसकी विशेषता है।

इन्ही विचारो की धारा मे समय-समय पर सशोधन और परिवर्धन भी हुआ। नई बातो ने पुराने विचारो के नए से नए रूप खडे किए। जिस तरह हिमालय पर्वत मे बहुत-से छोटे-बडे जल-स्रोत हैं, जिन मे से अनेक जल धाराएँ फूट-फूटकर बहती हैं और सयोगवश वे एक होकर नदी बन जाती हैं। इसी तरह भारतीय सस्कृति मे भी समय समय पर अनेक विचारो के स्रोत फूटे और उन सबने मिलकर एक-रूपता धारण कर ली। कुछ ऐसी ही बात गजानन के रूप, गुण और प्रभाव के सम्बन्ध मे भी हुई है।

उपरोक्त श्लोक मे उनके रूप, गुण और प्रभाव का सक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण वर्णन हुआ है। वह वक्रतुड और महाकाय है। यह हुआ उनका स्वरूप। मनुष्य को माता प्रकृति की अतिम कृति माना जाता है। इसीलिए सम्भवत वेदान्त सिद्धान्त मे यह कहा जाता है कि 'यत्पिडे स ब्रह्माडे' अर्थात् विश्व मे ऐसी कोई शक्ति नही है जो हमारे पिड मे (शरीर मे) निवास न करती हो। अपने शरीर मे निवास करने वाली इन शक्तियो का ज्ञान जैसे जैसे मानव को होता गया वैसे वैसे उसने महामानव के स्वरूप की बहिरग कल्पना कर डाली। इसलिए बुद्धि और शक्ति के अपूर्व भडार गजानन को महाकाय तो होना ही चाहिए। अब रही वक्रतुण्ड होने वाली बात—उसके लिए हमारे धर्मशास्त्रो मे कहा गया है कि गजासुर को मारने के लिए भगवान् विष्णु ने पार्वतीजी के उदर से जन्म लिया। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि एक बार भगवान् शकर ने आवेश मे आकर अपने द्वार-रक्षक गण का सिर काट लिया, किंतु थोडी देर बाद अपनी भूल का ध्यान करके उन्होंने असली अपराधी गजासुर का सिर काटकर उस गण के धड से जोड दिया। तब से महाकाय गणेश का मुख हाथी का हो गया। इस से उन्हें वक्रतुण्ड कह दिया गया।

एक बार देवताओ ने आपस मे मिलकर यह निश्चय किया कि हम

आज दिन भी बड़े उत्साह और श्रद्धा से मनाता है। महाराष्ट्र प्रदेश में तो गणपति की बड़ी सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं और प्रत्येक घर में उनका पूजा होता है। आज का दिन प्रत्येक नए काम को प्रारम्भ और विद्याध्ययन शुरू करने का माना जाता है।

35 ऋषि पञ्चमी

भाद्रपद शुक्ला पचमी

जो आदमी अपने सुखो की चिंता छोड़कर पर-हित चिन्तन मे ही अपना सारा समय लगता है, वही ऋषि है। ऐसे ऋषि बड़े भाग्य से ही किसी देश अथवा समाज को मिलते हैं। जिस तरह वर्षों के झझावात से मोर्चा लेता हुआ कोई बड़ा वृक्ष धीरे धीरे बढ़ता है समय पर उसमे फल फूल आते हैं। फिर हवा आती है और दूर-दूर तक उसका सौरभ एव, परिमल फैला देती है। जगल का जगल उसकी सुगधि से महक उठता है उसी तरह एक भव्य सत्य का प्रयोग करने वाला ऋषि' भी बड़ी शान से समाज के बीच खड़ा रहता है। उसके चरित्र गठन के बीज अनेको हृदय मे पड़ते हैं। फिर धीरे-धीरे उसके चारो ओर लाखो उपासको की भीड़ जमा होने लगती है। उस समय उसका नैसर्गिक रूप छिटक पड़ता है उसके अतर-तल मे मगल ध्वनि गूंज उठती है।

ऐसे व्यक्तियो से समाज को नई राह मिलती है और राष्ट्र का ओज चमक उठता है। सृष्टि के आदि से ऐसे लोग प्रत्येक देश, समाज और जातियो मे जन्म लेते आए हैं। उन्होंने स्वय कष्टमय जीवन बिताकर भी दूसरो के लिए माग प्रशस्त किया। ऐसे लोग आने वाली पीढ़ियो के लिए अनेक पुण्य स्मृतियाँ अपने पीछे छोड़ जाते है। ऐसे लोगो की भाषा का कलेवर भिन्न हो सकता है, परन्तु कतव्य और

उसके साथ धर्मपथ पर डटे रहने की परम्पराओ मे कोई भेद नही होता। देश-काल और पात्र की अवस्थाओं के अनुसार उनके व्यवहार अनेकता से परिपूर्ण लग सकते हैं। परन्तु मानव-जीवन को समुन्नत करने वाले मौलिक तत्वो मे कोई अतर नही होता। वे जो कुछ कहते या करते हैं वह सारे विश्व के लिए होता है, और विश्व के लोग उनकी बात सुनते हैं।

ऐसे ही लोगो की स्मृति हमे रहे इसीलिए भारतीय सस्कृति ने आज का दिन नियत किया है। इसे ऋषि पचमी कहते हैं। आज के दिन विश्व के बडे-बडे विचारको की बात ध्यान मे सुननी चाहिए और यदि हो सके तो अतर्मुख वृत्ति करने के लिए बडी श्रद्धा सहित उपवास भी करना चाहिए। ताकि हमारे जीवन-विचार और आदर्शो पर उन महापुरुषो की पूरी छाप पडे। यही ऋषि पचमी के महोत्सव का रहस्य है।

36 संतान सप्तमी व्रत

भाद्रपद शुक्ला सप्तमी

भादो शुक्ला सप्तमी को यह व्रत किया जाता है। इसे भुक्ताभरण व्रत भी कहते है। यह मध्यान्ह तक ही किया जाता है और शिव पार्वती का पोड्शोपचार पूजन करके सम्पन्न किया जाता है। सचित पापो के क्षय और पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि के लिए याचना की जाती है।

आज की परिस्थितियां तो बिलकुल विपरीत है। सारे देश की आबादी बहुत बढती जा रही है। परन्तु काम करने वाले लोगो का टोटा है। चारो ओर देश मे जन-सख्या बढने के विरुद्ध चीख पुकार मची हुई है। परन्तु सस्थाओ मे काम करनेवाले लोगो का अभाव है। भारतीय सस्कृति इस अनावश्यक जन-सख्या की वृद्धि का समथन नही

में से जो देवता सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके इस स्थान पर सबसे पहले आ जाय, उसे देवों में सर्व-प्रथम पद मिले और बाकी सब देवता उसकी पूजा करें। इस निश्चय के अनुसार सभी देवता अपने अपने वाहनों पर चढ़कर दौड़े। गजानन तो बुद्धि में तीव्र थे ही। उन्होंने सोचा—इस सारी पृथ्वी की दौड़ लगाना व्यर्थ है। जीव तो स्वय अपने आप में पूर्ण है। और पृथ्वी, वायु अग्नि, जल एव आकाश आदि पच तत्व से बन हुए भौतिक शरीर में व्याप्त है तथा जड़ और चैतन्य सब में समान रूप से रम रहा है। 'रमते चराचरेषु ससारे।' चर और अचर सब में रमा हुआ है इसीलिए उसे राम कहते हैं। अत उन्होंने वही राम नाम लिखकर उसकी प्रदक्षिणा कर ली। और सर्व प्रथम आसन पर आकर बैठ गए। स्वर्ग के देवताओं ने लौटकर जब यह देखा तो उनके ज्ञान की प्रशसा की और मिलकर बड़ी श्रद्धा के सहित उन का पूजन किया। उस दिन से यह देवताओं में अग्रगण्य मान लिये गए।

गणपति नाम के पीछे एक और भी कल्पना दिखाई देती है। वह यह है कि प्राचीन युग में कई जनतन्त्र राज्य गणराज्य कहलाते थे। उन गणराज्यों की लोक सभा के सभापति का वर्णन इसी रूप में हो सकता है। गणपति की कल्पना सभवत इसी आधार पर की गई हो। जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा होती है, उसी तरह सुसगठित समाज की आत्मा का अनुमान लगाया गया हो। इसलिए गणपति की पूजा का अर्थ है सामूहिक जीवन को अपनी भावनाएँ अर्पण करना। वह सामाजिक आत्म ज्ञान का भडार है। गजनन बुद्धि के सागर हैं। बिना उनकी कृपा के जगत् अथवा समाज का कोई काम पूरा होने वाला नहीं है। इसलिए हर काम को उनकी पूजा से आरम्भ करना चाहिए।

गीता में प्रकृति और उसके बाहर के सभी तत्वों का त्रिविध विश्लेषण करते हुए प्रत्येक आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक पदार्थ को तीन-तीन भागों में बाँटा गया है। वेद ने तो देवताओं की प्रकृति को भी तीन हिस्सों में विभक्त कर दिया है। सात्विकी,

राजसी और तामसी—यह तीन बड़े हिस्से हैं। प्रजापति ब्रह्मा सतोगुण के, सृष्टि पालक भगवान् विष्णु रजोगुण के और भगवान् शंकर तमोगुण के देवता माने गए हैं। इसी भाँति प्रकृति के तीन रंग भी माने गए हैं। लोहित, शुक्ल और कृष्ण। लाल, सफेद और काला। बाकी रंग इन्हीं रंगों के मेल से बनते हैं। गीता में कहा गया है कि—सत्वगुण सुख में, रजोगुण कर्म में और तमोगुण आलस्य और निद्रा की प्रवृत्ति पैदा करता है। कर्म (activity) के देवता गजानन हैं। गजानन का वाहन चूहा इस बात का द्योतक है कि यदि चूहे के आकार का तमोगुण हो तो उसे दबाने के लिए गजानन के सदृश रजोगुण होना चाहिए। चूहा काले रंग का होता है जो तमोगुण का रंग माना जाता है। इसलिए गणेश को दर असल गुणेश कहना अधिक न्याय-संगत है।

वैदिक युग में ग्रंथ लेखन की कला को समाज में अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। परन्तु ग्रंथों को लिपिबद्ध करने वालों में सर्व श्रेष्ठ स्थान श्री गणेशजी को ही प्राप्त हुआ। क्योंकि महाभारत नामक महाकाव्य को लिखने का संकल्प जिस समय महर्षि वेदव्यास ने किया, तब उन्हें किसी योग्य लेखक की तलाश हुई। उन्होंने गणपति के समक्ष जाकर अपना विचार प्रकट किया। गणेशजी ने उन्हें उत्तर दिया कि आप बोलते जाइए, मैं लिखता जाऊँगा। परन्तु एक ही शर्त होगी और वह यह कि मेरी लेखनी की गति रुके नहीं। व्यासजी ने इसे स्वीकार कर लिया। तभी इतना बड़ा ग्रंथ लिखा जा सका।

ज्योतिष ग्रंथों में भी गणपति का रंग लाल माना जाता है। और लाल रंग के फूल उन्हें चढ़ाए जाते हैं। ऐसी लाल आभा आकाश में चमकने वाले मंगल-ग्रह की भी है। उसे अंगारक कहते हैं और गणेश की कई चतुर्थियों का नाम भी अंगारिकी चतुर्थी रखा गया है। परन्तु मंगल का प्रभाव शुभ नहीं माना जाता है। गणेश तो मंगल मूर्ति हैं। उन्हें विघ्नहर्ता भी कहा जाता है। कलियुग में तो खासतौर पर उन्हीं की पूजा तत्काल सिद्धि देने वाली है यह माना जाता है। 'कलौ चंडी विनायकौ'। रामनौमी, जन्माष्टमी और गणपति-पूजन—इन तीनों त्यौहारों का एक-सा महत्व है। भारतीय समाज अपने इन त्यौहारों को

करती, वरन् उसका सिद्धान्त तो यह है कि—'वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खाः शतान्यपि।' अर्थात् सौ मूर्ख और आचरण-हीन पुत्रों से एक गुणवान पुत्र ही अधिक अच्छा है। परन्तु गुणी पुत्र यों ही किसी पेड़ से टपक पड़ते है, ऐसी बात नहीं है। इसे पाने के लिए माता-पिता को तप करना पड़ता है। दैवी गुणों से अपने जीवन को संजोया जाता है, जिनके प्रभाव से दीर्घायु तथा विद्वान सन्तान के जन्म से घर सुशोभित होते हैं। इस सम्बन्ध की एक कथा श्रीकृष्ण के जन्म से पहले की है।
एक बार लोमस ऋषि मथुरा नगरी मे गए और कारागृह मे महात्मा वसुदेव और देवी देवकी से भेंट की। माँ देवकी ने उनका बड़ा स्वागत किया। लोमस ऋषि ने माता देवकी से कहा—देवि! दुष्ट कंस ने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, तुम्हारे नव-जन्मित शिशुओं की हत्या से उसने अपने हाथ रंगे हैं इसलिए तुम पुत्र शोक से दुखी हो। अतः तुम्हें सतान सप्तमी या मुक्ताभरण व्रत करना चाहिए। देवी देवकी ने इस व्रत की विधि जानने के साथ उसके पूर्व इतिहास को सुनने की इच्छा प्रगट की। तब लोमस ऋषि ने कहा कि—प्राचीन काल में नहुष नामक नरेश अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चन्द्रमुखी था। अपने राज्य में रहने वाले एक विष्णुगुप्त नामक ब्राह्मण की पत्नी रूपवती से उसका बड़ा स्नेह था। एक दिन दोनों मिलकर सरयू नदी मे नहाने के लिए गईं। वहाँ और भी अनेक स्त्रियाँ आई हुई थी जो स्नान कर चुकी थी और मंडल बाँध बैठी हुई शिव और पार्वती का पूजन कर रही थी। जब वे स्त्रियाँ अपना पूजन समाप्त करके घर की ओर चलने लगी तब रानी और ब्राह्मण पत्नी ने उनके पास जाकर प्रश्न किया कि तुम किसका और किस आशय से पूजन कर रही थी?

उन्होने उत्तर दिया कि यह पूजन शिव-गौरी का था। सुख-सौभाग्य पाने की इच्छा वाली नारियो को यह व्रत करना चाहिए ऐसा विद्वानों के मुख से सुनकर ही हमने आजीवन इस व्रत को करते रहने का संकल्प किया। परन्तु घर पहुँचकर यह अपने किये हुए सकल्प को भूल गईं। किसी संकल्प को करके भूल जाना भयानक अपराध है। उसका

परिणाम भी भयकर होता है। इसलिए मृत्यु के वाद रानी और ब्राह्मणी को वानरी और मुर्गी की योनि मे जन्म लेना पडा। कुछ काल के वाद उन्हें फिर मनुष्य योनि मिली। रानी इस जन्म मे मथुरा के राजा पृथ्वीनाथ की प्रिय पत्नी हुई और ब्राह्मणी उसी राज्य के पुरोहित अग्निमुख को ब्याही गई। इस जन्म मे भी उन दोनो मे वडी प्रीति हुई। किंतु व्रत को भूल जाने का फल दोनो को यही मिला कि बहुत अवस्था बीत जाने पर भी उनके कोई सतान नही हुई। वाद में मध्य अवस्था तक पहुँचने पर रानी के गर्भ से एक गू गा और वहरा लडका पैदा हुआ जो नौ वर्ष की अवस्था मे मृत्यु का शिकार हुआ। किंतु ब्राह्मणी को किसी ज्योतिषी के वताने से अपनी भूल याद आ गई और उसने उसका सुधार करने के लिए व्रत करना आरम्भ कर दिया। इसलिए उसके गर्भ से आठ पुत्र पैदा हुए। इस पर रानी को वडी ईर्ष्या हुई। एक दिन रानी ने आठो पुत्रो को भोजन करने के लिए अपने राज-भवन मे वुलाया और उन्हें विष मिला हुआ भोजन करा दिया। परन्तु माता के व्रत-पालन के प्रभाव से वे वच गए। तव रानी ने उन्हें नष्ट करने के दूसरे उपाय किए। लेकिन वे फिर वच गए। तव उसने ब्राह्मणी को अपने पास बुलाकर पूछा कि—तुमने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है जो तुम्हारे पुत्र मृत्यु के घातक आक्रमणो से वच जाते हैं। ब्राह्मणी ने ज्योतिषी के बताये हुए भेद को प्रगट कर दिया। इस पर रानी को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और उसने नियमानुसार इस सतान सप्तमी के व्रत को करके एक सद्गुणी सतान का मुख देखा। वह बालक आगे चलकर वडा यशस्वी धर्मनिष्ठ और कर्तव्य पालन करने वाला निकला।

लोमस ऋषि ने कहा—देवकी! जिस तरह रानी चन्द्रमुखी ने इस व्रत को पाया वसे ही इस व्रत से तुम्हे भी एक यशस्वी, विद्वान और जगत् को अपने धर्माचरण से उपदेश देने वाला गुणवान पुत्र प्राप्त होगा।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—"राजन्! मां देवकी के उसी व्रतानुष्ठान के फलस्वरूप उनके उदर से मेरा जन्म हुआ है। वस इसी से

समझ लो कि इस व्रत का क्या महत्त्व है। संतान की इच्छा रखने वाली प्रत्येक बहन को इस व्रत का पालन करना चाहिए और संयम नियम पूर्वक जीवन बिताकर गुणवान पुत्र प्राप्त करके उन्हें लोकोपकार में प्रवृत्त होने की शिक्षा देनी चाहिए। यही इस संतान के व्रत का रहस्य है।"

37 राधा अष्टमी

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी

भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी की भाँति भादों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को प्रतिवर्ष श्रीराधिका रानी के भक्त उनकी जन्म तिथि पर जन्मोत्सव मनाते हैं। बरसाना श्रीराधाजी के पिता वृषभानुजी की राजधानी थी। परन्तु श्रीराधिका का जन्म उनके ननिहाल रावल ग्राम में हुआ था जो मथुरा से यमुना पार चार मील की दूरी पर था।

राधा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना शक्ति का नाम है। वह उनकी प्रेममयी उपासना का मूर्तिमान स्वरूप है। निरंतर आराधना करते रहने के कारण ही उन्हें राधा कहते हैं। दिन रात, सोते-जागते और उठते बैठते अपने आराध्य का अनेक रूपों में चिंतन तो अनेक भक्तों ने किया परन्तु उस आराधन को तैल धारावत निरंतर अक्षुण्ण कैसे रखा जाय उसका प्रतीक भगवती राधा हैं। उन्हें अपने इष्ट की तन्मयता के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है। छुट्टी ही कहाँ मिलती है प्रियतम के ध्यान से जो दूसरी बातें सोची जा सकें।

यदि कोयल से कोई कहे कि आज तू छुट्टी मना। कुहू कुहू का शब्द मत बोल तो वह उत्तर देगी कि मैं अन्न और जल के बिना तो रह सकती हूँ परन्तु मेरा कुहू शब्द नहीं रुक सकता। उससे मुझे कष्ट नहीं होता। वह मेरे अन्दर की अनुभूति है। वह मेरा जीवन है। सूर्य, चन्द्र

और नक्षत्र मडल आदि को कभी भी छुट्टी नही। समुद्र निरन्तर ही गर्जन करता रहता है। नदियो मे जब तक जीवन है बराबर बहती रहती हैं। इसी तरह श्री राधा का चिर-स्मरण है। उसमे कभी थकान नही, कभी विराम नही। वह अखड है।

एक बार उनकी एक सखी ने उनसे कहा—"बहन! जिन श्याम-सुन्दर की याद मे दिन-रात तुम खोई रहती हो वह तो तुम्हारे वाम हैं।" वाम होना सस्कृत साहित्य का एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है विरुद्ध होना। अर्थात् श्री कृष्ण राधाजी के विरुद्ध है। इसीलिए वह उनके प्रेम की परवाह न करके उन्हें छोडकर द्वारिकापुरी मे जा बसे हैं। इसलिए सखी की सीख यह है कि जब श्री कृष्ण उन्हे छोडकर चले गए हैं तो उन्हें भी उनकी याद भुला देनी चाहिए। इस पर श्री राधिका ने उस सखी को उत्तर दिया।

सखि सचरतु यथेच्छ वामो वा दक्षिणोवास्तु।
श्वास इव प्रेयान्माम् गतागतै जीव धारयति॥

अर्थात्—यह तो उनकी इच्छा है। चाहे वाम हो या दक्षिण—वाम चलें अथवा दाएँ या दूसरे शब्दो मे यो कहिए कि विपरीत हो या अनुकूल। इसकी क्या चिंता है। हमारी नासिका के दोनो छिद्रो से प्राण वायु का सचार होता है। परन्तु वह वायु दोनो नथुनो से एक समान नही चलता। कभी दाईं ओर से चलता है और कभी बाएँ छिद्र से। पर किसी भी नथुने से प्राणवायु का सचार होने मात्र से ही तो शरीर बना रहता है। उसका रुक जाना ही मृत्यु है। और उसका चलते रहना ही जीवन है। इसी तरह मेरे आराध्य श्री कृष्ण चाहे वाम हो या दक्षिण। वे किसी भी प्रकार चलते रहे यही मेरा जीवन है। उनका किसी भी प्रकार न चलना मेरे लिए घातक है।

कितना ऊँचा आदर्श है भक्ति साधना का महारानी राधिका के जीवन मे। हमारी भी अपने लक्ष्य के साथ ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए। उपासना का बोझ हमारे ऊपर लदा हुआ नही होना चाहिए। मन की सलग्नता उसमे पूरी-पूरी होनी चाहिए। यदि मन के विरुद्ध उपासना की जाय तो वह भार प्रतीत होगी। जिस कार्य मे आत्मा रग नही

जाती, हृदय सम-रस नहीं हो जाता, यह मर्म मृत्यु जैसा दारुण हो जाता है।

उपासना या भक्ति के क्षेत्र में श्री राधिका को कई सम्प्रदायों में श्री कृष्ण से भी बढ़कर महत्ता दी गई है। केवल ब्रज की गलियों में ही नहीं भारत के समस्त भारतीय दल में महारानी राधिका के पावन नामों की गूंज सुन पड़ती है। उनके बिना श्री कृष्ण भी अधूरे हैं। किंतु भक्तिरस की इस माधुरी का नाम श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप से नहीं लिया गया केवल ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-माधव की चर्चा की गई है। उसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दी में ब्रज के सन्तों ने अत्यन्त मधुर शब्दों में उनका वर्णन और श्री कृष्ण-प्रेम की तन्मयता का वर्णन अपने-अपने काव्यों में किया है।

भक्ति रस की मूर्तिमती गंगा, सेवा की सजीव साधना और निर्मल तथा विशुद्ध प्रेम की प्राणमयी प्रतिभा महारानी राधिका का पुनीत जन्मोत्सव आज के दिन घर-घर में मनाया जाता है।

38 महालक्ष्मी व्रत

भाद्रपद शुक्ला अष्टमी

महालक्ष्मी पूजन का अनुष्ठान भादो महीने की शुक्ल पक्षीय अष्टमी से आरम्भ होकर आश्विन की कृष्णाष्टमी तक रहता है। एक पखवाड़े का यह साधन बड़ा कठोर है। इस अनुष्ठान में अपनी दैनिकचर्या को एक खास ढंग से चलाना पड़ता है। भारत में व्रतों और उत्सवों को मनाने का उत्तरदायित्व पुरुषों से अधिक स्त्रियों ने अपने ऊपर रखा है। क्योंकि घर की व्यवस्था को ठीक तरह से चलाने की जिम्मेदारी उन्हीं की होती है। वे हमारे घर की लक्ष्मियाँ हैं। यदि वे अपने उत्तरदायित्व से ही मूल्यांकन करके घर की व्यवस्था को ठीक

तौर से सम्भाल लें तो घरों में सुख-शान्ति के साथ-साथ स्वर्ग की विभूतियाँ अठखेलियाँ करती हुई दिखाई देने लगें। महिलाओं ने अपना कर्त्तव्य बहुत कुछ निभाया भी है। आज हमारे घरों में जो थोड़ा-बहुत धार्मिक वातावरण पाया जाता है तो वह अधिकतर बहनों की बदौलत ही। वरन् हमारा पुरुष वर्ग तो आज के विपावत और वैज्ञानिक चकमक के वातावरण से भरे हुए युग मे मन की कोमल वृत्तियों की ओर प्रवृत्त कराने वाले नियमो पर से अपना विश्वास खो बैठा है। और विदेशी शिक्षा-प्रणाली की बदौलत उसमें ऐसी हीन भावनाएँ घर कर गई हैं कि उसे अपनी संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान-गौरव भी नहीं रहा। यह मानना पड़ेगा कि चारों ओर फैले हुए भ्रष्टाचार और अनाचार का मूल कारण ही यह है कि चरित्र को ऊँचा उठाने वाले छोटे-छोटे साधनों तक की हम दिन-रात उपेक्षा करते रहने के आदी हो गए हैं।

स्त्रियों के समाज की भी हालत अब बिगडती जाती है। जहाँ तक साधारण बातों का प्रश्न है स्त्रियो मे प्राचीन परम्पराओ की मर्यादाओं को दृढ़ता से पकड़े रहने की परिपाटी अवश्य है किंतु उसके साथ ही अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास भी उन्ही मे अधिकतर फला हुआ है। यदि उन परम्पराओ का पालन उन का सही आशय समझकर वे करने लगें तो बहुत कुछ सुधार हो जाय, और मन पर उनका अच्छा प्रभाव भी पड़े। समझ-बूझकर नियमानुसार करने से महालक्ष्मी का यह व्रत अवश्य फल प्रदान करता है।

घर की लक्ष्मी सयम और नियम से रहकर पूरे एक पखवाड़े महालक्ष्मी का आवाहन करे। घरों को अव्यवस्थित रखने और उनमें अशांति फैलाने के लिए तो किसी साधन की जरूरत नही है। कूड़ा-कचरा तो हवा के साथ अपने आप ही उड-उड़कर चला आता है परन्तु घरों को स्वच्छ और स्वस्थ बनाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार पास-पड़ोस के मुहल्लों और गाँव मे सफाई और स्वास्थ्यकर वातावरण रखने के लिए और भी अधिक परिश्रम करना पडता है इसलिए लक्ष्मी पूजन को वास्तव में सफ़ाई का अभियान मानना चाहिए। सामूहिक

रूप से इसी के द्वारा गांव की सफाई हो जाती है। विशेषकर वर्षा ऋतु के पश्चात् प्राय देखा जाता है कि बहनें सबसे पहले घरों में गोबर उठ जाती हैं और झाड़ू देकर अपने अपने घरों को बुहारकर देव-मन्दिरों के समान स्वच्छ बनाती हैं। परन्तु अशिक्षा के कारण अपने घर का सारा कूड़ा-कचरा इकट्ठा करके पड़ोसी के दरवाजे पर डाल आती हैं। ऐसा क्यों होता है ? सामूहिक चेतना और सामाजिक भावना का अभाव ही उसका मूल कारण है। आज के युग को इस सामूहिक चेतना की बड़ी आवश्यकता है। अपने व्रतों और उत्सवों का फल केवल हमें ही मिले यह सोचना हमें समाज से दूर ले जाएगा और हमारी प्रत्येक क्रिया का फल सारे समाज को मिले, वह आगे बढ़े, इसकी निष्ठाएँ पवित्र हों सब सुखी हो इस बुद्धि से किये गए प्रत्येक कर्म का फल यदि समाज को मिलता है तो समाज स्वस्थ और बलवान होता है और उसके साथ हमारा भी कल्याण होता है, क्योंकि समाज की हम ही एक इकाई हैं।

गांवभर की स्त्रियां मिलकर एक-जैसा पूजन करें तो उनमें एक ही तरह की तन्मयता और निष्ठा जगेगी। महालक्ष्मी व्रत तो सब अवस्था और जाति की स्त्रियां मिलकर करती हैं। भादों की अष्टमी को—जिस दिन यह पूजन आरम्भ किया जाता है उस दिन सभी स्त्रियां एक साथ मिलकर किसी नदी तालाब या जलाशय पर स्नान के लिए जाती हैं और स्वच्छ होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करती हैं। उसके बाद साफ स्थान देखकर एक पटा रखती हैं और महालक्ष्मी की पूजा करने की भावना से उनका आवाहन करती हैं। एक आपस में उनकी महिमा का यशोगान करती हैं। इस सम्मिलित आवाहन से उनके विश्वास के अनुसार महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है।

इस सम्बन्ध मे एक पुरानी कथा इस प्रकार है कि—एक राजा के दो रानियां थी। एक के सिर्फ एक लड़का था और दूसरी के बहुत-से लड़के थे। महालक्ष्मी पूजा की तिथि आई। छोटी रानी के बहुत से लड़कों ने एक-एक लोंदा मिट्टी का लाकर एक हाथी बनाया तो बड़ा भारी हाथी बन गया। रानी ने बड़े चाव से उस मिट्टी का पूजन किया।

परन्तु बड़ी रानी, जिसके एक ही लड़का था, चुपचाप सिर नीचा किए बैठी रही। लड़के ने माँ से उदासी का कारण पूछा तो वह बोली—बेटा! मेरे भी यदि आज कई लड़के होते तो मैं भी इतना बड़ा हाथी बनाकर पूजती। लड़के ने माँ से कहा—माँ! तुम पूजन की व्यवस्था करो। मैं तुम्हारे लिए इससे बड़ा हाथी लाए देता हूँ। निदान वह लड़का इन्द्र के पास गया और वहाँ से अपनी माँ के पूजन के लिए ऐरावत हाथी को माँग लाया। माता ने बड़े प्रेम से उसका पूजन किया और कहा—बेटा! इस हाथी पर बैठकर माँ लक्ष्मी स्वयं आवें और गाँव भरके लोग उनका दर्शन करें। तभी मैं तेरा जन्म सफल मानूँगी। इस पर बेटे ने माँ लक्ष्मी की प्रार्थना की जिससे प्रसन्न होकर वह वहाँ प्रकट हुईं और हाथी पर सवार होकर उसकी माँ के सामने आईं। माँ ने बड़ी श्रद्धा से उनका पूजन किया। लक्ष्मी ने कहा—बेटी! मैं तेरे पुत्र के पुरुषार्थ पर प्रसन्न हूँ। इसलिए यह आशीर्वाद देती हूँ कि तेरे घर में तो मेरा वैभव चमकता ही रहेगा। साथ में इस गाँव के व्यक्ति श्रम और पुरुषार्थ को जब तक महत्ता देते रहेंगे तब तक यहाँ दुख और दरिद्र का वास नही होगा। यह सुनकर माँ लक्ष्मी तो अन्तर्धान हो गईं मगर गाँव का प्रत्येक परिवार समृद्धिशाली और सुखी हो गया।

39. पद्मा एकादशी

भाद्रपद शुक्ला एकादशी

भादो के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पद्मा या वामन एकादशी कहते हैं। इस दिन क्षीर सागर में शेष शय्या पर सोये हुए भगवान् करवट लेते हैं। आज के दिन वामन भगवान् के नाम का व्रत किया जाता है और उन्ही का पूजन किया जाता है।

40. चर्खा द्वादशी

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी अथवा २ अक्टूबर को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म दिन सारे देश में मनाया जाता है। कुछ लोग गांधी को राजनैतिक नेता मानते हैं। इसलिए हो सकता है कि इस धर्म ग्रंथ में उनका नाम देखकर चौंकें। परन्तु गाधीजी को केवल राजनैतिक नेता मानना एक भूल है। उनके जीवन का लक्ष्य तो भगवद्दर्शन था। वह कट्टर पक्के आस्तिक और धर्म का पालन करने वाले महापुरुष थे। उन्होंने ईश्वर के दो रूप माने थे। एक साकार और दूसरा निराकार। निराकार रूप मे वह परमेश्वर को सत्य मानते थे और साकार रूप मे दरिद्र नारायण को ईश्वर का स्वरूप मानते थे। कुछ लोगों ने इस द्वादशी का नाम मोहन द्वादशी रखा था, किंतु गाधीजी को अपनी जयन्ती मनाना अच्छा नही लगता था। लोगो को किसी बहाने से यदि दरिद्र नारायण की सेवा का अवसर हाथ आता तो वह उस अवसर को हाथ से जाने नही देते थे। इसीलिए उन्होने इस द्वादशी का नाम चर्खा द्वादशी रखा था। वैसे जब इस तिथी और अगरेजी तारीख मे भेद पड जाता है तब सप्ताह भर तक चरखा कातने का यज्ञ होता है। गुजरात मे इसे रहटा द्वादशी भी कहते हैं।

आज के दिन गाधीजी के लिखे हुए 'हिंद-स्वराज्य' और 'मगल प्रभात' इन दो ग्रथो का पाठ अवश्य करना चाहिए और गाधीजी के प्रिय काम करने चाहिएं। हरिजन सेवा, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम अथवा मुहल्लो की सफाई का काम सगठित रूप मे करना चाहिए।

इसके साथ गाधीजी के एकादश व्रत को अच्छी तरह से ध्यान देकर समझना चाहिए और उस पर चलने का सकल्प करना चाहिए। अपने अपने धर्मग्रन्थो के पाठ के साथ अन्यान्य धर्म ग्रन्थो को भी पढना चाहिए। इससे सर्व धर्म समभाव तो होगा ही पर दूसरो के धर्म मे कही हुई अच्छी बातो को समझने का अवसर भी मिलेगा।

गाधी जयन्ती के दिन को बहनो ने खासतौर पर अपनाया है। स्त्री-जाति मोक्ष की, स्वतनता की, ब्रह्मचर्य की और राष्ट्र सेवा की सपूर्ण अधिकारिणी है, इस सिद्धान्त को गाधीजी ने देश के हृदय पर इतनी दृढता के साथ अकित किया है कि गाधी युग को लोग स्त्रियो के उद्धार का युग कहते हैं। पढी लिखी बहने इस काल मे अपनी बेपढी बहनो को कुछ ज्ञान देकर और उन्हें विनम्रतापूर्वक प्राचीन आर्य सस्कृति का ज्ञान कराएँ तो देश नव युग के मार्ग मे दो कदम आगे बढ जावे।

आज के महत्त्वपूर्ण दिन को व्यर्थ की बातो मे नही खोना चाहिए। अपने अपने क्षेत्र मे कोई रचनात्मक और ठोस काम करके इसे बनाना चाहिए। इस सप्ताह मे गाधीजी के राष्ट्र कार्य और सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन को ऊँचा उठाने वाले सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जितने सार्वजनिक कार्यक्रमो का आयोजन हम कर सकें उतना ही अच्छा है। इस दिन श्रद्धा और प्रम से भजन और कीर्तन का कायक्रम भी रखा जाय तो अधिक अच्छा है।

41 वामन जयन्ती

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी

भादो के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु ने वामन रूप से अवतरित होकर पाताल के राजा बलि की परीक्षा ली थी। इसीलिए इस तिथि को वामन द्वादशी भी कहते हैं। लोगो को यह विश्वास है कि जो लोग नियमपूर्वक नदी मे स्नान करके यह व्रत करते हैं और वामन रूप हरि का पूजन करते हैं, उनके सभी मनोरथ पूरे होते हैं।

दैत्यराज पुरोचन त्रेता युग के अत्यन्त प्रतापी सम्राट् हो गए हैं। उनका पुत्र बलि भी अपने पिता के समान बलशाली और युद्ध विद्या

विशारद था। बड़े-बड़े शक्तिशाली लोग, यहाँ तक कि देवता भी उसके नाम से थर थर काँपा करते थे। एक बार स्वयं लंकेश रावण भी उससे युद्ध की परीक्षा करने गया था। परन्तु लज्जित होकर वहाँ से लौट आया। धीरे-धीरे बलि का प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि देवगण भी उससे सशंकित हो उठे। उसने अपने बाहु विक्रम से कई देवताओं को जीतकर कैद कर रखा था। इसलिए बहुत-से देवता मिलकर सृष्टि पालनकर्ता भगवान् विष्णु के पास अपना संकट निवेदन करने के लिए गए। देवताओं को भयभीत देखकर उन्होंने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें, राजा बलि पर मेरी निगाह है। पर समय की प्रतीक्षा कीजिए। दैत्यराज बलि कोई साधारण मनुष्य नहीं है। वह अपूर्व दानी और तपस्वी है और तपस्वी का तप कभी व्यर्थ नहीं जाता। मैं उसके जीवन क्रम से बहुत प्रभावित हूँ। इस पर आप लोगों को सशंकित होना उचित नहीं है। वह तपस्वी होने के साथ-साथ बहुत बड़ा स्वाभिमानी और अपने दिये हुए वचनों की रक्षा करने वाला है। आप लोग भी तो कम अभिमान नहीं रखते। बलि ने कुछ देवगणों को बंदी बनाकर आप लोगों के अभिमान को चुनौती दी है। तथापि मैं आप लोगों को वचन देता हूँ कि मैं माता अदिति के गर्भ से जन्म लेकर महाराज बलि के बंधन से देवताओं को मुक्त कर दूंगा।" देवगण यह आश्वासन पाकर अपने अपने स्थान को चले गए, और भगवान् विष्णु के अवतरित होने की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ समय बाद महर्षि कश्यप की साध्वी पत्नी माता अदिति के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। जन्म के समय शिशु को उन्होंने गौर से देखा कि उसका सिर बहुत बड़ा और हाथ पाँव छोटे छोटे थे। इस वामन रूप को देखकर अदिति ने समझ लिया कि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसी रूप में भगवान् ने मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण किया है। परन्तु इस तेजस्वी बालक के जन्म का समाचार सुनकर दैत्यों में बड़ी खलबली मच गई।

पुत्र जन्म से अदिति को जैसी प्रसन्नता हुई, वैसी ही प्रसन्नता महर्षि कश्यप को भी हुई। भगवान् विष्णु को पुत्र रूप में अपने घर

आया हुआ देखकर वह हर्ष से फूले न समाए। उन्होने उसी समय अनेक ऋषिगणो को निमन्त्रण देकर बुला भेजा और बालक का जात कर्म तथा नामकरण सस्कार किया। यथासमय यज्ञोपवीत सस्कार भी किया। ब्रह्मचारी वेष मे यज्ञोपवीत और मृगचर्म पहने हुए वामन बड़े ही सुन्दर दिखाई देने लगे।

उन दिनो राजा बलि एक विशाल यज्ञ कर रहे थे। इस यज्ञ काल मे उन्होने प्रत्येक याचक की इच्छा पूरी करने का सकल्प किया था। वामन रूप धारी विष्णु इस सकल्प का समुचित लाभ उठाने के आशय से उसके द्वार पर जा पहुँचे। अनेक ऋषि महात्मा और अपने उच्च कर्मचारियो से घिरे हुए राजा बलि यज्ञ मडप मे बैठे हुए थे। उसी समय द्वारपाल ने वामन वेषधारी एक ब्रह्मचारी के आगमन की सूचना दी। सुनते ही राजा बलि ने उन्हें आदरपूर्वक दरबार मे लाने की आज्ञा प्रदान की। वामन के वहाँ आते ही सभी लोग उनके तेजस्वी वेष को देखकर आश्चर्य-चकित हो गए। वामन वेषधारी ब्रह्मचारी के मुख मडल पर एक अलौकिक तेज झलक रहा था।

वामन को देखकर महर्षि शुक्राचार्य के मन में सदेह हुआ। उन्होने अपनी दिव्य दृष्टि से समझ लिया कि यह वामन कोई साधारण पुरुष नही है। इसलिए हो सकता है कि राजा बलि का अमगल चाहने वाला कोई देवता इस वेष मे आया हो। उन्होंने बलि को अपनी भाषा मे उससे सावधान रहने का सकेत किया। परन्तु बलि ने उनसे कहा— 'गुरुदेव धन और वैभव को मनुष्य पराक्रम से बढा सकता है। उसकी रक्षा कि चिन्ता करके अपने वचन को भग कर देने वाला मनुष्य पतित हो जाता है। अत द्वार पर आये हुए अतिथि को निराश नही लौटाना चाहिए। यही मेरा निश्चय है।

शुक्राचाय ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु अपने दृढ निश्चय और सकल्प की रक्षा के लिए बलि ने गुरु के वचनो को नही माना तथ वामन ब्रह्मचारी को अपने पास बुलाकर पूछा— क्या मांगना चाहते हो मांगो ?"

वामन न कहा— अधिक कुछ नही केवल तीन पैर पृथ्वी का दान

आपसे मांगने मैं आया हूँ। यदि आप इतनी कृपा कर दें तो मैं वेदाध्ययन के लिए एक कुटी बनवा लूँ और उसी में बैठकर विद्याध्ययन किया करूँ।"

बलि ने हाथ में कुशा और जल लेकर अपने कुलगुरु श्री शुक्राचार्य से दान मंत्र उच्चारण करने का आग्रह किया, परन्तु वह मंत्रोच्चारण करने के लिए तैयार नहीं हुए। बलि के आग्रह पर उन्हें मन्त्रोच्चारण के लिए विवश होना पड़ा। बलि ने वामन की इच्छा के अनुसार उन्हें तीन पग पृथ्वी दान कर दी। बलि के हाथ से संकल्प का जल और कुशा हाथ में लेते ही वामन ने अपना अलौकिक तेज प्रकट किया और एक पैर से सारी पृथ्वी नाप ली। दूसरे पैर से सारा आकाश। बाद में वह बलि से बोले—"राजन्! अब तीसरा पैर कहाँ रखूँ?" बलि ने विनम्र होकर ब्रह्मचारी के चरणों में अपना सिर झुकाकर कहा—"प्रभो! अब तीसरा पैर मेरी पीठ पर रख दीजिए।" उस अद्भुत और आश्चर्य-मय दान-कार्य को देखकर स्वर्ग के देवता भी विस्मित हो उठे। चारों ओर बलि की यश दुन्दुभी बज उठी। सभी लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसके बाद दैत्यों के संगठन का तेज घटने लगा। शुक्राचार्य के देखते-देखते उनका बल क्षीण पड़ गया। परन्तु बलि की दानशीलता पर प्रसन्न होकर वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण करने वाले श्री हरि ने उनसे कहा—'राजन्! मेरी आज्ञा है कि तुम आज से पाताल पुरी का राज्य अपने रहने के लिए सम्भाल लो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि वर्ष में चार मास तक प्रतिवर्ष तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हारा राज्य रक्षण किया करूँगा।" इसी वर के अनुसार श्री हरि चतुर्मास का समय प्रतिवर्ष वहाँ बिताते हैं जिसके बारे में देवशयनी एकादशी के प्रकरण में पहले काफी लिखा जा चुका है।

42 अनन्त चतुर्दशी

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी

अनन्त इत्यह पार्थ मम रूप विबोधय।
योऽय कालो यथाख्यात सोऽनन्त इति विश्रुत ॥

मेरे रूप का अन्त नही है। यह काल भी अनन्त है। सब मे मैं हूँ। ससार की प्रत्येक वस्तु का अन्त हो जाता है। जड, चैतन्य, चर और अचर, कोई भी वस्तु इस सृष्टि मे ऐसी नही है जिस का अन्त न हो। केवल भगवान् ही अनन्त हैं। उन्ही अनन्त भगवान् के पूजन से अपने जीवन को पवित्र करो यही आज के व्रत का रहस्य है। स्त्री पुरुष, बूढे-बच्चे और जवान तथा सभी वर्ण और देश के लोग इस व्रत को कर सकते हैं।

असल मे लोकप्रिय वर्षा ऋतु का यह अतिम उत्सव है। भगवान् विष्णु सृष्टि के पालन करने वाले तथा वनस्पति जगत् के स्वामी हैं। हमारे कृषि प्रधान देश मे फसल पकने के समीप के समय भगवान् विष्णु का पूजन स्वाभाविक ही है। गरमी की ऋतु मे पृथ्वी माता की तपस्या का समय होता है। गरम तवे की भाँति तप उठने तक पृथ्वी गरमी की तपस्या करती और अनन्त आकाश से जीवन दान की प्रार्थना करती है। वैदिक ऋषियो ने आकाश को पिता और पृथ्वी को माता कहा है 'माता भूमि पुत्रोऽह पृथिव्या' और अपने आप को उसका पुत्र माना है। देवी वसुन्धरा का तप देखकर उसके सर्वेश आकाश का हृदय पसीज उठना भी स्वाभाविक है। वह उसपर जल वरसाकर शीतल कर देता है। पृथ्वी अपनी गोद मे बाल-तृणो को लेकर हर्ष से प्रफुल्लित हो उठती है। लाखो जीव इस समय पैदा होकर उस माँ की छाती पर खेलने-कूदने लगते हैं। बडे से बडे वृक्ष को अपने पोषण के लिए पृथ्वी से रस प्राप्त होता है। पतगो के भी पख निकल आते हैं। फूलो के रगो को भी मात करने वाली तितलियाँ कलियो के साथ क्रीडा करती हैं। भ्रमरो की गूज, पटवीजनो की चमक, कोयल की कुहू निजन से

निर्जन वनस्थली को प्रकृति के शयन कक्ष की भाँति बना देती हैं। इस अवसर पर अनन्त भगवान् का स्मरण जीवन को सरसता से भरपूर बना देता है।

संतप्त पृथ्वी को यह निधियाँ जल से प्राप्त होती हैं। इसलिए शुद्ध जल से भरा हुआ घट स्थापित करके, उसके पास चौदह गाठ बाधकर एक डोरा रखा जाता है। और तब उसकी पूजा की जाती है। चौदह गाठ वाले डोरे का विधान इसलिए है कि इस व्रत मे चौदह ग्रथि देवताओ का पूजन है, जैसा नीचे लिखे हुए श्लोक मे कहा गया है —

नव्यदोरे विष्णुरग्निस्तथा सूर्य पितामह ।
रुद्र पिनाकी विघ्नशं स्कद शक्रस्तथैव च
वरुण पवन पृथिवी वसवो ग्रथि देवता ।
सूत्र ग्रथिषु सस्थाय अनन्ताय नमो नम ॥

पृथ्वी और अनन्त के साथ जन का यह सम्बन्ध नया नहीं है। यह पृथ्वी हमारे पूवजो की भी जननी है। उसकी गोद म जन्म लेकर हमारे पूर्व पुरुषो ने बड बडे पराक्रम के काम किए हैं।

यस्या पूर्व पूवजना विचक्रिर।

—अथववद पृथ्वी सूक्त ५

उन पराक्रमो की कथा हमारे जन जीवन का इतिहास है। उसी जन की हर्ष से भरी हुई किलकारियो का गीत, नृत्य और मगलोत्सव जन सस्कृति के द्वारा लोक की आत्मा को प्रकाशित करते हैं। पृथ्वी पर जो ग्राम और अरण्य हैं उनमे भी इसी सस्कृति के अकुर फूले हैं। वेदो मे उसी तथ्य को इन शब्दो मे प्रकट किया गया है।

ये ग्रामा यदरण्य सभा अधि भूम्या ।
ये सग्रामा समितयास्तेपु चारु वदेम ते ॥—पृ० सू० ५६

इस पृथ्वी पर जो भी ग्राम अथवा वन हैं, जो सभाएँ अथवा ग्राम समितियाँ हैं, जो सार्वजनिक सम्मेलन (मेले) हैं, उनमे माँ वसुधरे ! हम तुम्हारे लिए सुन्दर भाषण करें।

सुन्दर भाषण का अर्थ है माँ वसुधरा का प्रशसा गान। उसमे हमारी वाणी उदार हो। सभा और समितियो को वेदो मे प्रजापति

ब्रह्मा की पुत्रियाँ कहा गया है। राष्ट्रीय जीवन के साथ उनका मिलकर काम करना अत्यन्त आवश्यक है। भूमि, जन और जन की संस्कृति ये तीनों मिलकर राष्ट्र कहलाते हैं। इसलिए अनन्त चतुर्दशी के दिन राष्ट्रीय स्तर पर व्रत करने का विधान है। अत्यन्त उत्साह के साथ पकी हुई फसल का बीज लाया जाता है और फसल देने वाले इन्द्र, वरुण, गणेश, सूर्य, चंद्र आदि देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अनन्त भगवान् का श्रद्धा सहित पूजन किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा जो लोक में प्रचलित है वह इस प्रकार है :—

"सत्य युग में सुमन्त नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम दीक्षा था। उनकी शुभ लक्षणों से युक्त शीला नाम की एक कन्या थी। जब शीला कुछ सयानी हुई तब दैवयोग से उसकी माता दीक्षा का शरीरान्त हो गया। तब सुमन्त ने कर्कशा नाम की एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया और कौडिन्य नामक एक ब्राह्मण के साथ शीला का विवाह कर दिया। सुमन्त के मन में अपनी कन्या को कुछ धन देने की इच्छा हुई। परन्तु कर्कशा ने वैसा करने से उसे रोक दिया और एक बक्स में बहुत-से ईंट-पत्थर भरकर लड़की के साथ भेज दिए।

पत्नी को साथ में लिये हुए कौडिन्य मार्ग में यमुना नदी के किनारे ठहरे। वहाँ कुछ स्त्रियाँ अनन्त भगवान् का पूजन कर रही थीं। नव विवाहिता शीला ने उनके पास जाकर पूजन में भाग लिया और विधि के अनुसार एक डोरे में चौदह गाँठें बाँधकर उसे केसर के रंग में रंगा और अनन्त भगवान् का पूजन करके डोरा अपने हाथ में बाँध लिया। शीला के घर आते ही कौडिन्य का घर जगमगा उठा। सारा गृह धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया।

एक दिन कौडिन्य ने ससुराल से मिले हुए बक्स को खोलकर देखा तो बड़े क्रोधित हुए और शीला के हाथ में पीला धागा बँधा देखकर यह समझा कि उसे वश में करने के लिए शीला ने कोई यन्त्र बाँध रखा है। उसने उसे छीनकर आग में डाल दिया। शीला बड़ी दुखी हुई और आग में से उस डोरे को निकालकर दूध में भिगोकर फिर हाथ

मे बांध लिया। किंतु कौंडिन्य के घर से धीरे धीरे सारी सम्पदा खिस कने लगी। सारा माल असबाब चोर चुराकर ले गए। घर मे दरिद्रता आ गई। नाते रिश्ते के लोगो न साथ छोड दिया। शीला ने कौंडिन्य से कहा—'स्वामिन्! आपने बात की असलियत जान बिना मुझपर दावा करके भगवान् अनन्त का तिरस्कार किया है। आप को इस अपराध का प्रायश्चित्त करना चाहिए। तभी हम लोग फिर से सुखी हो सकेंगे। इस जीवन मे अनावश्यक शका नही करनी चाहिए।"

कौंडिन्य अपनी पत्नी से अनन्त भगवान की महिमा सुनकर गहर वन मे चले गए और निराहार रहकर भगवत्स्मरण करने लगे। एक दिन उन्होने वन म एक आम का वृक्ष देखा जो फलो से लदा हुआ था परन्तु उस पर न तो कोई पछी बैठता था और न कोई कीडा मकोडा उस पर चढता था। कौंडिन्य ने उस वृक्ष को दखकर उससे पूछा—'हे महाद्रुम! क्या तुमने भगवान् अनन्त को देखा है?' उस वृक्ष ने कहा— हे ब्राह्मण! मैंने आज तक किसी अनन्त का नाम भी नही सुना।'

इसके बाद कौंडिन्य ने एक बछडे सहित गाय देखी। वह घास के बीच मे इधर उधर दौड रही थी। कौंडिन्य ने उससे पूछा— 'हे धेनु! क्या तुमने कभी इस बन मे अनन्त भगवान को देखा है?' गाय ने उत्तर दिया— हे ब्राह्मण! मैं अनन्त को नही जानती।"

आगे बढने पर उसने हरी घास पर बैठे हुए एक बैल को देखा। कौंडिन्य ने उससे भी वही प्रश्न किया— हे बैल! क्या तुमने अनन्त नाम धारी किसी देवता को इस वन मे देखा है?' बैल ने कहा— नही, मैंने अनन्त को नही देखा।'

इसके बाद एक हाथी और एक गधा मिला। ब्राह्मण ने उनसे भी वही पूछा। उन दोनो ने बडे तिरस्कार भरे शब्दो मे कहा— हमने किसी अनन्त नाम धारण करने वाले को आज तक नही देखा।" कौंडिन्य ने सोचा कि दुनियाँ का कोई प्राणी जिस अनन्त को नही जानता और आजतक उसे न किसीने देखा और न सुना। वह अनन्त कौन है? कैसा है और कहाँ रहता है? ब्राह्मण इसी चिंता मे थककर एक ओर बैठ

गया। थोडी देर मे श्री अनन्त भगवान् एक वृद्ध ब्राह्मण के वेष मे प्रकट हुए और कौंडिन्य का हाथ पकडकर अपनी पुरी मे ले गए। उस पुरी का वैभव और शान्त वातावरण देखकर ब्राह्मण को बडा सतोष हुआ और उसने वृद्ध तपस्वी से पूछा—भगवान्! आप कौन हैं? और यह कौन सी नगरी है?"

यह सुनकर प्रभु ने अपना वृद्ध ब्राह्मण का वेष दूर करके शख, चक्र गदा और पद्म धारण किये हुए चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति के रूप मे दर्शन दिए और ब्राह्मण से कहा—'हे विप्र! मैं ही अनन्त हूँ। अपनी साध्वी पत्नी के पुण्य बल से ही तुम मेरा साक्षात् कर सके हो। उसका कभी भी तिरस्कार मत करना।" ब्राह्मण ने प्रभु को प्रणाम करके प्रश्न किया कि देव! आप इतने दुर्लभ हैं कि मार्ग मे मिले हुए कोई भी प्राणी मुझे आपके बारे मे कुछ नही बता सके। इसका क्या कारण है? श्री भगवान् अनन्त ने कहा—"विप्र! तुम्हें मिलने वालो मे सर्व प्रथम एक आमका वृक्ष था। वह वृक्ष पहले एक ब्राह्मण था जो पडित होने के साथ बडा घमडी था और अपने शिष्यो को भी पूरी विद्या का रहस्य नही बताता था इसीलिए वह वृक्ष बन गया। दूसरी बछडे समेत गाय थी जो स्वय पृथ्वी थी। तीसरा बैल था जो साक्षात धर्म था। दो तलया जो तुमने देखी थी वे पूर्व जन्म मे सगी बहनें थी। किंतु वे जो दान करती थी आपस मे ही बाँट लेती थी इसलिए वे तलैयाँ बनी। जो हाथी मिला वह धर्म द्वषी था और गधा एक लोभी ब्राह्मण था। वह बूढे बनकर तुम्हारे पास आए थे। तुम निश्चय समझ लो दुर्गुणी पुरुष मुझे कभी भी नही पा सकते चाहे वे कितने ही बडे क्यो न हो। मुझे तो सरलता का गुण रखने वाले ही पा सकते हैं। वह गुण तुम्हारी पत्नी मे है। इसलिए यह उसी की पुण्य साधना का प्रभाव था कि तुम मुझे पा सके। कौंडिन्य भगवान् अनन्त की भक्ति से ओतप्रोत होकर अपने घर लौटे और अपनी भोली-भाली साध्वी पत्नी का आदर करने लगे। उनका घर फिर से धन धान्य से भरपूर हो गया और घर मे सुख शान्ति का साम्राज्य छा गया।

45. जीवित्पुत्रिका व्रत

आश्विन कृष्णा अष्टमी

*आश्विन कृष्णा अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियाँ इस पर्व के दिन उप-*वास करती हैं। इससे सन्तान का अल्पायु योग दूर होता है। वे इसे निर्जल सम्पन्न करती हैं। इसके बारे मे एक प्राचीन कथा प्रचलित है। वह इस प्रकार है —

प्राचीन काल मे जीमूत वाहन नाम के एक बडे धर्मात्मा और प्रतापी नरेश थे। एक बार वह वन विहार के लिए गए हुए थे। सयोगवश उसी वन मे मलयवती नाम की एक राजकन्या देव-*पूजन के लिए आई हुई थी। दोनो ने एक-दूसरे को देखा और प्रेम पाश* मे बँध गए। राजकन्या के पिता और भाई ने मलयवती का विवाह जीमूतवाहन के साथ करने का पहले ही निश्चय कर रखा था। मलयवती के भाई भी आखेट के लिए उसी वन मे आये हुए थे। उन्होने इन दोनो के पारस्परिक मिलन को देख लिया। राजकुमारी तो चली गई किंतु विरह-ज्वाला मे दग्ध महाराज जीमूतवाहन के लिए वही बन पुण्य-स्थली बन गया, वे वही घूमने लगे। घूमते-घूमते एक दिन उन्होंने किसी के रोने की आवाज सुनी। महाराज ने उस स्थान पर पहुँच कर रोने वाले से दुख का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि शखचूर्ण सर्प *की माता इसलिए विलाप कर रही थी कि उसका इकलौता पुत्र आज* गरुड के आहार के लिए जा रहा है। राजा ने माँ को शान्त किया और *जो स्थान गरुड के आहार के लिए नियत था उस स्थान पर* सर्प की जगह वह स्वय लेट गए। गरुड ने आकर जीमूतवाहन पर अपनी चोच मारी। राजा चुपचाप पड रहे। गरुड को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि यह कौन है। परन्तु जीमूतवाहन ने गरुड से कहा कि—"आपने भोजन बद क्यों कर दिया ?"

गरुड ने राजा को पहचानकर बडा खेद प्रकट किया। मन मे सोचा कि यह भी एक प्राणी है जो दूसरे का प्राण बचाने के लिए अपनी

जान दे रहा है। और एक मैं हूँ जो अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरे के प्राण ले रहा हूँ। इस अनुताप के कारण गरुड ने राजा को छोड दिया और वर मांगने को कहा। राजा ने कहा कि आज तक आपने जितने सर्प मारकर खाए हैं उन्हें जीवित कर दीजिए और आगे से सर्पो को न मारने का वचन दीजिए। गरुड एमवस्तु कहकर चले गए। सर्पो की माता ने भी प्रसन्न होकर राजा को आशीर्वाद दिया और अपने पुत्रो से उनकी खेती की रक्षा करने को कहा। खेत के चूहो को खाकर सर्प उस दिन से हमारे खेतो की रक्षा करने लगे।

कीट, पतग, पशु, पक्षी, वृक्ष और वनस्पति आदि से ऐसी ही आत्मीयता का सम्बन्ध जोडने का प्रयत्न भारतीय सस्कृति मे किया गया है। मनुष्य की शक्ति सीमित है। लेकिन उसी सीमित शक्ति से जो कुछ वह कर सकता है उसे करने का आदेश भारतीय सस्कृति ने दिया है। हम सारे जीवो की रक्षा नही कर सकते किन्तु प्रम तो सबसे कर ही सकते हैं। उसका परिणाम शुभ होता है और मानव का कल्याण होता है।

राजा जीमूतवाहन जब वहाँ से उठकर चलने को तैयार हुए तब मलयवती के पिता और भाई उन्हें ढूंढते हुए वहाँ आ पहुँचे और आदर के साथ उन्हें अपने घर ले गए। उस दिन आश्विन की कृष्णाष्टमी थी। घर आकर मलयवती के पिता ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया।

46 इन्दिरा एकादशी

आश्विन कृष्णा एकादशी

अधोगति को प्राप्त हुए पितरो को गति देने वाली इन्दिरा एकादशी आश्विन मास के कृष्ण पक्ष मे पडती है। ब्रह्म वैवत पुराण मे

43 उमा महेश्वर व्रत

भाद्रपद पूर्णिमा

भादों के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को उमा महेश्वर व्रत किया जाता है। इसके माहात्म्य का वर्णन मत्स्य पुराण मे किया गया है। कहते हैं कि एक बार महर्षि दुर्वासा कैलास वासी शकर के दर्शन करके लौट रहे थे। राह मे उन्होने भगवान् विष्णु को भी घूमते हुए देखा। शकर जी की दी हुई विल्व पत्र की माला उन्होने विष्णु को दे दी। भगवान् विष्णु ने वह माला अपने वाहन गरुड के गले मे डाल दी। इस पर दुर्वासा ऋषी को बडा बुरा लगा। उन्होंने भगवान् विष्णु से कहा—"आपने शकर की माला का अपमान किया है, इसलिए आप अपने विष्णुपद से भ्रष्ट हो जाएँगे।'

श्री विष्णु अपन पद से भ्रष्ट होकर वन मे भटकने लगे। एक दि समाधिस्थ शकर ने अपने ध्यान मे उनकी दशा देखी तो वह दुखं होकर उनके पास गए और उन्हें प्रणाम करके शाप से मुक्त कर दिया इस व्रत का आशय यही है कि शिव और विष्णु मे किसी भी प्रकार का वैर विरोध नही है। विष्णु भगवान् को भी प्रमाद के कारण सजा भुगतनी पडी। कर्म की गति ऐसी ही प्रबल होती है।

44 महालयारम्भ

आश्विन कृष्णा प्रथमा

आश्विन कृष्णा प्रतिपदा से महालयारम्भ होता है और अमावस्या को पूर्ण होता है। इस पूरे पक्ष को पितृपक्ष कहते हैं। इसमे अपने मृत पूर्वजा का श्राद्ध किया जाता है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित

करने के लिए और जीवन वृक्ष मे लगे हुए मृत्यु फल की चिर स्मृति कायम रखने के लिए इस पक्ष का प्रत्येक दिन एक अमर सगीत या राग सुनाता है।

भारतीय सस्कृति मे मृत्यु के सबध मे जो विचार व्यक्त किए हैं वे अत्यन्त भव्य है। उनमे मृत्यु की भीषणता को भी केवल वस्त्र परिवर्तन माना गया है जैसा गीता मे भगवान् श्री कृष्ण का कथन है—

वासासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥

अर्थात्—मरना मानो वस्त्र बदलना है। एक कपडा पुराना हो गया तो नया वस्त्र बदल लिया गया। यही मृत्यु है। उसे बुरा क्यो मानें ? जीवन और मृत्यु दोनो मगलभाव है। जीवन मे मृत्यु का फल लगता है और मृत्यु मे जीवन का।

प्रकृति माता कोई दरिद्रा तो है नही। उसके भडार मे अनन्त कोटि वस्त्र भरे हुए है। इसका यह अर्थ नही है कि हम अपने कपडे को फाड डालें। जहाँ तक हो सके उन्हे सम्हालकर पहनें और उसका ठीक-ठीक उपयोग करें। जब तक जिए तभी तक सारे नाते-रिश्ते मानते रहे और मरते ही वह सारे उपकार जो जीवन मे मरने वाले ने किए थे उन्हें भुला दें। यह तो अकृतज्ञता हुई। उस अकृतज्ञता को ही क्यो न मिटाया जाय। इसीलिए पितृपक्ष मनाया जाता है। हमारा परिवार या उसमे जो भी सुख समृद्धि है वह उन्ही पूर्वजो की सचय की हुई दौलत ही तो है।

यदि मृत्यु न होती तो यह ससार कितना विषम होता। इसीने तो नए-से-नए फूलो को रोज विकसित होने का अवकाश दिया है। अमर होकर रहने मे जीवन की नवीनता कैसे आती। इसीलिए तो यह महा-निर्वाण का पर्व है। एक अमर आशा की झलक उसकी तह मे दिखाई देती है। वह आत्मा और परमात्मा की एकता का मगल राग है। उस राग को जीवन मे हँसते हँसते दुहराते रहना चाहिए। उस पर दुखी होकर रोना या चिल्लाना व्यर्थ है। पूर्वजो की चिरस्मृति के उस पर्व को श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाना ही इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है।

45. जीवित्पुत्रिका व्रत

आश्विन कृष्णा अष्टमी

आश्विन कृष्णा अष्टमी को पुत्रवती स्त्रियाँ इस पर्व के दिन उपवास करती हैं। इससे सन्तान का अल्पायु योग दूर होता है। वे इसे निर्जल सम्पन्न करती हैं। इसके बारे में एक प्राचीन कथा प्रचलित है। यह इस प्रकार है —

प्राचीन काल में जीमूत वाहन नाम के एक बड़े धर्मात्मा और प्रतापी नरेश थे। एक बार वह वन विहार के लिए गए हुए थे। संयोगवश उसी वन में मलयवती नाम की एक राजकन्या देव-पूजन के लिए आई हुई थी। दोनों ने एक दूसरे को देखा और प्रेम पाश में बँध गए। राजकन्या के पिता और भाई ने मलयवती का विवाह जीमूतवाहन के साथ करने का पहले ही निश्चय कर रखा था। मलयवती के भाई भी आखेट के लिए उसी वन में आये हुए थे। उन्होंने इन दोनों के पारस्परिक मिलन को देख लिया। राजकुमारी तो चली गई किंतु विरह ज्वाला में दग्ध महाराज जीमूतवाहन के लिए वही वन पुण्य-स्थली बन गया, वे वहीं घूमने लगे। घूमते-घूमते एक दिन उन्होंने किसी के रोने की आवाज सुनी। महाराज ने उस स्थान पर पहुँच कर रोने वाले से दुख का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि शंखचूर्ण सर्प की माता इसलिए विलाप कर रही थी कि उसका इकलौता पुत्र आज गरुड के आहार के लिए जा रहा है। राजा ने माँ को शान्त किया और जो स्थान गरुड के आहार के लिए नियत था उस स्थान पर सर्प की जगह वह स्वयं लेट गए। गरुड ने आकर जीमूतवाहन पर अपनी चोंच मारी। राजा चुपचाप पड़े रहे। गरुड को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि यह कौन है। परन्तु जीमूतवाहन ने गरुड से कहा कि— आपने भोजन बंद क्यों कर दिया ?

गरुड ने राजा को पहचानकर बड़ा खेद प्रकट किया। मन में सोचा कि यह भी एक प्राणी है जो दूसरे का प्राण बचाने के लिए अपनी

जान दे रहा है। और एक मैं हूँ जो अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरे के प्राण ले रहा हूँ। इस अनुताप के कारण गरुड ने राजा को छोड दिया और वर मांगने को कहा। राजा ने कहा कि आज तक आपने जितने सर्प मारकर खाए हैं उन्हें जीवित कर दीजिए और आगे से सर्पों को न मारने का वचन दीजिए। गरड एमवस्तु कहकर चले गए। सर्पों की माता ने भी प्रसन्न होकर राजा को आशीर्वाद दिया और अपने पुत्रो से उनकी खेती की रक्षा करने को कहा। खेत के चूहो को खाकर सर्प उस दिन से हमारे खेतो की रक्षा करने लगे।

कीट, पतग, पशु, पक्षी, वृक्ष और वनस्पति आदि से ऐसी ही आत्मीयता का सम्बन्ध जोडने का प्रयत्न भारतीय सस्कृति मे किया गया है। मनुष्य की शक्ति सीमित है। लेकिन उसी सीमित शक्ति से जो कुछ वह कर सकता है उसे करने का आदेश भारतीय सस्कृति ने दिया है। हम सारे जीवो की रक्षा नही कर सकते किन्तु प्रम तो सबसे कर ही सकते है। उसका परिणाम शुभ होता है और मानव का कल्याण होता है।

राजा जीमूतवाहन जब वहाँ से उठकर चलने को तैयार हुए तब मलयवती के पिता और भाई उन्हें ढूंढते हुए वहाँ आ पहुँचे और आदर के साथ उन्हें अपने घर ले गए। उस दिन आश्विन की कृष्णाष्टमी थी। घर आकर मलयवती के पिता ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया।

46 इन्दिरा एकादशी

आश्विन कृष्णा एकादशी

अधोगति को प्राप्त हुए पितरो को गति देने वाली इंदिरा एकादशी आश्विन मास के कृष्ण पक्ष मे पड़ती है। ब्रह्म वैवर्त पुराण मे

कहा गया है कि—महिष्मती नगरी में सतयुग में इन्द्रसेन नाम का एक राजा था। उससे एक दिन देवर्षि नारद ने कहा कि मैं यमलोक में तुम्हारे पिता को बड़ा दुखी देखकर आया हूँ। इसलिए तुम इन्दिरा एकादशी का व्रत करके उनको सुखी करो। नारद ने राजा को व्रत करने की विधी भी बता दी। जिसे करके राजा ने अपने पिता को स्वर्ग में पहुँचा दिया। उसी नरेश को देखकर समाज के लोगों ने उस विधि के अनुसार इस व्रत को करना आरम्भ कर दिया।

47 पितृ अमावस्या

आश्विन अमावस्या

जिन पितृ-पूर्वजों की निधनतिथि हमें स्मरण न हो उन सबका श्राद्ध आज के दिन किया जाता है। अमावस्या उस तिथि का नाम है जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा एक सीध में रहते हैं। अमावस्या पितृ-कार्य का दिन है और चन्द्रलोक ही पितृ लोक है। दूसरे दिन से शुक्ल पक्ष का आरम्भ होता है। अंधकार से प्रकाश का मार्ग खुलता है। मृत पितृ अन्धकार से प्रकाश मार्ग पर अग्रसर हों इसलिए अमावस्या का श्राद्ध करके उन्हें विदा दी जाती है। इस दिन शौच स्नान आदि से निवृत होकर किसी नदी के तीर अथवा जलाशय के निकट शान्त चित से पितरों का तर्पणकरके योग्य पात्रों को दान करना चाहिए।

48 नवरात्रि

आश्विन शुक्ला प्रतिपदा

विक्रमीय सवत्सर की काल गणना के अनुसार एक मास में दो पक्ष होते हैं। प्रत्येक पक्ष में १५ दिन के हिसाब से वर्ष में ३६० दिन होते

हैं। इन ३६० दिनो मे चालीस (४०×९=३६०) नवरात्र होते हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश है। इसलिए जिन दो नवरात्रियो को महत्वपूर्ण मानकर अधिकतर देवकार्य किए जाते हैं यह वही नवरात्रियाँ हैं जिनमे प्रकृति माता की देन के रूप मे अन्न पककर हमारे घरो मे आता है। इनमे एक शारदीय और दूसरी चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक वासन्तीय होती है। इस काल के निर्धारण मे हमारे प्राचीन गणित आचार्यों ने बडी योग्यता से काम लिया है। क्योकि ऋतु विज्ञान के तत्ववेत्ताओ ने जीवन का मूल अग्नि और सोम को माना है। उनके धर्म गर्मी और सर्दी हैं। उन दोनो का आरम्भ अपने-अपने ढग से इन्ही ऋतुओ मे होता है। और दोनो नवरात्रियाँ उनके आरम्भ काल मे मनाई जाती हैं। इस अवसर पर नवीन धान्य के साथ-साथ नवीन शक्ति का सञ्चय भी मानव को करना चाहिए। इसलिए इन नवरात्रियो मे प्राय महाशक्ति का भिन्न-भिन्न रूपो मे पूजन किया जाता है। महाशक्ति के तीन रूप प्रधान माने जाते हैं—'महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती।' दुर्गा सप्तशती मे उन तीनो स्वरूपो के गुण और पराक्रम का वर्णन हुआ है। अट्ठारह अध्याय के इस छोटे से ग्रथ मे तीन चरित्र हैं। प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र और उत्तम चरित्र। तीनो चरित्रो मे शक्ति स्वरूपा माँ दुर्गा के अद्भुत पराक्रम का उल्लेख है।

इस ग्रथ के मध्यम चरित्र मे एक बडी लोकोपकारक कथा का वर्णन हुआ है। वह इस प्रकार है कि पूर्वकाल मे देवताओ और असुरो मे पूरे सौ वर्ष तक घोर सग्राम हुआ। उसमे असुरो का स्वामी महिषासुर था और देवताओ के स्वामी इन्द्र थे। महिषासुर सामन्तशाही को मानने वाला और साम्राज्यवादी था। अग्नि, वायु, चद्र, इन्द्र, यम आदि सभी देवगण के अधिकार उसने छीन लिए थे। और उन्हें अपना बदी बना लिया था तथा उनके सभी कामो को खुद चलाने लगा।

तत पराजिता देवा पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेश गरुडध्वजो ॥४॥

तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजी को आगे करके उस स्थान पर गए जहाँ भगवान् शकर और विष्णु विराजमान थे। परमात्मा ने

जो व्यवस्था सृष्टि की कर रखी थी उसे उसने अस्त-व्यस्त कर डाला। इसी बारे में उन्होंने सब बातें प्रभु से कही। उसे सुनकर विष्णु और शंकर दोनों में पुण्य-प्रकोप जाग उठा। उससे एक महाशक्ति का अवतरण हुआ। सभी देवताओं ने उस महाशक्ति को अपने अलंकार आयुध और तेज से मंडित किया। तब उस महाशक्ति से असुरों का युद्ध हुआ जो दसमी तक चला। उसी देवी शक्ति की जीत का त्योहार नवरात्रि है।

इस विजय से असुरों का ह्रास हुआ। जगत् की बिगड़ी हुई परम्पराओं को देवताओं ने फिर से मिलकर सुधारा। अनुकूल वायु प्रवाहित हुई। वर्षा ने पृथ्वी का ताप हरण किया, दिशाएँ खिल उठीं। त्रस्त लोगों को महाशक्ति का वरदान मिला। वे निर्भय हो गए। सप्तशती के तीसरे चरित्र में महासरस्वती के चित्र का वर्णन है। धरती ने अभी हरित परिधान नहीं छोड़ा था। परिपक्व धान्य सुवर्ण का रंग लिये हुए खेतों में शोभायमान हो रहा था। उस समय देवों ने भी शारदा का ध्यान किया। जिस रूप में माँ शारदा प्रकट हुईं उसका वर्णन सप्तशती के के इस श्लोक में किया गया है —

> घंटा शूल हलानि शंख मुसले चक्र धनु सायकं।
> हस्ताब्जैर्दधती धनान्त विलसच्छीतांशु तुल्य प्रभाम्॥
> गौरी देह समुद्भवाम् त्रिजगतामाधारभूतामहा-
> पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादि दैत्यार्दिनीम्॥

अर्थात्—जो अपने कर कमल में घंटा, शूल, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण किये हुए शरदऋतु के स्वच्छ चन्द्रमा के समान शुभ्र और शीतल कांति वाली तीनों लोकों की आधारभूता, शुंभ और निशुंभ आदि दैत्यों का मद मर्दन करने वाली माँ सरस्वती वहाँ प्रकट हुईं।

माँ शारदा के प्रकट होते ही चारों ओर ऋद्धि-सिद्धि चमक उठी। घर-घर में समृद्धि छा गई। वह माँ किस अवस्था वाली है यह कौन जाने मगर अपनी शक्तिदायिनी स्तन्य धारा से उसने जन-जन का कंठ सिंचित किया। तब से वह बराबर अखिल ब्रह्माण्ड को अपने प्रभाव में लेकर

उसका पालन कर रही है। हमारी बालोचित क्रीडा पर विमुग्ध होकर यह पवित्रता, वात्सल्य करुणा और दया का वरद हस्त हमारे अग अग पर फेरती है। उसका वर पाकर मानव कृतकृत्य हो जाता है। उसकी गध से सारा दृश्य जगत् सुरभित है। उसके सौरभ का आकर्पण सर्वत्र है। वह श्रद्धा, दया, क्षमा निद्रा, शक्ति और ओज आदि से मानव का जीवन उपकृत करे यही प्रार्थना देवी सूक्त के मत्रो मे कही गई है।

या दवी सर्व भूतेपु शक्ति रूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

मा के रूप मे उसी शक्ति का पूजन ही नवरात्रि महोत्सव का लक्ष्य है।

49. विजया दशमी

आश्विन शुक्ला दशमी

विजयादशमी विजय की प्रेरणा देने वाला त्योहार है। सारे देश मे यह त्योहार आश्विन शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार यह क्षत्रियो का राष्ट्रीय पर्व है। परन्तु इस दिन के साथ कई प्रकार की कथाएँ जुडी हुई हैं। ब्राह्मणो तथा बुद्धिजीवियो का सरस्वती पूजन या वेदारम्भ, क्षत्रियो का शस्त्र पूजन तथा सीमोल्लघन, वैश्यो की खेती और शूद्रो की परिचर्या, सभी बातें इस दिवस में समाविष्ट हैं। इसलिए विजयादशमी या दशहरा हमारा राष्ट्रीय पर्व है। जब गाँव के लोग नवरात्रि के सोने जैसी पीली-पीली जौ की नवीन कोपलो को अपने-अपने कानो मे खोसे हुए गाते-बजाते गाँव की सीमाएँ लाँघकर दूसरे गाँव वालो को उसे प्रदान करने के लिए निकलते हैं। तब ऐसा लगता है कि मानो सारे देश का पौरुष अपनी छटा दिखाने के लिए बाहर निकल खडा हुआ हो।

कहा जाता है आज के दिन भगवान् श्री राम ने लंका पर विजय प्राप्त की थी। रीछ और वानरों का दल किलकारियाँ भरता हुआ संसार की बुराइयों को जीतने के लिए मूर्तस्वरूप हो चल पड़ा था, उसे सफलता मिली थी। वे बुराइयाँ ही तो मानो साक्षात् दशग्रीव रावण है। उसने सारे देश में आतंक मचा रखा था। सब लोग उससे त्रस्त थे। देवता तक उसके बन्दी हो चुके थे। सज्जन तथा सतोगुणी ऋषि और महात्मा उसके भय से भयभीत थे। वह उन्हें भी मारकर खा जाता था। एक बात जो उसमें सबसे भयानक थी वह यह थी कि किसी प्रकार उसका अंत नहीं हो पाता था। यदि एक सिर कटता था तो दूसरा अपने आप आकर जुड़ जाता था। यही हाल तो जगत् की बुराइयों का भी है। यदि एक को रोको तो दूसरी अपने आप उसके स्थान पर कहीं से फट पड़ती है। वाल्मीकीय रामायण में कहा गया है कि उस नर विरोधी भयंकर राक्षस के पास अपार सैन्य बल था। भौतिक शक्तियाँ सब उसके पास थीं। जिन्हें पाकर उसे किसी विघ्न-बाधा का भय नहीं था। वह निश्चित था। श्री राम ने उस पर विजय पाई यानी दुनिया से बुराइयों का खात्मा करके एक ऐसे राज्य की नींव डाली जो आपस के प्यार और मुहब्बत तथा सद्गुणों के आधार पर चला। उनके संयम और तेज तथा साहस के आगे भौतिक शक्तियाँ विफल हुईं। रावण का अंत हो गया। परन्तु बुराइयों के प्रति जो हमारी सामाजिक घृणा थी वह अभी तक जागृत है इसीलिए आज भी प्रति वर्ष हम रावण का पुतला बनाकर फूंकते हैं। हालांकि उसके असली तथ्य और श्रीराम के सत्य लक्ष्य से हम दूर हट गए हैं। इसलिए दशहरा भी हमारा चिह्न पूजामात्र रह गया है। लोग रामलीला तो बड़े प्रेम से देखते हैं परन्तु समाज में रावण के शीश की भांति जो बुराइयाँ पनपती जाती हैं उनका अंत करने के लिए उत्साहित नहीं होते। आज के दिन तो हमें मिलकर दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि हम बुराइयों से डटकर लोहा लेंगे और उन पर विजय प्राप्त करेंगे। यही इस त्योहार का वास्तविक उद्देश्य है।

50 पापांकुशी एकादशी

आश्विन शुक्ला एकादशी

आज के दिन व्रत के साथ मौन रहकर पद्मनाभ भगवान् का स्मरण करने से मन के तापों का शमन होता है। ब्रह्माड पुराण मे इसका बडा महात्म्य कहा गया है। भगवान् के स्मरण से मन मे निर्मलता उत्पन्न होती है और जीवन मे सद्गुणों का विकास होता है। एक बार फलाहार करने से शरीर भी हल्का और शुद्ध होता है।

51 शरद पूर्णिमा

आश्विन पूर्णिमा

शरद पूर्णिमा रात्रि का उत्सव है। बाकी उत्सव प्राय दिन मे ही मनाए जाते हैं। शरद पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अपनी पूर्ण कलाओ के साथ अपना सौन्दर्य पृथ्वी पर उँडेलता है। यह माना जाता है कि पूर्णिमा की रात को चन्द्रमा अमृत की वर्षा करता है। अत चित्त की शांति के लिए चन्द्रमा की चादनी का सेवन आवश्यक है। वह पित्त कोप का शमन करता है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार शरद-रात्रि भगवान् के महारासोत्सव की रात्रि है। उसका वर्णन महर्षि वेदव्यास ने दशम स्कन्ध के पांच अध्यायो मे बडी सुन्दरता से किया है। मेरे एक मित्र ने एक बार मुझसे कहा कि—'यदि श्री कृष्ण का अवतार न होता तो हमारे देश के कवि और चित्रकार तो भूखे ही मर जाते।" मुझे उनकी बात सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। इसलिए मैंने पूछा—'क्या ?" वह बोले—"श्री कृष्ण की लीलाओं को लेकर यहां के कवियो ने जैसी-जैसी कविताएँ लिखी और चित्रकारो ने जैसे जैसे चित्र बनाए उनसे जन साधारण मे व्याप्त विषय-

लोलुपता को प्रवृत्ति को बल मिला।" बात बहुत दूर तक सत्य-सी प्रतीत हुई। वास्तव में श्री कृष्ण को लेकर जिस तरह की कविताओं से हिन्दी और संस्कृत साहित्य को भरा गया है और जिस तरह के चित्रों की भरमार तसवीरों की दुकानों पर मिलती है उसके आगे आज के सिनेमा के पोस्टरों की अश्लीलता भी शरमा जाती है। यह बड़ी लज्जा की बात है। जिन श्री कृष्ण को महर्षि वेदव्यास जैसे विचक्षणों ने जगद्गुरु के रूप में लिखकर अपने साहित्य को सजोया, उनके बारे में अश्लीलता के काव्य और चित्र बनाना महान् सामाजिक द्रोह है। उन्हें रोकने का पहले प्रयत्न होना चाहिए। व्यास भगवान् के सामने तो श्री कृष्ण एक पार्थिव रूप में नहीं वरन् एक प्रतीक के रूप में थे, जिनके आदर्शों से जीव अपने उत्थान की प्रेरणा प्राप्त करता है।

गोकुल में श्री कृष्ण की कल्पना ही एक आध्यात्मिक यत्र है। गो शब्द का अर्थ है इन्द्रियाँ। पशुओं की भाँति यह इन्द्रियाँ भी स्वेच्छा का विहार चाहती हैं। इन इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले और अनुशासनपूर्वक उनसे काम लेने वाले गोपाल योगिराज कृष्ण ही तो हो सकते हैं। जहाँ इन्द्रियों की समग्रता है और इस समग्रता पर अनुशासन करने वाला गोपाल। यह गोकुल कोई बड़ा नगर नहीं था, वह तो भारतीय संस्कृति का उद्गम स्थान हमारा छोटा-सा ग्राम था। वहाँ के सारे काम सग दोष के कारण बसुरे हो गए। श्री कृष्ण ने अपनी मधुर मुरली की तान छेड़कर उन्हें सरस और सुरीला बनाया। विश्व कवि रवि बाबू ने भी तो गीताञ्जलि में एक ऐसी कविता लिखी है कि—"सारा दिन सितार में तार लगाते ही लगाते बीत गया लेकिन अभी तक तार न लग पाए और न संगीत ही आरम्भ हुआ।" हम सब की भी यही दशा है। जीवन के तार बिठाते बिठाते मृत्यु का घण्टा रव सुनाई दे जाता है और तार नहीं बैठ पाते हैं। जीवन वीणा में अनेक तार हैं। न मालूम कब वह एक स्वर पर आएंगे कुछ नहीं कहा जा सकता। मन की सहस्रों प्रवृत्तियाँ ही तार हैं। उनसे अलग अलग स्वर निकल रहे हैं। एक विचित्र प्रकार की खींचतान में हम फंसे हैं। एक

बार श्री कृष्ण की अनन्य प्रेयसी रासेश्वरी महारानी श्रीराधिका ने श्री कृष्ण की मुरली से पूछा :

मुरली कौन सो तप कीन्ह।
रहत गिरिधर मुखहि लागी, अधर को रस लीन्ह।

इस पर मुरली ने कहा—राधिके ! तुम मेरा तप सुनना चाहती हो तो सुनो। बियाबान उपवन मे मैंने जन्म पाया। लोग अपने बच्चो के जन्म के समय कितनी खुशियाँ मनाते हैं, परन्तु मेरे जन्म पर तो कोई आँख उठाकर देखने वाला भी नही था। जब जरा बडी हुई तो मैं रूप-गर्विता की भाँति अपने अग की लचक पर झूम उठी। यौवन की मादकता ने उपवन के प्रत्येक वृक्ष से मुझे ऊंचा उठा दिया। किन्तु दर्प का भी अत होता है। एक दिन एक कठोर हृदय बढई ने अपने एक कटीले लोहे के औजार से मेरे अग को काटकर टुकड़े-टुकडे कर डाला। मेरा सारा अभिमान चूर-चूर हो गया। इस तरह अग कटने मे जो असह्य पीडा हुई उसे किसी प्रकार मैंने चुपचाप सह लिया। फिर भी दुखो का अत नही हुआ। उस बढई ने अपने घर ले जाकर एक दूसरे टेढे औजार से मेरे अग को छेद डाला और उसमे सात सूराख कर दिए। मेरी चीख-पुकार और रोने-धोने का उस पर कोई भी असर न हुआ। बाद मे जब अंग छिद चुका तो उसने मुझे अपने घर के कोने मे एक ओर डाल दिया। वहाँ से माखनचोर श्री कृष्ण मुझे चुपचाप उठा लाए। जिस समय उन्होने मेरी जन्मभूमि वनस्थली में कदम्ब वृक्ष के नीचे खडे हो, शारदीय पूर्णिमा की खिली हुई चाँदनी मे मुझे अपने अधरो पर रखा, उस समय अपने सारे दुखो को भूलकर मैं तन्मय हो गई। उस तन्मयता मे मुझे अपनी चीख-पुकार और रोने-धोने की सुधि भूल गई। मैं उन्ही के स्वर को अपना स्वर और उन्ही की रागिनी को अपनी रागिनी बनाकर उस निर्जन वन मे गूज उठी। वह आवाज इतनी आकर्षक थी कि जिसके कानो मे वह पडी वही अपना आपा भूल-कर श्यामसुन्दर की ओर दौड़ पडा। उस मादक रात्रि मे ससार को नचाने वाले कन्हैया ने महारास मनाया जो 'न भूतो न भविष्यति।'

कहते हैं उस महारास मे सोलह हजार गोपियो ने भाग लिया।

सोलह हजार क्या वह तो सोलह करोड़ भी हो सकती हैं। हमारी प्रत्येक क्षण में बदलने वाली अनन्त प्रवृत्तियाँ ही तो वह गोपियाँ हैं। श्री कृष्ण की मुरली से निकला हुआ स्वर उन गोपियों को अपनी ओर खींच ले जाता है। वे परवश होकर उसकी ओर खिंची चली जाती हैं परन्तु श्री कृष्ण उन गोपियों के बाह्य रूप रंग पर मुग्ध नहीं हुए उन्होंने उन्हें अपने साथ महारास करने के लिए आवाहन किया है। शारदीय चंद्र आकाश पर खिला हुआ था। चंद्र का अर्थ है मन का देवता। वह अपने पूरे विकास पर था। उसका सद्भाव खिल चुका था। उस समय—

भगवानपि ता रात्रि शारदोफुल्ल मल्लिका।
वीक्ष्य रतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रिता॥

शरद मल्लिका से उत्फुल्ल उस रात्रि में वे गोपियाँ भगवान् का सान्निध्य पाकर आनन्द से नाच उठीं। उस समय दो-दो गोपियों के बीच एक-एक कृष्ण का सबने दर्शन किया। यह तत्व कितना अनुभवात्मक है। हमारे दो हाथ हैं मगर दोनों में कार्य करने की एक ही भगवत्शक्ति व्याप रही है। हमारे दो आँखें हैं परन्तु दृष्टि एक है। दो कान हैं परन्तु श्रवण शक्ति एक है। दो नासिका के छिद्र हैं परन्तु प्राण का सचार एक है। यही दो-दो गोपियों के बीच एक-एक कृष्ण के नृत्य करने का रहस्य है। इसी आध्यात्मिक रहस्य की उद्बोधिनी शारदीय पूर्णिमा है, जिसमें जीवन का संगीत सुनने को मिलेगा।

52. करवा चतुर्थी

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को हमारे देश की सौभाग्यवती स्त्रियाँ करवा चौथ का व्रत रखती हैं। यह त्यौहार सुहाग तृप्ति और पति की

स्वास्थ्य और आयु तथा मगल कामना के लिए मनाया जाता है। व्रत के दिन प्रात काल शौच आदि से निवृत होकर आचमन करके व्रत का सकल्प किया जाता है। प्राचीन समय मे चद्रमा की मूर्ति लिखकर शिव, कार्तिकेय और गौरी की प्रतिमा का स्थापन किया जाता था एव शास्त्र अथवा कुल परम्परा के अनुसार उनका पूजन होता था। यह उपवास निर्जल होता है। देवियाँ चद्र दर्शन के पश्चात् उसे अर्घ्यदान देकर ही जल लेती हैं। ताँबे या मट्टी के सात कुल्हडो मे जल भरकर पूजा के बाद दानकर दिए जाते हैं। इस व्रत के महात्म्य पर एक कथा महाभारत मे मिलती है। 'एक बार धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन कील गिरि पर किसी अनुष्ठान को पूरा करने के विचार से चले गए। उस समय द्रोपदी ने अपने मन मे सोचा कि यहाँ अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती हैं और अर्जुन है नही, इसलिए क्या करना चाहिए। दैवात् उसी दिन श्री कृष्ण उन लोगो से मिलने के लिए आ गए। द्रापदी ने उनसे बडी विनम्रतापूर्वक पूछा कि प्रभो ! गृहस्थी मे आने वाली छोटी-मोटी विघ्न बाधाओ को दूर करने के लिए क्या प्रत्यन करना चाहिए ? श्री कृष्ण ने उन्हें करवा चौथ का व्रत और पित्त प्रकोप को दमन करने वाले चद्रदेव का पूजन विधान बतला दिया। देवी द्रोपदी ने समय आने पर श्री कृष्ण की कही हुई विधि के अनुसार पूजन किया। जिसके फलस्वरूप उनकी विघ्न-बाधाएँ दूर हो गईं और पाडवो को भी भावी महायुद्ध मे विजय मिली। सौभाग्य और सम्पन्नता की सुरक्षा चाहने वाली भारतीय देवियो ने उसी विधी के अनुसार इस व्रत को अपना लिया है और बडी श्रद्धा के साथ उसे अब तक मनाती हैं।

53· अहोई अष्टमी

कार्तिक कृष्णा अष्टमी

कार्तिक कृष्णा अष्टमी को पुत्रवती माताएं अहोई का व्रत करती हैं। यह व्रत भी निर्जला व्रत है और चन्द्रमा को अर्घ्य देकर ही जल प्राप्त किया जाता है। सध्या के समय दीवार पर अष्ट कोष्ठक की एक पुतली बनाई जाती है। उसके समीप सेई के बच्चो और सेई की आकृति बनाई जाती है। जमीन पर चौक पूरकर जल-पात्र रखा जाता है। कलश पूजन के बाद पुतली का पूजन होता है। इसके बारे मे निम्नलिखित कथा मिलती है कि किसी स्त्री के सात लडके थे। दीपावली के पूर्व अपने मकान की पुताई करने के लिए वह स्त्री मिट्टी लाने के लिए गाँव से बाहर गई। जिस स्थान पर उसने मिट्टी खोदी वहाँ जमीन के नीचे एक सेई की माद थी। दैवयोग से उस स्त्री की कुदाल लगने से सेई के एक बालक की मृत्यु हो गई, जिससे वह सेई बडी दुखी हुई। स्त्री तो मिट्टी लेकर चली आई और उसने अपने मकान को लीप पोतकर स्वच्छ कर लिया।

कुछ दिनो के बाद किसी छोटी सी बीमारी मे उसके बडे लडके की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसी तरह से दूसरे लडके की मृत्यु हुई। एक वर्ष मे धीरे धीरे करके सातो लडके मर गए। इस दुख से वह अत्यन्त दुखी रहने लगी। एक दिन गाँव की स्त्रियो मे बैठकर उसने अपने दुख की कथा कही। और कहा कि—मैंने तो कभी कोई पाप नही किया। पर एक बार धोखे से मिट्टी खोदते हुए मेरी कुदाल के लगने से एक सेइ के बच्चे की मृत्यु हो गई थी उसी दिन से अभी साल भर भी पूरा नही हुआ मेरे सातो बच्चे जाते रहे।

तब वे स्त्रियाँ बोली कि बहन! चार आदमियो के कान मे बात डालकर तुमने आधा पाप तो अभी ही कम कर लिया। अब जो शेष बच रहा है उसका प्रायश्चित्त तभी होगा जब तुम सेई के बच्चे के चित्र लिखकर उनकी पूजा करोगी। ईश्वर की कृपा से तुम्हारी धोखे से

होने वाली हिंसा का पाप दूर हो जायगा और तुम्हें फिर से अपनी संतानें प्राप्त होंगी। यह सुनकर उस स्त्री ने वैसा ही किया जिससे उसे फिर सात बच्चों की जननी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तभी से इस व्रत की परिपाटी चली आती है।

54. तुलसी एकादशी

कार्तिक कृष्णा एकादशी

तुलसी हमारे देश मे पैदा होने वाली वनस्पतियो मे एक क्षुप जाति का पौधा है परन्तु उसके गुणो की बडी महिमा है। आयुर्वेद के ग्रथो मे उसकी पत्तियो को कृमिनाशक माना गया है। वनस्थली मे रहने वाले सत-महात्मा उसका बहुत प्रयोग किया करते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से उसका बडा उपयोग है। वर्षा ऋतु के अत मे इसका विधि पूर्वक प्रयोग करने से कीटाणुओ से फैलने वाले मलेरिया आदि रोगो का वेग शमन होता है।

वैद्यक ग्रथों से अधिक महिमा धर्मशास्त्रो मे तुलसी की गाई गई है। उन्हें जगत् का पालन करने वाले भगवान् विष्णु की पत्नी माना गया है। इतने बडे पद को प्रदान करने का रहस्य तो वह त्रिकालदर्शी महात्मा ही जान सकते हैं जिन्होने वनस्पति शास्त्र के महत्त्व को अपनी तप साधना से पहचाना है। भगवान् भी उन्हें अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वह उन्हें अत्यन्त प्रिय है। इस सम्बन्ध मे एक कथा यह कही जाती है कि श्री कृष्ण की पत्नी सत्यभामा को अपने रूप का बडा गर्व था उन्हें विश्वास था कि उनके रूप के कारण ही श्री कृष्ण अन्य स्त्रियो की अपेक्षा उनपर अधिक स्नेह रखते हैं। इसलिए एक दिन जब नारदजी द्वारिका पुरी मे आए तब सत्यभामा ने उन्हें अपने भवन मे बडे आदर से बुलाकर कहा—

"देवर्षि ! आपका आशीर्वाद कभी मिथ्या नहीं होता । इसलिए आप मुझे यह वरदान दीजिए कि मुझे आगे होने वाले जन्मों में भी श्री कृष्ण ही पति रूप मे प्राप्त हो ।" देवर्षि सत्यभामा के मन का भाव समझ गए । उन्होंने कहा—'देवि ! इस सृष्टि का नियम यह है कि एक जन्म मे अपनी प्रिय वस्तु को किसी सुपात्र को दान कर देने से वह अगले जन्म मे उसे प्राप्त होती है । अत तुम यदि श्री कृष्ण को मुझे दान कर दो तो मैं तुम्हें ऐसा वर दे सकता हूँ कि वे तुम्हें भावी जन्मों मे भी प्राप्त हो ।" सत्यभामा ने यह सुनकर श्री कृष्ण को नारदजी को दान कर दिया । वह उन्हें अपने साथ स्वर्ग ले चलने के लिए गए । उस समय श्री कृष्ण की अन्य रानियो ने देवर्षि को रोककर श्री कृष्ण को स्वग न ले जाने की प्राथना की । नारदजी बोले—श्री कृष्ण को तराजू पर तोलकर उनके बराबर रत्न और सुवर्ण पाकर मैं उन्हें छोड दूँगा । रानियो ने श्री कृष्ण को तुला पर रखकर अपने सारे अलकार चढा दिए परन्तु तुला का पलडा न उठा । तब सबने मिलकर महारानी श्री सत्यभामा को जा पकडा और उनसे बोली कि श्री कृष्ण पर हम सबका एक जैसा अधिकार है तब तुमने बिना हमारी सलाह के श्री कृष्ण को दान कैसे कर दिया ? सत्यभामा ने गर्व से कहा—"मैंने यदि उन्हें दान किया है तो मैं उन्हें उबार भी दूँगी । चलो मैं चलती हूँ । सत्यभामा ने वहाँ जाकर अपने अलकार भी सबके सब चढा दिए । पर पलडा नही उठा । इस पर वह अपने मन मे बडी लज्जित हुई । और श्री रुक्मिणीजी से जाकर सारा हाल कहा । रुक्मिणी जो उस समय ध्यानस्थ होकर तुलसी का पूजन कर रही थी । उन्होने माँ तुलसी की वदना की । उसी समय तुलसी से एक पत्ती गिर पडी । वे रानियाँ उस पत्ती को लेकर सत्यभामा के साथ वहाँ आईं और पलडे पर वही तुलसी का दल रख दिया । रखते ही तुला का वज़न बराबर हो गया । नारदजी उसी पत्ती को लेकर स्वग चले गए । रुक्मिणी श्री कृष्ण की पटरानी थी परन्तु उन्होने तुलसी के वरदान से अपने और अपनी बहिनो के सौभाग्य की रक्षा की । इसलिए उन्होने अपना सौभाग्य तुलसी को दान कर दिया । श्री कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर उन्हें अपने मस्तक

पर धारण करने का वरदान दे दिया। तब से तुलसी को वह पूज्य पद प्राप्त हो गया। आज की एकादशी मे उन्ही माँ के समान हमारी रक्षा करने वाली तुलसी देवी के नाम का व्रत और पूजन किया जाता है।

55 वत्स द्वादशी

कार्तिक कृष्णा द्वादशी

भारतीय सस्कृति मे गाय को माता के समान पद मिला है। आज के दिन जब गाएँ जगल मे चरकर घरो पर वापस आती हैं, उस समय उनके बछडो की पूजा की जाती है। गाय के बछडे हमारे भाई है। मनुष्यो की दिवाली मनाने से पहले उनकी दिवाली मनाई जाती है। यह भावना कितनी उच्च है। परन्तु आज स्थिती कितनी अदभुत हो गई है। गाय तथा गो वश के साथ हमारा कितना दुर्व्यवहार है। उनकी पूजा को भी हमने यान्त्रिक बना डाला है। गो के प्रति श्रद्धा और आदर भावना का रहस्य हमारे मनो मे नही बढ़ना। यद्यपि गाय हमारी सबसे अमूल्य निधि है। वेदो मे कहा गया है—'पशुओ से प्रेम करो।' उनसे काम भी लो। वह तुम्हारे आवश्यक अगो के पूरक हैं। परन्तु उनका खयाल भी रखो। समय पर पानी पिलाओ। समय पर घास दो। आपकी मार खाकर भी वह चुप रह जाते हैं परन्तु आपकी मानवता तो गडढे मे चली जाती है। उन मूक पशुओ का आशीर्वाद समाज को समृद्ध बनाएगा। उनमे प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ है। हमारी आवाज सुनते ही बछडे किलकते हुए रभाने लगते हैं। और हमारे हाथ का स्पर्श पाकर नाचने लगते हैं। कितने सुहावने मालूम होते हैं वह बछड उस समय। उनके प्रति आदर से हमारा घर ऋद्धि सिद्धि से भर जायगा। घर घर मे जिस दिन यह पूजा जगेगी उसी दिन मानव-कल्याण जगेगा।

पुराने जमाने के लोगों ने उनसे मित्रता की थी। उसका शुभ फल प्राप्त किया था। आज के युग में उनकी उपेक्षा ने अन्न और वस्त्र की कमी कर डाली है। उसे पूरा करने का उपाय ही यह पुनीत त्योहार है।

56. धनतेरस

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को धनतेरस कहते हैं। वैदिक काल से ही हम इसे मानते आए हैं। आज के दिन यमराज का पूजन होता है। यमराज तो साक्षात् मृत्यु का देवता है। परन्तु भारतीय संस्कृति मृत्यु की भी वंदना करती है। उसने मृत्यु को कभी हेय नहीं माना। वरन् उन्मुक्त भाव से उसका स्वागत किया। कुछ लोग यह समझते हैं कि मृत्यु मानो अंधेरा है। लेकिन मृत्यु तो अमर प्रकाश है। यदि मृत्यु न होती तो यह संसार कितना दुखद और दारुण होता। मृत्यु तो सचमुच परोपकार करने वाली है। अक्सर जो काम जीवन में नहीं हो पाते उन्हें मृत्यु पूरा करवा जाती है। किसी उर्दू के कवि ने कितना सुन्दर कहा है —

जो देखी हिस्टरी इस बात पर कामिल यकीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया।।

इसलिए आज की सन्ध्या में उसी के नाम का दीप जलाया जाता है। हमारे देश के बड़े से बड़े आदमी ने हँसते हँसते मृत्यु का आलिंगन किया और जिसने अमर होकर जीने की इच्छा की उसे राक्षस या दैत्य की संज्ञा दी गई। गीताकार की दृष्टि में तो मृत्यु की विभीषिका है ही नहीं। उन्होंने तो मृत्यु को कपड़ बदलने के समान माना है। अतएव प्रत्येक जन्म लेने वाले की वही एकमात्र गति है। यह समझकर

हमे प्रतिक्षण उसका ध्यान करते रहना चाहिए। और अपने उत्सवों मे उसका भी उत्सव मनाना चाहिए।

आज के त्यौहार का महात्म्य प्राचीन ग्रथो मे यह मिलता है कि एक दिन यमराज ने अपने दूतो से पूछा—"क्या जीवो का प्राण हरण करते समय तुम्हें कभी दया भी आती है?" इस बात का हाँ मे उत्तर देने का अर्थ था यम की आज्ञा मे अविश्वास। दूतो ने सकोच के साथ कहा—"प्रभो! हमे तो स्वामी की आज्ञा पालन करने मे कोई दया मायत नही होती। परन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर जरूर आ जाते हैं जब हमारा हृदय भी कांपने लगता है। वैसी एक घटना अभी कल ही होकर चुकी है। वह यह है कि हस नाम का एक राजा था। वह शिकार के लिए वन मे गया। दैवात् अपने साथियो से भटककर एक दूसरे राज्य की सीमा मे चला गया। वहाँ के शासक का नाम हेमा था। उसने राजा हस का बडा सत्कार किया। उसी दिन हेमा की पत्नी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु जन्म के नक्षत्रो की गणना करके ज्योतिषियो ने कहा कि यह बालक विवाह के चौथे दिन मर जायगा। हँस ने हेमा को जगल मे ब्रह्मचारी बनाकर रखने की सलाह दी। इसलिए राजा ने यमुना के तट पर एक गुहा बनवाकर बालक को स्त्रियो की छाया से दूर रखा। परन्तु विधि विधान को कौन मेट सकता है। एक दिन हस की राजकुमारी उस ओर घूमती हुई जा निकली और उसने कुमार के साथ गधर्व विवाह कर लिया। विवाह के ठीक चौथे दिन उस कुमार की जीवन लीला समाप्त हो गई।' यमदूतो ने आगे कहा—'धर्म-राज! आपकी आज्ञा से हमने उसका प्राण हरण तो कर ही लिया। परन्तु उस नव परिणीता का रोदन सुनकर हमारा हृदय भी काँपने लगा। वास्तव मे युवावस्था की मृत्यु बडी दारुण होती है। इससे धरती के युवको की प्राण-रक्षा का उपाय भी कुछ होना चाहिए।' यमराज ने आज की तिथि मे दीपदान को युवावस्था की मृत्यु को रोकने वाला बताकर कहा कि इस उपाय से असामयिक मृत्यु का योग टल जायगा।

57. नरक चौदस

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी

आज का त्योहार घर का कूड़ा-कचरा साफ़ करने का है। वर्षा ऋतु में मकानों पर जो काई इत्यादि लग जाती है उसे हटाकर मकान-मुहल्ले और गाँव में सफाई करनी चाहिए। यदि यह काम सामूहिक रूप मे हो तो और अच्छा है। आज के दिन यदि कोई स्नान भी न करे तो उसके सालभर के पुण्यों का क्षय होता है।

स्वच्छ रहने से बढ़कर कोई दूसरा सौन्दर्य नहीं है। मनुष्य तो बहुमूल्य वस्त्राभूषणों मे लिपटकर भी गंदा रह सकता है और सादगी मे भी सुन्दर लग सकता है।

58. दीपमालिका

कार्तिक अमावस्या

दिवाली—हिंदू मात्र का सबसे बड़ा त्योहार है। जब छोटी-से-छोटी झोपड़ी से लेकर बड़े-बड़े राज भवन तक प्रकाश से जगमगा उठते हैं। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सबमे एक खास उत्साह दिखाई देता है। कहते हैं आज के दिन अयोध्या की प्रजा ने चौदह वर्षों के वनवास से लौटकर आये हुए श्री राम के राज्यारोहण पर महोत्सव मनाया था, अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट की थी। इसलिए प्रत्येक देशवासी ने अपने-अपने घरों को दीये जलाकर सुसज्जित किया था। तभी से इस महोत्सव पर दीपमालिका की सजावट का महत्त्व बढ़ा। यद्यपि दिवाली का उत्सव तो उससे पहले भी मनाया जाता था, परन्तु उसकी रीति और उद्देश्य दूसरे ही प्रकार के थे।

ऋतु काल के बारे में पहले चर्चा की जा चुकी है। शरद और

वसत के प्रकरणो मे उस पर काफी प्रकाश डाला जा चुका है। इनमे से वसत की ऋतु मे देश के वही भाग शोभा से उल्लसित होते हैं जिनमे जलाशयो और वृक्षो के समूहो की भरमार होती है। परन्तु शरद तो देश के कोने कोने मे, चाहे मरुभूमि हो अथवा जलाछादित भू भाग सर्वत्र शोभादायक होती है। चारो ओर निर्मल जल और परिपक्व अनाज की फसलो से वसुन्धरा समृद्ध होती है। इसलिए हमारे कृषि प्रधान देश मे भी माँ लक्ष्मी का पूजन करने का इससे बढकर दूसरा कौन-सा अवसर हो सकता है? इस काल मे प्रत्येक देशवासी प्रसन्नता के साथ लक्ष्मी-पूजन करता है। इस शरद ऋतु मे आश्विन और कार्तिक दो महीने होते हैं। कार्तिक के महीने मे खेतो से पका हुआ नाज सबके खलिहानो मे पहुँच जाता है। नए नाज का उपयोग करने से पूर्व उसे यज्ञ द्वारा भगवान् को समर्पित किया जाता है। अत दीपावली के दिन शष्टोष्टि महायज्ञ का विधान है। इसलिए यह दिन लक्ष्मी पूजन का है। अमावस्या के बारे मे तो ज्यादह विचार करने की आवश्यकता नही है क्योकि दिवाली के लिए चादनी रात इतनी उपयोगी नही हो सकती। दूसरे वर्षा के बाद अनेक तरह के कीटाणुओ के पैदा होने की सभावना होती है। वे कीटाणु सूय और चन्द्र के प्रकाश में कम पनपते हैं और यदि पनप भी गए तो उनकी अधिकता नही होती, जितनी अँधेरे पाख में होती है। इसलिए दिवाली का प्रकाश कृष्ण पक्ष म ही करना ठीक होगा।

दिवाली का उत्सव भारत के हर प्रदेश में होता है और प्राय प्रत्येक प्रदेश के लोगो ने अपने अपने ढग से एक न एक नई कथा इसके बारे में मान रखी है। यदि उन सबका सग्रह किया जाय तो अलग हो एक बडा ग्रथ बन जाय। परन्तु सामान्यत जो कथा पुराणा म मिलती है वह इस प्रकार है—प्राचीन युग म दैत्यो के राजा बलि ने अपने ,जीवन में दान का व्रत लिया था। कोई याचक उससे जो वस्तु माँगता राजा उसे वह वस्तु देता था। उसके राज्य में जीव हिंसा, मद्यपान, वेश्या गमन, चोरी और विश्वासघात इन पाँच महापातको का अभाव था चारो ओर दया, दान, अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का आदर था।

आलस्य, मलिनता, रोग और दारिद्र्य का उस राज्य मे नाम भी नही था। लोग आपस में मेल-जोल के साथ रहते थे। द्वेष, असूया या मात्सर्य को रोकने का प्रयत्न सब लोग करते थे। इसलिए इतने अच्छे राज्य का रक्षण करने के लिए भगवान् विष्णु ने भी राजा बलि का द्वारपाल बनना स्वीकार कर लिया था। राजा बलि की इसी धर्म-निष्ठा की स्मृति को कायम रखने के लिए भगवान् विष्णु ने तीन दिन अहो-रात्रि महोत्सव का निश्चय किया। यही हमारी दिवाली है। इसलिए इस त्योहार पर पहले लोग अपने-अपने घरों का कूड़ा-कचरा, कीचड और गदगी का नाश करते हैं तथा जहाँ-जहाँ अधेरा होता है वहाँ प्रकाश करते हैं। लोगो के प्राण हरण करने वाले यमराज का तर्पण करना, अपने-अपने पूर्वजों का स्मरण करना, मिष्ठान्न का उपयोग करना और सुगधित धूप-दीप तथा पत्र-पुष्पो से घर, नगर और बाजारो का सजाना उत्सव की प्रक्रिया है।

दुख की बात है कि आज जहाँ इतनी अच्छी-अच्छी बातो को स्वीकार करने के लिए दिवाली का त्योहर आता है वहाँ लोगो मे जुआ खेलने का व्यसन घर कर गया है। इसके लिए उन्होने तरह तरह की मन-गढत कथाओ का सहारा ले लिया है। लोग कहते हैं कि—आज के दिन जुआ न खेलने से गधे की योनि मिलती है। अथवा आज की रात्रि में शकरजी ने पार्वतीजी के साथ जुआ खेला था इत्यादि। ये बातें किसने और कैसे प्रचलित की इसका कोई सतोषदायक समाधान नही मिलता। यह ठीक है कि दिवाली विशेष रूप से वैश्यो का त्योहार है। परन्तु जुआ खेलना वैश्यो या व्यापारियो का धर्म है यह बात तो किसी भी शास्त्र मे नही है। हमारे धर्मशास्त्रो मे 'वाणिज्य' को वैश्य का धम बतलाया गया है। ससार के किसी भी धर्म मे आपको ऐसी अच्छी बात न मिलेगी। सत्य, प्रेम, दया और दान आदि का वर्णन तो सभी करते हैं। परन्तु वाणिज्य या व्यापार भी एक धर्म है यह बात केवल हिन्दू धम ही कह रहा है।

"कृषि गौरक्ष्य वाणिज्य वैश्य कर्म स्वभावजम्।"

जैसे ब्राह्मण का धम है—वेदाध्ययन, क्षत्रिय का धर्म है देश-रक्षण

वैसे ही वैश्य का धर्म है वाणिज्य। ब्राह्मण वेदाध्ययन से मुक्ति पा सकता है। भूदान गंगा में आचार्य विनोबाजी ने इस विषय पर कितना सुन्दर लेख दिया है—

"हिन्दू धर्म ने ब्राह्मण और क्षत्रिय की बराबरी में व्यापारी को रखा। किन्तु शर्त यह रखी कि ज्यादह पैसा रखना या प्राप्त करना व्यापारी का धर्म नहीं है। उनका धर्म है लोगों की उत्तम सेवा करना। सर्वसाधारण में ठीक हिसाब करने की वृत्ति नहीं होती, यह व्यापारी में होनी चाहिए। व्यापारी अपना शब्द कभी नहीं टालता। जैसे ब्राह्मण का धर्म है ज्ञान। वैसे ही व्यापारी का धर्म है दया। अगर वह दया न करेगा, तो क्या सिर्फ तराजू लेकर तौल देने मात्र से उसे मोक्ष मिलेगा? इसलिए उनके साथ दया का गुण जोड दिया गया। इस धर्म को यदि वे ठीक से पालन करें तो उनकी प्रतिष्ठा बढेगी और मोक्ष भी मिलेगा।"

पुराणों में कहा गया है कि नरकासुर नाम का एक असुर था, जिसने स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किए। सोलह हजार युवतियाँ उसके कारागार में बंदिनी थी। यह नरकासुर कोई शरीरधारी मानव, दैत्य, असुर या राक्षस नहीं था। यह था आलस्य जिसके वशीभूत होकर सोलह हजार युवतियाँ उसकी बंदिनी हो गई थी। उन्होंने अपना जीवन नारकीय बना डाला था। श्री कृष्ण भारतीय देवियों की इस दशा को सहन न कर सके। उन्होंने उन देवियों के उद्धार का व्रत लिया और उस राक्षस का नाश करने का संकल्प लिया। उन देवियों की भावना में व्याप्त उस नरकासुर का अंत करने के लिए जब वह जाने लगे तब उनकी पत्नी सत्यभामा ने कहा—'यह स्त्रियों के उद्धार का प्रश्न है। इसलिए इस अवसर पर नरकासुर से लडने में भी आपके साथ चलूंगी।" श्री कृष्ण ने सत्यभामा की बात मान ली। सत्यभामा और श्री कृष्ण दोनों ने मिलकर जन संपर्क को साधन बनाकर स्वच्छता अभियान जारी किया और चतुर्दशी के दिन उस असुर का नाश हुआ। देश स्वच्छ हो गया। नरकासुर के नाश होने की खुशी में प्रत्येक व्यक्ति ने दीपोत्सव मनाया।

परन्तु यह नरकासुर मरा नहीं। इस युग में वह पुन जीवित हो उठा है। वह तो हर बरसात के बाद गाँव-गाँव में अनेक रूप रखकर हर साल पैदा हो जाता है। इसीलिए प्रतिवर्ष उसे मारना पड़ता है इसी से नरक चौदस को हर घर, ग्राम और मुहल्लों की सफाई करके दीपोत्सव मनाया जाता है। यह हमारी दिवाली का महोत्सव है।

59. अन्नकूट

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा

विक्रमीय सवत् का प्रथम दिवस चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को होता है। सवत्सारम्भ के वर्णन मे उसका महत्त्व लिखा जा चुका है। परन्तु उससे भी पहले काल में लोग अपने-अपने घरो की गदगी दूर करने के बाद बीतने वाले वर्ष और नए अग्रिम वर्ष की सध्या को दीप उत्सव मनाकर अग्रिम वर्ष का स्वागत करते थे। इस प्रकार दोनो वर्षो का अभिवादन करते थे। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को व्यापारी वर्ग के लोग अपना नया वर्ष मानते हैं और अपने व्यापार के पुराने खाते नए बनाते हैं। नए साल की नई योजना बनाकर वर्ष भर तक उसके लिए प्रयत्न करते हैं। समूचा वर्ष हमारे लिए शुभ हो इसलिए विघ्न विनायक गणपति का पूजन करके ऋद्धि सिद्धि की याचना करते हैं और अपनी सकल्प की हुई योजनाओं को सफल करने के प्रयास आरम्भ करते हैं। किन्तु यह चिह्न पूजा के रूप मे एक पुरानी प्रथा मात्र बनकर रह गया है, इसमें से मानो प्राण विसर्जित हो गए हो। समाज के लोगों में यह मान्यता यदि सत्य रूप मे पुन जागृत हो तो लोगों को इससे नवचेतना प्राप्त होगी।

भारतीय पौराणिक काल गणना के अनुसार द्वापर युग के अत मे भारतवर्ष मे श्री कृष्ण का अवतार हुआ। उनके पावन चरित्र से हमारे

देशवासियो को पुरानी परम्पराओं को नवीन रूप से मनाने की महत्व-पूर्ण प्रेरणाएँ मिली।

उनके जन्म के समय लोग आज के दिन देवराज इन्द्र का पूजन करते थे। इन्द्र वर्षा के देवता हैं। उनकी कृपा से वृष्टि होती है, जिससे देश भर का घर-घर धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। वर्षा के अंत पर लोग उन्ही इन्द्र का पूजन किया करते थे। इस पूजन का सबसे बड़ा महोत्सव ब्रज भूमि मे मनाया जाता था। प्रत्येक घर मे पकवान बनता था और प्रत्येक परिवार हर्षोल्लास मे भरकर सामूहिक रूप से श्रद्धापूर्वक 'इन्द्रोज यज्ञ' करते थे। परन्तु बड़े होने पर श्री कृष्ण को यह बात रुचिकर नही हुई। उन्होने भोले-भाले ब्रजवासियो को समझाकर कहा—"जिस देवता को आज तक किसी ने नही देखा ऐसे देवता पर श्रद्धा या आस्था रखना अंध-श्रद्धा है। इससे तो अच्छा हमारा गोवर्द्धन पर्वत है। जिसकी तराई मे चारा पाकर हमारे लाखो पशुओ का पालन होता है। इसलिए इन्द्र के स्थान पर उसी प्रत्यक्ष देवता का पूजन करना हितकर है।" ब्रजवासियो ने श्री कृष्ण की बात मान ली। परिणाम यह हुआ कि माता यशोदा के आग्रह से बाबा नद ने सभी ग्वालो को एकत्र करके श्री कृष्ण की बात सुनाई। वे सब तो श्री कृष्ण को अपने प्राणो से भी बढकर प्यार करते थे। इसलिए उन्होने इन्द्र की पूजा के साथ-साथ गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करना भी स्वीकार कर लिया। किन्तु श्री कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत की प्रशसा की और उसकी उपयोगिता बताते हुए उसी की पूजा करने का आग्रह किया। ब्रजवासियो ने श्रीकृष्ण की बात मानकर इस नए प्रयोग को करने का शुभ सकल्प कर लिया।

कहते हैं कि ब्रजवासियो के इस प्रयोग से देवराज इन्द्र चिढ गए। उन्हें अपना अपमान मालूम हुआ। इसलिए उन्होंने ब्रजवासियो से बदला लेने का निश्चय किया और घोर वर्षा करके सारे ब्रज को पानी मे डुबा देना चाहा। इस वर्षा से ब्रज के लोग घबरा उठे। उन्हें इन्द्र पूजन के विरोध का फल प्रत्यक्ष दीख पडने लगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें धैर्यपूर्वक इस विपत्ति से लड़ने का साहस प्रदान किया और स्वय

गोवर्द्धन पर्वत को छतरी की तरह अपने हाथ पर उठा लिया।

इन्द्र इससे लज्जित हो गए और उन्होंने प्रकट होकर श्री कृष्ण से क्षमा माँगी। श्रीकृष्ण तो स्वभाव से अत्यन्त सरल थे। उन्होंने इन्द्र को क्षमा कर दिया। वह अपने लोक को चले गए। तब से अन्नकूट का उत्सव आज के दिन बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

60. भाई दूज

कार्तिक शुक्ला द्वितीया

भारतीय संस्कृति में नारी की महिमा महान् है, वह त्याग, तप और दया की मूर्ति है। गीता में वर्णन किये हुए कर्मयोग की साकार प्रतिमा और सेवा की सजीव साधना है। माता के रूप में वह जगद्धात्री आद्या महाशक्ति का अवतार है। उसका दूसरा जगत् वन्द्य स्वरूप बहिन के रूप में है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—'दयाया भगिनी मूर्तिः'।

यह सब होते हुए भी हमारे समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी शोचनीय है। स्त्रियों की समस्याओं को लेकर गत कई वर्षों से देशभर में बड़ी-बड़ी चर्चाएँ चल रही हैं। बहुत-से परिवारों में परिवर्तन भी हुए हैं। लोकमत में भी काफी फर्क पड़ा है। फिर भी यह मान लिया जाय कि स्त्रियों की हालत में कोई खास फर्क पड़ा है, यह बात संतोषदायक रूप में नहीं दीख पड़ती, क्योंकि परिस्थितियों के दबाव के कारण, लाचारी की हालत में जबरन कोई हेर-फेर करने की अपेक्षा, जब तक हृदय परिवर्तन के द्वारा समाज स्त्रियों के बारे में अपना मत निश्चित नहीं करता तब तक उनकी दशा में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

सीता, सावित्री, द्रौपदी, अनुसूया और गांधारी आज भी भारतीय नारियों की आदर्श हैं। उनके गौरव को आज की विषम परिस्थितियों में भी, भारतीय नारी ने नहीं खोया है। वह अभी भी अपने-अपने

परिवार मे अनेक कष्ट उठाकर अपने मूक परिश्रम द्वारा आनन्द का सृजन करती रहती है। हर एक घर मे प्रात से लेकर अर्द्ध रात्रि तक कठोर परिश्रम करने वाली देवियो के दर्शन हमे आज भी होते हैं। उन्हें क्षण भर के लिए भी विश्राम नही है। उन्होने मानो अपने जीवन को एक प्रज्ज्वलित होम-कुड के समान बना रखा है। मृत्यु के बाद ही वह होम-कुड शान्त होता है। उनके शुभ आशीर्वादपूर्वक उनके हाथ का प्रसाद प्राप्त करना आयुवर्धक और आरोग्यकारक है। इसलिए भाई दूज के इस उत्सव को विशुद्ध प्रेम का प्रतीक मानकर बडे उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाना होगा और बहन के रूप में नारी के अधिकारो की रक्षा करने का व्रत लेना होगा। उनकी समस्याओ को अपनी निजी समस्या की भाँति सुलझाने का दृढ प्रयत्न करना होगा। यही भाई दूज के त्यौहार का आदर्श है। इसके सम्बन्ध मे एक पौराणिक कथा इस भाँति है—

यमुना भगवान् सूर्य की पुत्री है। उन्होने अपने भाई यमराज को अपने घर बुलाकर बडा स्वागत किया। इस पर प्रसन्न होकर यमराज ने उससे वर माँगने को कहा—तब यमुना ने यही वर माँगा कि तुम प्रति वर्ष इसी तरह मेरे घर आया करो। यमराज ने स्वीकार कर लिया। और कहा कि मेरे जैसे क्रूर को श्रद्धा के साथ कोई अपने घर नही बुलाना चाहता किन्तु तेरी भ्रातृ-निष्ठा पर मैं प्रसन्न हूँ और यह वर देता हूँ कि आज के दिन जो बहन अपने बुरे से-बुरे भाई को भी बुलाकर सत्कार करेगी उसे मैं अपने पाश से मुक्त कर दूंगा। उसी दिन से भैयादूज का उत्सव समाज मे प्रचलित हो गया।

आज के दिन जिन विद्यालयो मे लडके और लडकियाँ साथ-साथ पढते हो, वहाँ यह उत्सव खूब धूम से मनाना चाहिए। लडकियाँ अपने हाथ से खाने का सामान बनाकर लडको को खिलाएँ और लडके अपनी हाथ की बनी हुई चीज़ो को उन्हें बहन मानकर उपहार मे दें। इससे आपस का सौहार्द्र बढेगा और समाज मे सद्भावना का प्रचार होगा।

61 सूर्य षष्ठी

कार्तिक शुक्ला षष्ठी

कार्तिक शुक्ला षष्ठी को 'सूर्य षष्ठी' कहते हैं। वैदिक युग से ही इस त्यौहार की हिंदू समाज में प्रतिष्ठा है। सूर्य और अग्नि वेद में वर्णित देवता हैं। उनसे ही संसार का कितना बड़ा काम होता है। ऐसे उपकारी देव का वंदन तो जितनी श्रद्धा से किया जाय वही श्रेष्ठ है।

ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों के अनुसार ग्रहों के घूमने के मार्ग को क्रांति-वृत कहते हैं। इस वृत के बारह विभाग हैं जिन्हें मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु मकर, कुंभ और मीन के नाम से बारह राशियाँ कहा जाता है। उसके एक राशि से दूसरी राशि पर जाने के काल को संक्रमण काल कहते हैं। इनमें दो अयन होते हैं। कर्क से धनराशि (चौथी से नवीं) तक दक्षिणायन रहता है। जिस दिन सूर्य मकर राशि (दसवीं) पर प्रवेश करता है उस दिन से उत्तरायण काल आरम्भ होता है। सारांश यह है कि मकर संक्रान्ति उत्तरायण का आरम्भ है। वैसे तो प्रत्येक संक्रान्ति का पर्व उत्तम है। परन्तु अयन संक्रांति का महत्त्व विशेष है। आज से देवताओं का दिन आरम्भ होता है। शीत काल का वेग घटना आरम्भ होता है। इसीलिए इस दिन की महत्ता विशेष मानी जाती। सप्तमी सूर्य का दिन है साथ ही शुक्लपक्ष भी यदि हो तो वह और भी प्रशस्त है।

शुक्लपक्षेतु सप्तम्या संक्राति ग्रहणाधिका। (धर्मसिंधु)

मौसम बदलने के इस काल पर हम शुभ संकल्प हों और श्रम करने के योग्य बन सकें ऐसी प्रार्थना भगवान् सूर्य से आज के दिन की जाती है। नदी स्नान और दान की महिमा पर पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। आज के दिन के सब अवश्य होने चाहिएँ। इस तिथि का विशेष वर्णन मकर संक्रान्ति (माघ शुक्ला सप्तमी) के प्रकरण में होगा।

62. देवोत्थानी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी

देव शयनी एकादशी के प्रकरण में जिस तरह भगवान् विष्णु के पाताल जाने की कथा का वर्णन किया गया है उसी तरह आज का दिन उनके वहां से आने का माना जाता है। आज की तिथि को इसीलिए देवोत्थानी एकादशी या देवठान कहते हैं। वैष्णव धर्म में भक्ति, चारित्र्य की शुद्धता और मनुष्य-मनुष्य की समानता इन तीनों बातों पर अधिक जोर दिया गया है। इन्हीं तीन बातों को अपनाने से इस एकादशी के व्रत का माहात्म्य पूरा होता है। आज के दिन श्रद्धापूर्वक भगवद्भजन और संकीर्तन आदि करना चाहिए। वैष्णव धर्म ने जिस भगवद्भक्ति पर जोर दिया है वह क्या चीज है? मान लीजिए हम किसी मन्दिर में देवमूर्ति खड़ी कर दें और लोग उसका दर्शन-पूजन करें, उसका नाम स्मरण करें तो क्या भक्ति पूरी हो जायगी? नहीं, वह तो भक्ति का अभिनय मात्र होगा। दर असल भक्ति तत्व को समझने का वह प्रथम सोपान है। जैसे केवल बारहखड़ी रट लेने का नाम विद्या नहीं होता, विद्या के लिए तो साधना करनी होती है। जीवनभर अर्जन करने पर भी वह कम ही मालूम पड़ती है। यही दशा भक्ति की भी है। देव-मन्दिर का प्रसाद लेने से कुछ भावना उत्पन्न होती है। उस भावना को बढ़ाते रहने के प्रयत्नों में यदि शिथिलता आ जाय तो भक्ति का लक्ष्य पूरा नहीं होता। इन्हीं भावनाओं में जब बल आता है तब हमारे जीवन में सब प्राणियों के लिए प्रेम, करुणा और सौहार्द पैदा होता है। वही तो असली भक्ति है। ऐसी भक्ति जहां होती है वहां बाकी सारे गुण अपने आप मनुष्य में आने लगते हैं और सभी शक्तियां उसकी सहायक होती हैं।

63. भीष्म पंचक

कार्तिक शुक्ला एकादशी

यह व्रत कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से शुरू होकर पूर्णिमा को समाप्त होता है। इन पाँच दिनों के व्रत को भीष्म पचक कहते हैं।

पितामह भीष्म का चरित्र भारतीय इतिहास की अमर सामग्री है। महाराज शान्तनु की धर्म पत्नी गंगादेवी के गर्भ से उनकी उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए उन्होंने भगवान् परशुराम से युद्ध-विद्या और महर्षि वेदव्यास से शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। युवा होने पर उनके पिता एक धीवर की कन्या पर आसक्त हो गए। उसका नाम सत्यवती था। महाराज शान्तनु ने सत्यवती के पिता को अपने पास बुलाकर अपने साथ सत्यवती का विवाह कर देने का प्रस्ताव किया। धीवर राजी तो हो गया, परन्तु उसने अपनी कन्या के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की माँग उनके समक्ष रखी। राजा अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए भीष्म जैसे सुपुत्र को अधिकारच्युत करने को तैयार नहीं हुए। किंतु भीष्म ने पिता की प्रसन्नता के लिए वह कठोर व्रत स्वीकार किया जो प्राणीमात्र में किसी ने नहीं किया था। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर पिता के राज्य की रक्षा करते हुए माता सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक को राज्याधिकारी स्वीकार कर लिया।

भीष्म की इस भीषण प्रतिज्ञा से स्वर्ग के देवता भी चकित हो उठे। पिता की प्रसन्नता के लिए जो त्याग उन्होंने किया था वैसा त्याग देवो से भी सधना कठिन था। आगे चलकर शान्तनु के वंशजो मे जब राज्य के लिए महाभारत नामक युद्ध हुआ, उस समय भी वह राज्य-मन्त्री के पद पर आरूढ थे। दसवें दिन के युद्ध मे वह वीर अर्जुन के बाणो से घायल होकर जब बाणो की शैया पर गिरे तब उन्होंने लोगो से कहा —पिता के वरदान से उन्हें इच्छा मृत्यु प्राप्त हुई है। अत वह अट्ठावन दिन के बाद शरीर का त्याग करेंगे।

महाभारत का युद्ध अट्ठारहवें दिन समाप्त हो गया। तब युद्ध मे मरे हुए अपने भाइयो का श्राद्ध करते समय धर्मराज युधिष्ठिर को वैसा ही मोह हुआ जैसा युद्ध के आरम्भ मे महारथी अर्जुन को हुआ था। युधिष्ठिर के मोह को दूर करने के लिए श्री कृष्ण ने उन्हें भीष्म से उपदेश लेने की सलाह दी। भीष्म ने पाँच दिन तक शैया पर पडे-पडे ही युधिष्ठिर को राजधर्म, वर्णधर्म और मोक्षधर्म का महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया। उस उपदेश का महाभारत के शांति पर्व मे महर्षि वेदव्यास ने वर्णन किया है।

उस उपदेश की महत्ता पर प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने पितामह भीष्म की बडी प्रशसा की और कहा कि आपने मानव धर्म का जो निरूपण किया है वह जीवन को ऊँचा बनाने के लिए अमर सहायक होगा। इसीलिए आपकी चिर स्मृति को कायम करने के लिए मैं भीष्म पचक व्रत स्थापित करता हूँ। इन दिनो आपके दिये हुए उपदेश को श्रद्धा और सयम के साथ श्रवण करने से लोगो को जीवन की राह मिलेगी।

64 कार्तिकी पूर्णिमा

कार्तिक पुर्णिमा

आज के दिन भगवान् शकर ने त्रिपुरासुर नामक राक्षस को मारा था। इसीलिए इसे त्रिपुरी पूर्णिमा भी कहते हैं। आज के दिन गगा स्नान और सायकाल के समय दीपदान का बडा महत्त्व माना जाता है। मत्स्य पुराण के अनुसार आज की सध्या मे भगवान् का मत्स्यावतार हुआ था।

श्री मद्भगवद्गीता मे एक महावाक्य है कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येर्थे न त्व शोचितुमर्हसि॥

अर्थात्—इस पृथ्वी पर जो भी जन्म लेता है उसकी एक न एक दिन मृत्यु अनिवार्य है। परन्तु पृथ्वी पर अमर होकर जो रहना चाहता है उसे भारतीय संस्कृति में असुर, दैत्य या राक्षस का नाम दिया जाता है। इसी कोटि में त्रिपुरासुर है। उसने भी अमर होकर पृथ्वी पर जीवित रहना चाहा था। इसके लिए उसने कठोर तप करके प्रजापति ब्रह्मा से अमरत्व का वर प्राप्त कर लिया। उसके बाद वह निर्भय होकर लोगों को सताने लगा। दिनोंदिन उसके अत्याचार बढ़ने लगे। देवताओं को उसके अमर होकर जीने में तो कोई हानि प्रतीत न हुई। परन्तु अत्याचारी होकर जीने देना वह कभी सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिए आशुतोष ने उसे बड़े कौशल से मार डाला। उसी समय से लोगों ने आज के दिन को एक महत्त्वपूर्ण अवसर मानकर उसे अपने महोत्सवों में सम्मिलित कर लिया और त्रिपुरासुर-जैसे समाजद्रोही का आतंक दूर करने वाले शंकर का अभिनन्दन किया।

65 गुरु नानक जयन्ती

कार्तिक पूर्णिमा

संवत् 1526 कार्तिक मास की पूर्णिमा सिक्ख सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री गुरु नानकदेवजी की जन्म तिथि है। पश्चिमी पंजाब के शेखूपुरा जिले के तलवंडी ग्राम में लगभग पांच सौ वर्ष पहले खत्री कुल में उत्पन्न श्री कल्याणचंद की धर्मपत्नी के गर्भ से उनका जन्म हुआ। वह सिक्ख-मत के आदि गुरु थे। उन्होंने अपने उपदेशों को आम बोलचाल की भाषा में दोहों और पदों के रूप में दिया। हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव को मिटाकर आपस में प्यार और मुहब्बत के साथ रहना सिखाया। बचपन से ही उनका मन भगवद्भक्ति की ओर आकृष्ट हो गया था।

एक बार वह अपने पिता से कुछ द्रव्य लेकर व्यापार की चीजें खरीदने जा रहे थे, परन्तु राह में कुछ क्षुधार्त लोगों से उनकी भेंट हो

गई। उनकी भूख मिटाने मे उन्होंने सारा धन व्यय कर दिया और खाली हाथो घर लौट आए। पिता के हिसाब पूछने पर उन्होने उत्तर दिया— आज मैंने सच्चा सौदा किया है।"उसी दिन से आपने भूखे और दरिद्र नारायण की सेवा का व्रत ले लिया। सुलक्षणा नाम की लडकी से उनके पिता ने कालान्तर मे उनका विवाह कर दिया। जिसके गर्भ से श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामक दो बालक भी उत्पन्न हुए। परन्तु घर मे अधिक दिनो तक नानक का मन नही लगा। और वह जल्दी ही घर त्यागकर देश विदेश घूमने के लिए निकल खड हुए। उनकी मान्यता थी कि एक परमात्मा ने सबको पैदा किया है इसलिए सब से प्रम करो। प्रेम, सेवा और दया ही उनका महामत्र था। उनका स्वय का जीवन बडा ही प्रेरणात्मक और निष्ठा सम्पन्न था। आज बहुत बडी सख्या मे लोग उनके मत को मानने वाले हैं।

आपकी रची हुई वाणियो का सकलन सिक्खो के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव द्वारा ग्रन्थ साहब' के रूप मे हुआ। उसके पढने से यह ज्ञात होता है कि श्री गुरु नानकदेवजी हिन्दू मुसलमान जैन, बौद्ध और ईसाई आदि सभी धर्मो का समान रूप से आदर करते थे और उनकी अच्छी बातो को मानते भी थे। उनका स्वय का प्रभाव भी दूसरे मत के मानने वाले लोगो पर काफी पडा अनेक लोगो ने उनके मत को ग्रहण करके कर्तव्य पालन का सच्चा उपदेश ग्रहण किया।

आज के दिन उनका जन्मोत्सव मनाकर असख्य भारतीय उस उपकारी सत की कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी रची हुई वाणियो का श्रद्धा से पाठ करते है।

66 काल भैरवाष्टमी

मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी

मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को काल भैरवाष्टमी कहते हैं। इस तिथि पर भगवान् शकर के अग से काल भैरव का जन्म

हुआ था। भगवान् शकर तो मृत्यु के देवता हैं। काल भैरव उन्ही का एक स्वरूप है।

मृत्यु के बारे मे भारतीय सस्कृति का अपने ढग का विचार है। वह उसे जीवन वृक्ष का मधुर फल मानती है। रात मे सोया हुआ बालक प्रात काल तरोताजा होकर जिस तरह किलकारियाँ भरता हुआ खेल खेलने के लिए उठ बैठता है, उसी तरह मृत्यु की नीद मे सोकर मानव पुन जागता है, तरोताजा होकर नया खेल खेलता है। इसीलिए मृत्यु को महानिद्रा नही कहा जा सकता, उसमे तो भावी जीवन का अमर आशीर्वाद छिपा हुआ है। इसीलिए जीने की इच्छा रखने वाला प्राणी मृत्यु का अभिनन्दन करता है। उसे हँसकर गले लगाने मे उसे किंचित् भी सकोच नही होता। उसे वह प्रियतम से मिलने का महाभाग मानता है। अपने साजन का घर मानता है। वह उसके खेल का मैदान है।

जिस सस्कृति ने हमे मृत्यु का भय मिटाकर जीवन का परिचय दिया है। वह हमे बताती है—

> नैनं छिदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक ।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम् अक्लेद्यो शोष्य एव च ।
> नित्य सवगत स्थाणुचलोऽय सनातन ॥

आत्मा को न तो हथियार काट सकते हैं, न अग्नि उसे जला सक्ती है, जल उसे गला भी नही सकता और न वायु उसे सुखा सकती है। कभी भी कटने, जलने, गलने सडने और सूखने का भय इसे नही है। वह तो नित्य, सबमे व्याप्त अचल और सनातन है।

इसी ज्ञान ने हमे मृत्यु की सरसता का दर्शन कराया है। वह हमे प्रतिक्षण सावधान करती रहती है। हमारी इच्छा हो या अनिच्छा, दिनोदिन हम उसी की ओर बढ रहे है। जैसे जैसे वह समीप आती जाती है, वैसे-वैसे हमारे शरीर की दशा मे अपने आप परिवर्तन होता जाता है। हालाकि मोह-मदिरा के नशे से उन्मत्त होकर हम उसका सगीत सुन नही पाते, पर वह अपना भैरव निनाद प्रत्येक घडी विश्व के कानो मे डालती रहती है। ससार की असलियत को एक बार समझ लेने वाले

लोग उसके स्वागत की तैयारी सदैव रखते हैं। महात्मा कबीर ने यही संकेत अपने इन शब्दो मे किया है।

करले सिंगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा।
मट्टी उढावन, मट्टी बिछावन, मट्टी मे मिल जाना होगा।
न्हाले धोले शीस गुंधाले फिर व्हाँ से नहिं आना होगा॥

यह गीत कितना सुन्दर है। मरण का नाम है प्रभु का मेल। मरने वाले की शव-यात्रा भी मानो विवाह का मंगल मूल है। काल भैरव के पूजन का यही रहस्य है।

67 दत्तात्रेय जन्मोत्सव

मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी

भगवान् दत्तात्रेय का अवतार मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को हुआ था। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनो देवताओ की संयुक्त मूर्ति माने जाते हैं। इसीलिए उनके तीन शरीर और छ भुजाएं मानी जाती हैं। उनके जन्म के बारे मे यह कथा बडी प्रसिद्ध है कि—

एक बार देवर्षि नारद भगवान् शकर, विष्णु और ब्रह्माजी से भेंट करने के लिए उनके लोको मे गए। दवयोग से उन तीनो मे से कोई भी उन्हें अपने-अपने स्थान पर नही मिले। उनकी पत्नियाँ अर्थात्—श्री पार्वती, लक्ष्मी और सावित्री मिलीं। थोडी देर उन देवियो से बातचीत करके देवर्षि नारद ने देखा कि उन्हें अपने-अपने पतिव्रत और शील पर बडा गर्व हो गया है। नारद को यह अच्छा न लगा। उन्होंने उन तीनो के समक्ष महासती अनुसूया के पतिव्रत पालन की महिमा का वर्णन किया। नारद की कही हुई बातें उन तीनो देवियो को अच्छी न लगी। इसलिए उनके स्वर्ग से चले जाने के बाद तीनो ने अपने अपने पतियो के आने पर अनुसूया की चर्चा उठाई। सामान्य मानवी होकर वह देवियो से आगे बढ जाय यह उन्हें अच्छा

नहीं प्रतीत हुआ। इसी ईर्ष्या के कारण उन्होंने अनुसूया के व्रत को भग कर देने का हठ किया।

तीनो देवता एक साथ महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। और सन्यासी के वेष मे नारायण हरि की ध्वनि लगाने लगे। देवी अनुसूया द्वार पर आये हुए अतिथि का स्वागत करने के हेतु बाहर आईं और सन्यासियो को प्रणाम करके कुछ पल विश्राम लेने का आग्रह किया। सन्यासी वेषधारी त्रिदेवो ने कहा—"यदि आप हमारी इच्छानुसार हमें भोजन कराना स्वीकार करें तो हम लोग यहाँ ठहर सकते हैं।" अनुसूया जी ने प्रसन्नतापूर्वक यह बात मान ली। उनसे कहा—"आप लोग जाकर अपने नित्य नैमित्तिक कार्यों से निवृत्त होइए तब तक मैं भोजन बनाती हूँ।" तीनो देवता यह सुनकर स्नान, पूजन आदि से निवृत्त होने के लिए चले गए और जब लौटे तब भोजन तैयार मिला। देवी अनुसूया ने अपने हाथो से उन्हें भोजन परोसा, परन्तु उन्होने उसे ग्रहण करने से इन्कार कर दिया, और कहा कि जब तक तुम नग्न होकर भोजन न दोगी तब तक हम लोग अन्न ग्रहण न करेंगे। अनुसूया इस अनोखी माँग को सुनकर मनमे बड़ी क्रोधित हुई। अपने तप के बल से उन्हें यह तो पता लग ही गया था कि आज के अभ्यागत स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। और वह मेरे व्रत की परीक्षा लेना चाहते है। किंतु इतने ऊँचे पद पर निवास करने वाले देवताओ के मुख से इतना घृणित प्रस्ताव उन्हें बहुत बुरा लगा। फिर भी द्वार पर आये हुए अतिथियो को अपमानित करना भी उन्हें अभीष्ट न था। इसलिए उन्होने तुरन्त एक उपाय ढूँढ निकाला और उसके अनुसार वह अपने पति महर्षि अत्रि के पास गईं, उनके चरण प्रक्षालन करके उसी जल को लाकर उन देवताओ के ऊपर छिड़क दिया। इस जल के प्रभाव से ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनो दुधमुँहे बच्चे बनकर किलकारियाँ भरने लगे। तब देवी अनुसूया ने उन्हें बड़े प्यार से अपना स्तन पान कराया और पेटभर जाने पर उन्हें पालने मे लिटाकर स्नेहमयी जननी की भाँति उनकी मुख शोभा को देखने लगी। बहुत दिनो तक जब वे देवतागण अपने-अपने स्थान पर न लौटे तो उनको

पत्नियाँ बडी चिन्तित हुईं और दुखी होती हुईं इधर-उधर भटक-भटक कर अपने पतियो की खोज करने लगीं।

उसी समय वीणा पर हरिगान करते हुए देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। उन्हें इस सारे रहस्य का पता पहले ही लग चुका था। फिर भी उन्होने केवल इतना ही कहा कि कुछ दिनो पहले मैंने उन्हें अत्रि मुनि के आश्रम की ओर जाते हुए देखा था। अत आप लोग वही जाकर उनका पता लगाएँ।

तीनो देवियाँ अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँची और देवी अनुसूया से वडी विनम्रतापूर्वक अपने-अपने पतियो के बारे मे पूछा। देवी अनुसूया ने उन्हें उसी पालने को दिखा दिया, जिनमे उनके पति अबोध बालको की भाँति पडे हुए अपने पैरो के अगूठे चूस रहे थे। मां अनुसूया ने प्यार भरे नेत्रो से बालको को देखते हुए सावित्री, लक्ष्मी और देवी पार्वती से निवेदन किया कि—"यही आपके पति हैं। आप लोग स्वय इन्हें पहचान कर ले जाइए। तीनो बच्चे एक जैसे थे, इसलिए उन्हे पहचानना कठिन था। देवी लक्ष्मी ने जिस बालक को बहुत गौर करके उठाया वह भगवान् शकर निकले। इस पर लक्ष्मीजी का बड़ा उपहास हुआ। यह दशा देखकर वे तीनो देवियाँ लक्ष्मी, पार्वती और सावित्री, देवी अनुसूया से हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि हमे अपने-अपने पति प्रदान करने की कृपा करिए।

देवी अनुसूया ने कहा—ये लोग मेरा स्तन पान कर चुके हैं। अत मेरे बालक हैं। इन्हें किसी न किसी रूप मे मेरे पास रहना पडेगा। इस पर तीनो देवो के अग से एक दैवी तेज प्रकट हुआ और उसने एक सयुक्त स्वरूप धारण किया। वही तेज दत्तात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद अनुसूया ने अपने पति के चरणोदक को फिर से देवताओ के शरीर पर छिडक दिया और उन्हें फिर से अपना असली रूप मिल गया।

धन्य हैं इस देश की देवियां जिन्होने अपने पावन चरित्र के आगे स्वय स्वर्ग की देवियो को भी झुकने के लिए विवश कर दिया। आज भारतीय इतिहास उन्ही देवियो की गाथा को लेकर परमोज्वल हुआ है।

68. अवसान पूजा विधि

मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी

कुँवारी कन्या के रूप में तो भगवती दुर्गा के स्वरूप को मानकर पूजने की प्रथा भारतीय संस्कृति मे मानी ही गई है। परन्तु विवाह के बाद भी नारी पूजने के योग्य है यह संदेश 'अवसान पूजन विधि' से प्राप्त होता है। आज के दिन केवल सुहागिन अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियो के पूजन का विधान हमारे धर्म ग्रन्थों मे वर्णन किया गया है। नारी अपने इस रूप मे हमारे घरो की लक्ष्मी है। मनु भगवान् मनुस्मृति मे कहते हैं कि—

यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

जिन परिवारो मे नारी की पूजा होती है वहाँ देवतागण निवास करते हैं। नारी सेवा, त्याग और प्रेम की प्राणमती प्रतिमा है। यही मानकर उसे आज के दिन आदर देना निश्चय किया गया है। वैसे आमतौर पर विवाह के व्रत मे सात या पाँच सौभाग्यवती स्त्रियो का निमंत्रण करके उनको सम्मान के साथ पूजने की प्रथा हमारे परिवारो मे प्रचलित है। अकसर कार्तिक स्नान के बाद या मलमास के स्नान के उपरान्त यह पूजन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि किसी काम के निर्विघ्न पूरा होने पर ही यह व्रत किया जाता है। हमारे गाँवो की बहनें इसे 'अचानक देवी' का व्रत भी कहती हैं।

इसकी विधि यह है कि आज के दिन अथवा ऊपर कहे गए किसी अवसर पर सवेरे पाँच या सात सुहागिन स्त्रियो को भोजन करने का निमंत्रण दिया जाता है और मध्याह्न मे उनके आने पर उबटन स्नान कराके श्रद्धानुसार वस्त्र आभूषणो से अलकृत किया जाता है। बाद मे शास्त्र विधि के अनुसार स्थापित किये गए एक मगल कलश के चारो ओर वे बैठती हैं। पचाग पूजन के बाद वे सुहागिनें अपने अपने हाथो मे अक्षत लेकर कथा कहती हैं। पूजा कराने वाली बहन यदि सधवा है तो स्वय भी पूजा मे भाग लेती है और यदि विधवा है तो अलग रहती

है। कथा समाप्त होने पर कलश पर अक्षत छोडे जाते हैं। सुहागिनो की माँग मे सिंदूर भरा जाता है। उसके बाद भोजन कराकर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इस व्रत के बारे मे श्रीमद्भागवत पुराण मे यह कथा मिलती है कि—

मार्गशीर्ष मास मे एक बार भगवान् श्री कृष्ण अपने साथियो के साथ वन मे गौऐं चराते हुए घूम रहे थे। दोपहर का समय था। ग्वाल बालको को बडी भूख लगी। उन्होने श्री कृष्ण से कहा कि आज तो हमे भूख बेतरह सता रही है। क्या किया जाय ? श्री कृष्ण बोले— "यहाँ से कुछ दूर पर वेदज्ञ ब्राह्मण स्वर्ग पाने की इच्छा से आगिरस नामक यज्ञ कर रहे हैं। उनके पास जाकर अन्न माँग लाओ। वे ग्वाल यह सुनकर यज्ञ करने वाले ब्राह्मणो के पास गए और श्री कृष्ण को भूख लगी है, यह कहकर अन्न माँगने लगे किन्तु ब्राह्मण यज्ञ के पूरा होने के पहले अन्न देने को राजी न हुए। गोप बेचारे वापस लौट आए। तब श्री कृष्ण ने उन्हें उन ब्राह्मण पत्नियो के पास भेजा और कहा कि अब की बार इनकी गृहलक्ष्मियो से अन्न माँगना। ग्वालो ने तत्काल ब्राह्मण पत्नियो से जाकर अन्न माँगा। श्री कृष्ण ने अन्न मँगवाया है यह सुनते ही वे हर्षित होकर बोली—"जो श्री कृष्ण जगत् के पूज्य हैं, बडे-बडे यज्ञो के द्वारा जिनका पूजन करते हुए भी बडे-बडे ऋषि और महात्मा उन्हें नही प्राप्त कर पाते वही श्री कृष्ण स्वय हम दीन कुल वधूटियो से अन्न माँग रहे हैं, यह हमारा सौभाग्य है।" यह कहकर वे सब बडी श्रद्धा के सहित अनेक प्रकार के सुगंधियुक्त पदार्थ भिन्न-भिन्न पात्रो मे लेकर श्री कृष्णचन्द्र को अर्पण करने के लिए चल दी। ग्वाल बालो सहित श्री कृष्ण ने उनका स्वागत किया और उनका लाया हुआ अन्न अपने साथियो के साथ वही बैठकर खाया।

उधर थोडे समय के बाद उन यज्ञ करने वाले ब्राह्मणो को भी अपनी भूल का ज्ञान हुआ। तब उन्होने दुखी होकर आपस मे कहा कि हमारे तीन प्रकार के शौक्ल (ब्राह्मण शरीर) सावित्री (गायत्री उपदेश युक्त) और देव (यज्ञ की दीक्षा से युक्त) जन्म को धिक्कार है।

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्।
धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥
नासां द्विजाति संस्कारो न निवासो गुरावपि।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रिया शुभा॥
श्रीमद्भागवत स्कंध 10 श्लो० 42-43

अर्थात्—इन स्त्रियों के न तो उपनयन आदि संस्कार हुए हैं, न इन्होंने गुरुकुल में निवास ही किया (वेद नहीं पढ़े), न तप किया, न आत्म-चिन्तन ही किया न इनमें शौच ही है और न सन्ध्योपासन आदि क्रियाएं हैं। फिर भी यह उत्तम कीर्ति से युक्त योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकीं, यह नारियाँ वंदनीय हैं।

उस ओर श्रीकृष्ण को श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर जब वे ब्राह्मण पत्नियाँ लौटने लगीं तब श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—"आप लोगों की श्रद्धा पर मैं प्रसन्न हूँ। आपके पवित्र हाथों का प्रसाद पाकर हम सबका जीवन उपकृत हुआ। जो परिवार सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथों का प्रसाद प्राप्त करते हैं वहाँ स्वर्गीय सुख की निधियाँ निवास करती है। जो लोग आपका आदर-सत्कार करेंगे उनकी मनोकामनाएँ परि-पूर्ण होंगी। उस दिन मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी थी। इसलिए उस दिन सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथ का प्रसाद पाना प्रत्येक परिवार के लिए सुख समृद्धिदायक माना जाता है। तभी से इस व्रत का रिवाज हमारे समाज म प्रचलित हुआ ऐसा माना जाता है।

69 उत्पन्ना एकादशी

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को उत्पन्ना एकादशी कहते हैं। भविष्य पुराण में इस एकादशी के बारे में यह कथा मिलती है कि सत्ययुग

में मुर नाम का एक दानव था, जिसने अपने पराक्रम से देवों पर भी विजय पाई और देवताओं के राजा इन्द्र को उनके पद से नीचे गिरा दिया। इस पर सभी देवता दु.खी होकर पृथ्वी पर फिरने लगे। इन्द्र ने भी दु.खी होकर भगवान् शकर को अपनी कष्ट-कथा सुनाई। शिव ने उन्हें भगवान् विष्णु के पास जाने की सलाह दी। देवताओ ने क्षीर-सागर के तट पर जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति करके उनका ग्रावाहन किया। श्री विष्णु ने प्रकट होकर देवताओ का हाल सुना तो उन्हें मुर नामक दानव पर बडा क्रोध आया। उन्होने मुर को समाप्त करने का वचन दिया और अपने वाणो से सभी दानवो को मार डाला। परन्तु मुर नही मरा। उसके शरीर पर किसी शस्त्र का भी प्रयोग कारगर नही होता था। तब विष्णु ने उससे मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया। बहुत दिनों तक मुर से उनका मल्लयुद्ध होता रहा परन्तु वह तब भी नही मरा। यह देखकर कि किसी देवता के वरदान से वह अजेय है—श्री विष्णु उससे मल्लयुद्ध करना छोडकर बद्रिकाश्रम की एक गुफा के अन्दर जाकर विश्राम करने लगे। मुर भी भागता हुआ उनके पीछे गया और गुफा के अन्दर जा पहुँचा। यहाँ विष्णु को सोते हुए देखकर उसने उन्हें मार डालने का विचार किया। उसी समय श्री विष्णु के शरीर से एक महातेज युक्त कन्या प्रकट हुई। वह कन्या दिव्य-आयुधो से सुसज्जित थी। विष्णु के तप और तेज के अश से उसका जन्म हुआ था। इसलिए थोडी ही देर मे उस कन्या ने मुर के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला। इतने मे विष्णु भगवान् भी अपनी निद्रा से जगे। उन्होने मुर के शरीर-खण्ड देखे। कन्या भी हाथ जोड़े हुए उनके सामने आ खडी हुई। विष्णु ने उससे सब हाल पूछा। उसने कहा—"मैं आपके ही अग से उत्पन्न हुई एक शक्ति हूँ। इस दैत्य का अविचार देखकर मैंने इसे मार डाला।" भगवान् विष्णु अपनी कन्या के इस पराक्रम पर बडे प्रसन्न हुए और उससे कोई अपनी इच्छा का वर माँगने को कहा। कन्या ने इसके उत्तर मे कहा—"प्रभो! आप तो जगत् के प्राणीमात्र के ऊपर दया करके उसका पालन करते ही है। परन्तु मनुष्य स्वभावत. निर्बल प्राणी है इसलिए वह आपके उपकारो को भूलकर

अनेक कमजोरियों का शिकार होकर आप से दूर हट जाता है। इसलिए यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर प्रदान कर कि मैं उन भूले भटकों की सहायता देकर आपके निकट आने में उनकी मदद कर सकूं।' विष्णु ने प्रसन्न होकर कन्या को यह वर प्रदान कर दिया और उसकी मंगलमयी भावनाओं से सन्तुष्ट होकर कहा—"पुत्री जो लोग तेरा आदर करके तेरी कृपा प्राप्त करेंगे उन्हें अपने जीवन में मेरी कृपा और मरने पर मेरे लोक का वास प्राप्त होगा।" वही कन्या एकादशी है। उसकी कृपा प्राप्त करने वाले प्राणी को जीवन में सुख शान्ति और मरण के बाद विष्णु-लोक प्राप्त होता है। प्रत्येक मास में वह एकादशी दो बार पड़ती है। सभी एकादशी व्रतों का फल समान है। परन्तु मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी तो उस परोपकारिणी देवी का खास जन्म दिन है। इसलिए शास्त्रों में इस एकादशी के व्रत-उपवास और भजन कीर्तन करने का बड़ा महात्म्य माना गया है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक एकादशी की महिमा और फल का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

70 नाग दीपावली (नाग पंचमी)

मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी

मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को नाग दीपावली कहते हैं। इस दिन नागों की पूजा के साथ उनकी आधारभूता माँ पृथ्वी की पूजा करके उसके अंगों को दीप जलाकर सुसज्जित किया जाता है। पृथ्वी की महिमा तो वेदों में खूब गाई गई है। यहाँ तक कि अथर्ववेद में उसकी वंदना का सूक्त ही अलग है। उसे पृथ्वी सूक्त कहते हैं। उसमें कहा गया है कि—

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या।

—यह पृथ्वी हमारी माँ है और हम सब उसके पुत्र हैं। पृथ्वी की

माँ के रूप मे मानकर वेदों ने कितनी मधुर कल्पना की है। भूमि और मानव के सम्बन्धो को कितना प्रेरणात्मक भाव प्रदान किया है, उसकी स्मृति ही चिर-सुखदायिनी है। वह धरती माता कितनी क्षमाशील है। कितनी उदार है। हम उसे अपने हल के फाल से छेदते हैं मगर वह अनेक प्रकार के अन्न अपने वक्ष मे से प्रकट करती है। हम उस पर गंदगी फैला देते हैं। पर वह हम से कभी रुष्ट नही होती। इतना ही नही, वेद के द्रष्टा तो माँ वसुन्धरा पर जो भी जन्मा है उस सबको पूज्य-भाव से देखते हैं। उन्होने कहा है कि हे पृथ्वी ! तेरे वक्ष से पयपान करके जो भी जन्मा है अथवा जो भी चर-अचर पोषित होते है जैसे—वृक्ष, वनस्पति, घोर, व्याघ्र आदि हिंस्र जंतु, यहाँ तक कि नाग, बिच्छू आदि तक उनसे भी हमारी प्रीति हो और वे भी हमारा कल्याण करने वाले हों। हमारा किसी से द्वेष न हो। यह हमारी माँ जिन धातुओ से तथा रत्न, मणि आदिक निधियों से परिपूर्ण है, वे सब हमारे लिए लाभदायक हों।

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशिनी।
निधि बिभ्रती बहुधा गुप्त वसुमणि हिरण्य पृथिवी ददातु मे ।।42।।
वसूनि नो वसुधा रसमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ।।44।।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहाँ ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरंति ।।45।।

अटल खडी हुई अनुकूल गाय के सदृश माँ वसुन्धरे। तुम अपनी सहस्रो रस-धाराएँ हमारे हित के लिए प्रवाहित करो। तुम्हारी कृपा से हमारे राष्ट्र का कोष अक्षय सम्पत्तियो से परिपूर्ण हो। उसमे किसी भी काम के लिए कभी कमी न पडे।

सा नो भूमिर्विसृजता माता पुत्राय मे पयः ।।

बालक को जिस तरह माँ से पोषण पाने का अधिकार है उसी तरह हम तेरा आश्रय पाने के अधिकारी हैं। अपने शरीर से निकलने वाली शक्ति की धाराओ से हमे संयुक्त करो। जगतवंद्य मातृभूमि के इसी सर्व कल्याणमय रूप की कल्पना करती हुई हमारी भारतीय संस्कृति ने उसे सदा पूज्य माना है और उसे देवत्व के पद पर सुशोभित किया है। पुराने समय से मातृभूमि के प्रति हमारी यही धारणा

रही है। हम अपनी श्रद्धा के पुष्प उसके चरणों पर चढ़ाते चले आए हैं। वह हमारे पूर्वजों की भी जननी है। उससे अपना यही सम्बन्ध स्थापित करके मानव का जीवन सफल हुआ है। इसलिए जयघोष के साथ वह घोषणा करता है, "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" स्वर्ग का वैभव उस माँ वसुन्धरा के सुख के आगे हेय है। उसी मातृभूमि की वंदना का अमर संगीत हमारे जीवन का मधुरतम राग है। आज उसी की वंदना का पर्व है।

71. चम्पा षष्ठी

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी को चम्पा-छठ या चम्पा षष्ठी कहते हैं। आज के दिन भगवान् विष्णु ने माया-मोह में फँसे हुए देवर्षि नारद का उद्धार किया था। इसीलिए संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने की इच्छा रखने वाले लोगों को आज के दिन व्रत करके उसकी कथा को स्मरण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो कथा पुराणों में मिलती है वह इस प्रकार है कि, एक बार देवर्षि नारद को अपने त्याग-तप और संयम पर बड़ा गर्व हुआ। वह अपने मुख से अपने त्याग की महिमा का बखान करते हुए भगवान् शंकर के सामने गए और कुशल समाचार पूछने पर संयम की डींग हाँकने लगे। शंकर ने उन्हें समझाते हुए कहा—"देवर्षि! जिस तरह आपने अपने तप की महिमा का वर्णन मुझसे किया ऐसा भगवान् विष्णु के सामने मत करिएगा।" नारद उस समय तो चुप हो गए। परन्तु उनके हृदय में अन्दर ही अन्दर अपने तप का हाल अपने इष्टदेव भगवान् को सुनाने की इच्छा प्रबल हो उठी। वह वहाँ से उठकर सीधे ही विष्णु-लोक को चले गए। भगवान् ने उन्हें अपना परम-भक्त जानकर बड़ा आदर-सत्कार किया। परन्तु उनके मुख

से जब उन्होंने आत्म-प्रशंसा के शब्द सुने तो अपने मन मे सोचा कि इन्द्रियो के दमन से देवर्षि के मन मे अभिमान जाग उठा है। और भगवद् भक्तो मे अभिमान होना उनके पतन का कारण होता है। इसलिए मुनिवर को ऐसा क्रियात्मक पाठ पढाना चाहिए जिससे उनके मन का अभिमान दूर हो जाय।

नारदजी जब भगवान् के पास से लौट रहे थे तब प्रभु ने उन्हें अपनी माया का एव अदभुत खेल दिखा दिया। उन्हें मार्ग मे एक बडा सुसमृद्ध राज्य मिला। उस राज्य का शासन एक देव-तुल्य राजा कर रहा था। उसकी राजकन्या की झलक किसी प्रकार नारद ने देख ली और वे उस पर अनुरक्त हो उठे। उसका स्वयवर होने वाला था। उनके मन मे उससे विवाह करने का विचार उत्पन्न हुआ। परन्तु दाढी-मूँछ वाले बैरागी बाबा के साथ कोई सुन्दरी अपनी इच्छा से क्यो विवाह करने लगी यह सोचकर देवर्षि नारद अपने इष्टदेव भगवान् विष्णु के पास जाकर बोले— प्रभो ! आप मुझे इतना रूप प्रदान कर दें कि जिससे मैं उस राजकन्या का मन अपनी ओर खीचकर उसे अपनी पत्नी बना सकूँ।" इतनी जल्दी देवर्षि नारद के सयम का बाँध टूटा हुआ देखकर प्रभु भी पहले तो हँसे। परन्तु नारद को रूप का वरदान देकर उन्हे उस कन्या के स्वयवर मे भेज दिया। नारद बडी प्रसन्नता से वहाँ गए। परन्तु जब राजकन्या ने दूसरे के गले मे अपने हाथ की जयमाला डाल दी तब नारद को भगवान विष्णु पर बडा क्रोध आया कि जिन श्री हरि का वह बड़ प्रम से निरन्तर स्मरण करते थे वह उनके मन को रखने के लिए जरा-सा काम न कर सके। इसलिए उन्होंने भगवान को श्राप दे डाला—

बचेहु मोहि जवन धरि देहा।
सो तनु धरहु श्राप मम एहा॥

अर्थात—जिस रूप को रखकर तुमने मुझे ठग लिया वही रूप लेकर तुम्हें पृथ्वी पर जन्म लेना पडगा। श्री विष्णु ने श्राप तो स्वीकार कर लिया परन्तु अपने भक्त को विषयो के मार्ग पर जाने से बचा लिया।

भगवान् की इसी महिमा का प्रकाश करने के लिए आज का व्रत

मनाया जाता है और भवजाल को काटने वाले उन्ही श्री हरि का आराधन किया जाता है।

72 गीता जयन्ती

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी

आज कर्तव्य मार्ग का महान् निर्देश देने वाली श्री मद्‌भगवद्‌गीता का जन्म दिन है। आज के दिन कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि पर खड़े हुए भगवान श्री कृष्ण ने मोह मे फंसकर अपने कर्त्तव्य से विमुख होने वाले अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। गीता का उपदेश केवल अर्जुन को ही दिया गया हो वैसी बात नहीं है, वह तो अर्जुन के बहाने सारे विश्व के लिए एक अमर संदेश है। उसमे मानव के कर्त्तव्य की गंभीर विवेचना हुई है। गीता भगवान् श्री कृष्ण द्वारा एक छोटे-से गागर में भरा हुआ सागर है। आज विश्व की प्रत्येक भाषा मे उसके अनुवाद प्रचलित हैं। ससार का कोई धर्म ऐसा नहीं है जिसमे गीता के मत को मानने वाला की सख्या कम हो। वह एक सार्वभौम ग्रंथ ही नही बल्कि हमारी राष्ट्रमाता है। मानव के मार्ग-दर्शन के निमित्त नैतिक विधान ही नही अपितु ज्ञान और वैराग्य का अक्षय तथा अखण्ड विश्व कोष है।

गीता मे कहा गया है कि मानव को इतना कमजोर नही बनना चाहिए कि ससार के साधारण दुख सुख भी प्राणी पर आसानी से असर डाल सकें। लाभ हानि, जय पराजय को एक जैसा मानकर मानव को कर्तव्यरत होना चाहिए, यही गीता का ज्ञान है जो मानव जीवन का जागृत मत्र है। ससार की सभी विद्याएं प्राय यही सिखाती हैं कि मानव अल्प है, क्षणभगुर है और सीमित शक्ति वाला है। परन्तु गीता सजीवनी विद्या है। वह मनुष्य को महान् मानती है। कभी न मरने

वाला मानती है और असीम शक्ति का भंडार मानती है।

वह व्यक्ति दरअसल महान् है जिसने जीवन के सभी तूफानो को हँसते हँसते झेलकर असफलताओ और कठिनाइयो से चूर-चूर होने के बजाय उन्हें अपनी सफलता का प्रेरणा-स्रोत बना लिया है। मानव जीवन की सफलता स्वय मानव के हाथ मे है। वह कायरता या निराशा की मूर्ति बनकर आत्म सम्मान को गंवाने के लिए नही वरन् जीवन की निराशा पर विजय पाने के लिए कर्म क्षेत्र मे उतरता है। ईश्वर पर भरोसा रखकर मार्ग की विघ्न-बाधाओ की परवाह न करता हुआ अपने जीवन की नौका को मजिल की ओर बढाता हुआ ले जाता है और आतरिक आनन्द एव उल्लास का अनुभव करता है। इस आनन्द के विषय मे गीता का मत है कि—

प्रसादे सर्व दुःखाना हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते।

चित्त से प्रसन्न रहने से उसके सभी दुखो का नाश हो जाता है। क्योंकि जिसका चित्त प्रसन्न है उसकी बुद्धि भी तत्काल स्थिर होती है। और जिसकी बुद्धि स्थिर नही होती उससे इस दुनिया म कुछ भी करते धरते नही बन पडता।

इस प्रसन्नता या सुख के बारे मे लोगो की धारणाएँ अलग अलग है। लोग यह मानते हैं कि प्रसन्नता उन पदार्थों मे है जिन्हे हम अपने अर्थ या पैसे से खरीद सकते हैं। अधिक धन होगा तो माया का प्रसार बढेगा, अधिक चीजें आएँगी। अधिक सुख का अनुभव होगा, परन्तु क्या आज तक कोई भी व्यक्ति उन से प्रसन्नता खरीद सका है? धन और सम्पत्ति से आज तक किसी के मन को शाति और सच्चा सुख नही प्राप्त हो सका। सच्चा सुख हमारे खाने-पीने या ऐश आराम लेने म नही, वह तो आदर्श जीवन जीने से ही प्राप्त होता है। उसका जन्म उच्च विचारो एव परोपकार के कार्यों मे होता है। स्वार्थ, ईर्ष्या और लालच से वह दूर भागता चला जाता है। ऐसे लोग उसे अपने जीवन मे छू भी नही सकते। गीता ने हमे यह सिखाया है कि प्रसन्नता कोई बाहर की वस्तु नही है और न वह थोथे उपायो से भविष्य मे मिलने वाली है।

यह तो हमारे अपने हृदय की संपत्ति है जिसके आधार-स्रोतों में उद्भव का स्थान हमारा अंतःकरण है। इसलिए उसे हम जब चाहें प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन के पहलुओं पर लौकिक दृष्टि से जो विचार हमें करना चाहिए उसके बारे में तो गीता ने विचार किया ही है परन्तु केवल यही बात उस समूचे ग्रंथ में वर्णन की गई हो ऐसा नहीं है। उसमें तो दर-असल ज्ञान भक्ति युक्त कर्म की महिमा का गान हुआ है।

जिन पाश्चात्य पंडितों ने परलोक सम्बन्धी विचारों को छोड़ दिया है या जो लोग उसे गौण मानते हैं वे गीता में प्रतिपादित किये गए कर्मयोग को भिन्न भिन्न लौकिक नाम दे डालते हैं। जैसे सद्व्यवहार शास्त्र, सदाचार शास्त्र, नीति शास्त्र, अथवा समाज धारणा शास्त्र आदि। परन्तु गीता आगे जाकर गहन अध्यात्म तत्व का निर्देश कर रही है—ऐसा अध्यात्म जीवन जिसे मानव जीवन की सुगन्धि कहा जा सकता है। श्रद्धा और विश्वास ही तो मानव जीवन की ताली हैं। यदि विश्वास न हो तो विजय भी नहीं होगी। जो लोग अपने जीवन को विकसित करना चाहते हैं वे विश्वास के साथ प्रगति की राह पर बढ़ते जाते हैं। पीछे मुड़कर नहीं देखते। कवीन्द्र श्री रवीन्द्र ने अपने 'एकला चलो रे' गीत में गीता के इसी संदेश की पुनरावृत्ति की है। संसार में तुम अकेले कहाँ हो? विश्व की सभी शक्तियाँ तुम्हारी सहायता की बाट जोह रही हैं। आगे बढ़ो और देखो कि विश्व की शक्तियाँ तुम्हारी सहायता के लिए किस तरह आगे आती हैं। यही गीता का प्रतिपादित मार्ग है।

ऐसे अमर संदेश की दाता माँ गीता के उपदेश से हमारा जीवन उपकृत हो इसीलिए उसकी जयन्ती मनाकर हम उसके संदेश को जीवन में ग्रहण करें यही इस पुनीत पर्व को मनाने का लक्ष्य है। इसलिए बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ सामूहिक रूप में हमें हर प्रदेश में गीता जयन्ती का महोत्सव मनाकर उसकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

73. संकष्ट चतुर्थी

पौष कृष्णा चतुर्थी

आज के दिन गौ के गोबर की गणेश-प्रतिमा बनाकर पूजी जाती है। गोबर खाद के रूप मे तो हमारे देश की खेती का प्राण है ही किन्तु आज के युग ने तो उससे गैस पैदा करके उसे और भी उपयोगी बना दिया है। पुराने युग के लोग गौ के गोबर को धरती के अनेक कीटाणुओ का नाशक मानते थे। इसलिए प्रत्येक शुभ कर्म मे उससे भूमि को लीपना पवित्रता का द्योतक माना जाता है। प्लेग जैसे सक्रामक रोग के अवसर पर भूमि को गोबर से लीपने की सलाह कुछ डाक्टर दिया करते है। अब भी डाक्टरो की राय मे गोबर 'एण्टी सैप्टिक' (कीटाणु-नाशक) माना जाता है। पचगव्य बनाते समय गोबर मिलाने के अवसर पर यह मत्र पढा जाता है —

अग्रमग्र चरन्तीनामौषधीना वन वने।
तासामृषभ पत्नीना पवित्र कायशोधनम्॥
तन्मे रोगाश्च शोकाश्च नुद गोमय सर्वदा।

अर्थात्—जगल मे औषधियो के ऊपर के भाग को चरने वाली गायो का गोबर पवित्र और शरीर को पवित्र करने वाला होता है। हे गोबर ! तू मेरे शरीर के रोगो और उससे होने वाले शोक को दूर कर। इटली मे अब भी हैजा या अतिसार के रोगी को ताजे पानी मे ताज़ा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाब के पानी मे हैजे के जतु हो उसमे गोबर डालते है। उनका अनुभव है कि इससे हैजे के जन्तु मर जाते हैं। (कल्याण, गो अक पृष्ठ 431)

मद्रास के सुप्रसिद्ध किंग कहते है कि यह अब हाल के प्रयासो से सिद्ध हो गया है कि गाय के गोबर मे हैजे के कीटाणुओ को मारने की अद्भुत शक्ति है। डाक्टरो ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि 'रोग-जन्तुनाश के लिए गोमय का बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपयोग है।' (कल्याण गो अक पृष्ठ 431)

योग रत्नाकर मे कहा गया है कि—

> गो शकृद्रस दध्यम्ल क्षीर मूत्रं समैघृतम्।
> सिद्ध चतुर्थकोन्माद ग्रहापस्मार नाशनम्॥
> अपस्मारे ज्वरे कासे श्व यथावुदरेषु च।
> गुल्मार्शः पाडुरोगेषु कामलाया हलीमके।
> अलक्ष्मी ग्रह रक्षोघ्न चतुर्थक विनाशनम्॥

गाय के गोबर का रस, दही का खट्टा पानी, दूध और गोमूत्र बराबर लेकर उससे तैयार किया हुआ घृत, चौथिया (चार दिन म आने वाला ज्वर) पागलपन, भूत प्रेत और अपस्मार (मृगी) का नाशक है। यह अपस्मार, ज्वर, खाँसी, सूजन, उदर के विकार, वायुगोला, बवासीर और तीनो तरह के पीलिया के रोग मे हितकारी है। अलक्ष्मी, भूत प्रेत और राक्षसो तथा चौथिया का नाशक है।

इतने उपयोगी गुणो से अलकृत गोबर के गणेश बनाकर पूजने की कल्पना भी एक अनूठी चीज है। पूजने का आधार भी यही है कि हम उसके महत्त्व को समझें। उसे गदा और व्यर्थ की चीज मानकर फक न देवें। उसका आदर करना सीख। उसकी प्रतिष्ठा करें। अब रही गणेश बनाने वाली बात। गणेश तो बुद्धि के देवता हैं। उनका आकार गोबर का बनाया जावे यह दूसरी अनोखी बात है।

वास्तव मे दूसरे देवताओ म भी वही गणेशजी तो सबसे अधिक पूज्य और अग्रगण्य माने जाते हैं। इसलिए उन्ही को हमारे समाज मे सब प्रथम स्थान मिला है। उसके पूजने की रीति पुराणो मे इस प्रकार वर्णन की गई है कि गोबर की गणेश प्रतिमा बनाने के उपरान्त एक कोरे घडे मे जल भरे और उसके मुख पर नवीन वस्त्र टाँककर यव अथवा अक्षत से भरा हुआ पात्र रखे। बाद मे शान्त चित्त होकर श्री गजानन का ध्यान करे। तब षोडशोपचार विधि से उनका पूजन करें। आवाहन, आसन, पाद्य अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गध और पुष्प आदि से पूजन करने के बाद अगपूजन आरम्भ करे। अग पूजा मे चरण, जघा, उरु, कटि, नाभि, उदर स्तन, हृदय, कठ, स्कध, हाथ,

मुख, ललाट, सिर और सर्वांग का पूजन होता है तथा धूप-दीप नैवेद्य, आचमन, तांबूल और दक्षिणा के पश्चात् आरती करके उन्हें प्रणाम करना चाहिए। इस पूजा मे कम-से-कम इक्कीस लड्डू भी रखने चाहिएँ। उनमे से पांच तो गणेशजी की भेंट करें और शेष गांव के प्रतिष्ठित विद्वानो को अर्पण करने चाहिएँ। यह सारी क्रिया दिन मे मध्याह्न के समय होनी चाहिए। रात्रि मे जब चन्द्रमा उदय हो उस समय तक भगवद्-कीर्तन करें। बाद मे गांव के प्रत्येक बूढे-बालक और युवा को प्रसाद देकर दक्षिणा सहित गणेश प्रतिमा को गांव के आचार्य को अर्पण करें। बाद मे सब लोग गणेशजी की महिमा सुनते हुए शेष रात्रि व्यतीत करें।

इस तरह के सामूहिक पूजन से गांव मे समृद्धि आती है। पाठक इस पूजन का रहस्य और भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे इस तरह के पर्व मनाने का महत्त्व अच्छी तरह स्वय समझ सकते हैं कि कितना महत्त्वशील और प्रभावशाली है। जब से हमने ऐसे पूजन की प्रथाएँ अपने आलस्य और अश्रद्धा के कारण बन्द कर दी हैं तब से हमारे जीवन में जो विषमताएँ आईं उनका परिणाम हमारे सामने है। हमारा देश तो जनपदो का देश है। पांच लाख बासठ हजार गांव आज समूचे देश में हैं। उनकी प्रतिष्ठा से देश की सम्पत्ति और अन्न के भडार की वृद्धि होगी। उसे अपार उत्साह के साथ प्रतिष्ठा देने के महत्त्व को जागृत करने का काम हमारे सामने है। धार्मिक-यज्ञ के समान उसे प्रतिष्ठित करने का भार आज देश के प्रत्येक नागरिक और समाज सेवा करने वाले भाइयों पर है।

74. सफला एकादशी

पौष कृष्णा एकादशी

इस एकादशी को सफला एकादशी कहते हैं। पौष मास के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। इसके आराध्य देव श्री नारायण हैं। जिस तरह नागों में वासुकी, पक्षियों में गरुड़, यज्ञों में अश्वमेध, नदियों में गंगा और पर्वतों में पर्वतराज हिमालय हैं, उसी तरह एकादशियों में सफला एका-दशी है। आज के दिन नारियल, आंवला, दाड़िम, सुपारी, लौंग और अगर आदि से भी नारायण की पूजा की जाती है। दीपदान और रात्रि-जागरण होता है। व्रत की महिमा तो इस ग्रंथ में यथेष्ट कही जा चुकी है। पाठक उसके महत्त्व को भली प्रकार समझ लें। यह जीवन खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए तो मिला नहीं है। जीवन का सही उप-योग तो दूसरों की हित-चिन्ता में कष्ट सहने से होता है। इसका रहस्य तो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में निहित है। इस एकादशी के व्रत की महिमा पर नीचे लिखी हुई कथा पुराणों में कही गई है।

महिष्मत नामक एक राजा की चम्पावती नामक पुरी थी। उस राजा के चार पुत्र थे। उनमें सबसे छोटा लड़का लुंपक बड़ा पापाचारी था। व्यभिचार, चोरी, जुआ और वेश्यागमन आदिक दोष उसके चरित्र में घर कर गए थे। अपने पिता से पाये हुए धन को वह इन्हीं सब कु-कर्मों में खर्च कर देता था। राजा ने उसके दुर्गुणों से अप्रसन्न होकर उसे अपने राज्य से निकाल दिया। तब वह जंगलों में भटकने लगा। परन्तु बुरी आदतें जब मनुष्य के चरित्र में जड़ पकड़ लेती हैं तब वह आसानी से दूर नहीं की जा सकती। इसलिए जंगलों में भूखे-प्यासे भट-कते रहने से भी उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। वह वहाँ रहते हुए चोरी या डकैती करता हुआ अपना जीवन बिताने लगा।

जंगलों में रहकर लूटमार करते हुए भी लुंपक को तीन दिन भूखे रहना पड़ा। तब क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल होकर उसने एक महात्मा की कुटिया पर छापा मारा। उस दिन सफला एकादशी का दिन था।

महात्मा की कुटी में तो केवल एक दिन का अन्न ही रहता था। उस दिन व्रत होने के कारण वहाँ कुछ भी नही था। परन्तु लुयक को देखकर महात्मा ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया और भोजन के अतिरिक्त जो कुछ थोड़े-बहुत कपड़े और पात्र उनके पास थे वह उसे दे दिए और कहा कि आपका स्वागत करने के लिए मुझ जैसे गरीब की झोंपड़ी में आज कुछ फल-फूल भी नही निकले, इसका मुझे दु ख है। अस्तु, जो कुछ मेरे पास है वह आपकी भेंट है।

महात्मा के ऐसे सद्‌व्यवहार से लुयंक की बुद्धि पलटी और उसने सोचा कि एक यह भी मनुष्य है जो अपने घर चोरी करने के लिए आये हुए चोर का भी स्वागत करता है और एक मैं हूँ जो ऐसे परोपकारी महात्मा के घर मे भी चोरी करने से नही चूकता। धिक्कार है ऐसे जीवन पर। राजा का पुत्र होकर भी मैं कितना नीच हो गया हूँ। यह सोचकर वह उन महात्मा के पैरो पर गिर पड़ा और स्वय अपने अपराधो की क्षमा मांगने लगा।

महात्मा ने उससे कहा—मैं एक ही शर्त पर तुम्हें क्षमा कर सकता वह यह कि तुम आज से मेरे पास रहा करो और जो कुछ मैं भिक्षा वृत्ति से लाऊँ उसी पर जीवन निर्वाह करते हुए अपने विचारो को ऊँचे आदर्शो से सुसज्जित करो। लुयक तो बे-घर-बार का आदमी था ही। उसने महात्मा की बात मान ली और वहाँ रहकर सदाचारमय जीवन बिताने लगा। धीरे-धीरे उसकी सारी दुष्प्रवृत्तियाँ बदल गईं। परन्तु वह अपने विचारो मे परिवर्तन लाने वाले दिन को न भूला। इसलिए महात्मा का उपदेश लेकर प्रत्येक एकादशी का व्रत करने लगा। कुछ दिनो बाद महात्मा ने भी उसे पूरी तरह से बदला हुआ जानकर अपना असली रूप उसके सामने प्रकट कर दिया। वह महात्मा और कोई नही स्वय उसके पिता महाराज महिष्मत थे। पुत्र को घर से निकालने के कारण उनकी आत्मा दुखी थी इसीलिए उन्होने बन मे महात्मा के रूप से अपने पुत्र की आदतो को सम्हालने का उपाय किया। दर असल डाँट-फटकार और ताड़न से किसी की आदतें नही बदली जा सकती। परन्तु प्यार, मुहब्बत और सद्‌गुणो के सहारे बुरे से बुरे आदमी का हृदय बदला जा

सकता है। यही इस कथा का रहस्य है। पुत्र को सद्गुणी बनाकर महाराज उसे अपने साथ लिए हुए राजधानी मे वापस आ गए और राज्य की जिम्मेदारी उसे सौंप दी। लोगो को भी उसके विचारो और आचरण मे परिवर्तन देखकर महान् आश्चर्य हुआ। और वे सब धीरे-धीरे महाराज महिष्मत से भी अधिक लुयक पर स्नेह करने लगे। आगे चलकर वही लडका एक चतुर और योग्य शासक बना और राज्य की जिम्मेदारियाँ सम्हालते हुए भी वह प्रत्येक एकादशी व्रत की महिमा अपने नागरिको को सुनाता और उन्हें साधन करने की ओर प्रवृत करता रहता। सफला एकादशी का व्रतोत्सव तो वह अपने जन्मोत्सव की तरह मनाता। तभी से इस एकादशी की महिमा इतनी बढी।

75. भोमवती अमावस्या

पौष अमावस्या

अपने चारो ओर पालतू जानवर ऐसे मनुष्यों की भीड देखकर हो सकता है कि आप को अपने अन्दर की दैवी शक्ति की चेतना न हो। लेकिन कोई न कोई क्षण तो अवश्य ऐसा आता ही है जब हम यह सोचने के लिए मजबूर होते हैं कि हमारी शक्ति के पीछे भी कोई महान् शक्ति है, जो सब मे एक जैसी है। कभी-कभी शान्त चित्त होकर अपने अतर मे गजने वाली उस ध्वनि को मौन होकर सुनिए और देखिए कि वह कितनी महान् है जो आपके अच्छे काम पर आपको अदर से शाबाशी देती है और आपकी कमजोरियो का नग्न चित्र आपके सामने उपस्थित कर देती है। वह ध्वनि हमारी आत्मा की है। दुनिया के झझावात मे वह सुन नही पडती परन्तु इस वाह्य दृश्यमान जगत् से आँखें मूंदकर बडी शान्ति के साथ मौन होकर आप उस आत्म सगीत की मधुर रागिनी को सुन सकेंगे। आज के नये दर्शन से आप उसी महा-

शक्ति या वरदान पा सकगे। प्रत्येक पक्ष की अमावस्या इस तरह मौन रहकर आत्म चिंतन के लिए निश्चित की गई है। भारतीय दर्शन ने आत्म चिंतन की अनेक विधियाँ मानव को प्रदान की हैं और उन दिनों या क्षणों को महा पर्व के रूप मे मनाने का आदेश समाज को दिया है। समाज भी उन्ह पाकर उपकृत हुआ है। उसन उन्हें दृढता से अपने भीतर आदर का स्थान दिया है।

मानव केवल अपने आप या अपने समाज की ही बात सोचकर रह जाय यह बात भारतीय संस्कृति को मान्य नही है। उसने उसके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का सुदृढ प्रयत्न किया है। इसीलिए मानव को मानवेतर सृष्टि से भी अपना सम्बन्ध स्थापित करने की प्ररणा दी है। अत प्रत्येक पक्ष के अत मे उस पाठ को दोहराते रहना चाहिए यही उसका क्रियात्मक उपाय है।

आज के दिन अश्वत्थ (पीपल)वृक्ष और विष्णु का पूजन करके 108 बार प्रदक्षिणा करनी चाहिए। प्रत्येक प्रदक्षिणा का फल शास्त्र म अलग अलग कहा गया है। हमारी मानवीय सृष्टि के सबसे बडे सगठक (Organisor) महर्षि वेदव्यास हैं। उन्होने मानव समाज की भाँति वृक्षो को भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार विभागो मे बाँटा है। बरगद पीपल आदि के वृक्षा मे एक महान गुण है। वह यह कि यदि किसी दूसरी जाति का बीज उनके शरीर पर पड जाय तो वे उसे अपने रसो का भाग देकर फलने फूलने का अवसर और अवकाश भी प्रदान करते है। अक्सर बरगद और पीपल के वृक्षो की छाती पर दूसरी जाति के पेड भी निकले हुए आपने देखे होगे। वे वृक्ष धरती का आसरा नही पाते। बर या पीपल की शाखें ही उनका आधार है। एव बरगद और पीपल के वृक्ष धरती माता से यथेष्ठ रस सिंचन करके उन्हें भी रस पहुँचाते रहते है। अपने इन्ही गुणो के कारण वे वृक्ष ब्राह्मण वर्ण के वृक्ष माने गए हैं जो स्वय तो फलते और फूलते हैं ही साथ ही अपनी छाती पर दूसरे उग आने वाले वृक्षो की अभिवृद्धि भी चाहते हैं।

फिर 108 प्रदक्षिणा का रहस्य तो और भी उत्कृष्ट है। 108 के अक को जरा गौर से देखिए। इसमे पहला अक है एक। बीच मे शून्य

और अत मे आठ। यह रूप किसी विशिष्ट सिद्धान्त की ओर सकेत करता है। हिंदू धर्म अनेक सिद्धान्तों की गगा के समान है। जिस तरह अनेक नदी नाल गगा मे मिलकर उसके रूप को वृहदाकार कर देते हैं, उसी तरह हिंदू धर्म भी अनेक सिद्धान्तों की वारिधारा को लेकर आगे बढता है। हमारे यहाँ अद्वैतवाद, द्वैतवाद, अंतवाद आदि अनेक वाद हैं। सभी वादो ने बडी-बडी दलीलो से जीव के कर्मो और उसकी गति का विवेचन किया है। छोटे-छोटे नदी नालो की तरह इन विचारो की धारा हिंदू धर्म की महान् जलधारा मे समय-समय पर आकर मिल गई हैं। हिंदू धर्म ने उन्हें आत्मसात् करके महानद का रूप ले लिया, यही इस धम की त्वरित गति है। इन सभी वादो मे कही पर एकात्मवाद और कही अनेकात्मवाद पर विचार हुआ है। परन्तु ब्रह्म, जीव और प्रकृति नामक तीन मौलिक तत्वो पर सबने विचार किया है। वही ब्रह्म एक अक है जिसे पूर्ण माना गया है यथा—

पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात्—वह पूर्ण है, उसी पूर्ण मे से पूर्ण का विकास हुआ है। उस पूर्ण मे से यदि पूर्णता को अलग कर दिया जाय तो भी उसकी पूर्णता अक्षुण्ण रहती है। यही उस तत्व का सार है।

मान लीजिए एक दो वर्ष का बालक है—कल को वह जवान या बूढा होता है। बचपन मे उसके छोटी छोटी सुन्दर दो आँखें, दो कान, दो हाथ और दो पैर तथा अवयव हैं। वह अपने आप मे पूर्ण है। कल को जवान होने पर उसके वही अग सबल और पुष्ट होते हैं। उस समय उसमे कुछ नए अग नही निकल आते वरन् वही पुराने अग अपनी पूर्णता मे विकसित होते हैं। यह सारी सृष्टि इसी तरह विकास क्रम का फल है। इसीलिए आगे किसी जीव तत्व की कल्पना शून्य के समान है। जीव का आकार अलग हो सकता है उससे पूर्णांक की कीमत बढ जाती है। मगर उसका स्वतन्त्र मूल्य कुछ नही है। इसी तथ्य को प्रकट करने वाला शून्य एक सौ आठ मे एक के पूर्णांक के बाद रखा गया है। वह प्रकृति तत्व है। गीता मे अष्टधा प्रकृति का लेख है—

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।
महकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार यह आठ प्रकृति माता के महत्तत्व हैं। सभी निराधार तत्त्वो को साकार रूप देने का काम भौतिक प्रकृति के इन आठ तत्त्वो के मेल से होता है। इसीलिए सगुण प्रकृति के अष्टधा महत्तत्त्वो को जोडकर 108 का एक अक शास्त्रकारों ने निर्धारण किया है। निर्गुण ब्रह्म अपने आप मे पूर्ण होता हुआ भी बिना अष्टधा प्रकृति के मेल के साकार नही हो सकता। अत निर्गुण और सगुण को सारी प्रक्रिया, समस्त दृश्यमान जगत् के मूल की कल्पना 108 के अक मे निहित मानी जाती है और जिन लोगों को हम साकार रूप मे ब्रह्म के समान पूज्य मानते है उनके नाम के आगे 108 का अक लिखकर इसी तथ्य की स्मृति जागृत करते हैं।

अमावस्या के उत्सव मे अश्वत्थ वृक्ष की 108 परिक्रमा का रहस्य भी इसी मे निहित है। पहले हम यह मानते रहे कि वृक्ष तो निर्जीव होते है परन्तु जगदीशचद्र वसु जैसे सुयोग्य विद्वानो ने जब युग को यह सुनाया कि वृक्षो मे भी प्राण होते हैं, उनमे चेतना होती हैं, वे सास लेते हैं, उनके भी अवयवो की प्रक्रिया का अपना ढग है, तब से हमे अपने प्राचीन शास्त्रो की मर्यादा का सस्मरण हो गया और उनकी छानबीन मे हमने बहुत कुछ पाया है। अमावस्या के इस पाक्षिक साधन पर आगे चलकर मौनी अमावस्या के प्रकरण मे अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा।

से परिपूर्ण एक तालाब के किनारे बैठे हुए कुछ वेदज्ञ ब्राह्मण बैठे हुए वेद पाठ कर रहे हैं। सुकेतु ने उनके पास पहुँचकर बड़ी श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया और चुपचाप एक ओर बैठकर उनके स्वर सहित पाठ का रस लेने लगा। पूजन समाप्त होने पर ब्राह्मणो ने उसका परिचय पूछा। सुकेतु ने अपने कुल आदि का परिचय देने के साथ साथ अपनी निराशा और वन मे आने का कारण उन्हें बता दिया। ब्राह्मणो ने उसे सुनकर सुकेतु को धैर्य बधाया। और पुत्रदा एकादशी का व्रत करने की विधि बताकर कहा कि इस अनुष्ठान को अपनी पत्नी समेत करने से तुम्हारे पापो का क्षय होगा और वशवृद्धि के लिए सुयोग्य तथा पर-उपकारी पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी।

सुकेतु व्रत की विधि का उपदेश लेकर ब्राह्मणो को प्रणाम करके अपने घर लौट गया और पत्नी समेत उस तरह के साधन को करने मे लग गया। कुछ दिनो बाद उसे एक सुयोग्य पुत्र रत्न का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसी ने इस एकादशी का नाम पुत्रदा रखा और तभी से इस व्रत की परम्परा हमारे समाज मे शुरु हुई।

77 सुभाष जयन्ती

पौष शुक्ला चतुर्दशी

पौष शुक्ला चतुर्दशी हमारे देश के परम भक्त नेता श्री सुभाषचद्र बोस की जन्मतिथि है। अगरेजो महीने की जनवरी मास की 12 तारीख के आसपास यह तिथि पडती है। सुभाष बाबू का जन्म सन् 1897 मे कटक जिले मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्री जानकीनाथ और माता का नाम प्रभावती देवी था। इनके बडे भाई का नाम श्री शरतचद्र बोस था।

सुभाष बाबू बचपन से ही एक प्रतिभावान बालक थे। कालेज की

शिक्षा बी० ए० तक प्राप्त करके आप इग्लैंड गए और वहाँ भी अपनी उदीयमान प्रतिभा के कारण बहुत ख्याति प्राप्त की। अपनी स्वदेश-भक्ति के कारण उन्होंने उच्च पद की नौकरी स्वीकार नहीं की। स्वदेश आकर उन्होने काग्रेस दल मे सम्मिलित होकर देश की आजादी की लडाई में बडी लगन के साथ भाग लिया और चालीस वर्ष की अवस्था मे उन्होने देश के लोगो का प्रेम जीत लिया। इसलिए काग्रेस ने उन्हें अपना प्रधान चुन लिया। देश के लिए उन्होंने कई बार जेल यात्राएँ की और बीमार रहकर भी देश की सेवा मे सदैव तत्पर रहे।

युद्ध के दिनो मे अग्रेजी सरकार ने सुभाष बाबू को अपने घर पर ही नजरबंद कर दिया। परन्तु 23, जनवरी 1941 को वह उस क़ैद से छूटकर भाग निकले। पहले वे काबुल की राह से यूरोप पहुचे। जर्मनी के तत्कालीन नेता हर्ट हिटलर से मिले, और भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने की योजना बनाई, जिसके आधार पर वह ब्रिटिश सेनाओ से भिड गए। कई स्थानो पर उन्हें विजय प्राप्त हुई। परन्तु अत मे राशन समय से न मिलने के कारण उनको अपनी बनाई हुई आजाद हिन्द फौज को शस्त्र डाल देने पडे। उस समय जापान जाते हुए उनके विमान मे आग लग गई और वह देश को विदशी शासकों के चगुल से बचाने की लगन लिए हुए वीरगति को प्राप्त हो गए और भारत को आज़ादी दिलाने वाले वीरो की कोटि मे उनका नाम अमर हो गया।

78 मकर संक्रान्ति

माघ कृष्णा प्रतिपदा

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

अर्थात्—सब प्राणी मेरी ओर अवैरभाव से (स्नेह भाव से) देखें। मैं सब प्राणियों की ओर स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। हम सब स्नेह की दृष्टि से देखें।

वेद के इन मंत्रो मे चारो ओर आपस के मेल-जोल और प्रेम की आशा तथा आकाक्षा व्यक्त की गई है। उसको क्रियात्मक रूप देने की इच्छा हमारे सबसे बडे सामूहिक स्नान पर्व के अवसर पर प्रतिवर्ष गंगा तट पर प्रयाग में दिखाई देती है। वहाँ देश के कोने-कोने से लोग आकर एकत्र होते है और पुण्यतोया भगवती गगा के रेत के बडे मैदान पर झोपडियाँ बनाकर एक महीने तक रहते हैं। गगा और यमुना जैसी दो बडी सरिताओं के सगम पर जहाँ भारतीय सस्कृति की सरस्वती गुप्त धारा के रूप मे मिलती है वहाँ लाखो की सख्या मे प्रतिवर्ष तीर्थयात्री एकत्र होते है। ब्रह्म मुहूर्त मे ही वे यात्री पितामह भीष्म जैसे बाल ब्रह्मचारी की माता गगा और यमराज की बहन श्री यमुना की जय बोलते हुए जाते है और स्नान से पवित्र होकर अक्षय-वट का पूजन एव क्षेत्र के देवता भगवान् वेणी माधव का दर्शन करके लौटते हैं। इतना बडा धार्मिक मेला कदाचित् ही ससार मे कही पर होता हो जिसमे एक साथ इतने बडे जन-समूह को धार्मिक प्रेरणाएँ प्राप्त करने का खुला अवसर मिलता हो।

मकर-सक्रमण यानी सूर्य जिस दिन मकर राशि मे प्रविष्ट हो, यह सूचित करता है कि प्रकाश की अधेरे पर और धूप की शीत पर विजय पाने की यात्रा आरम्भ हुई। आषाढ के महीने से रातें बडी हो रही थी। धूप या प्रकाश कम हो रहा था। वह सूर्य का दक्षिणायन काल था। किंतु आज से सूर्य का उत्तरायण काल आरम्भ होता है। दिन के परिमाण मे वृद्धि होनी शुरू हो गई। रात्रि काल की अधिकता घटने लगती है। सविता की किरणें अधिकाधिक फैलने लगती है। रात्रि मान कम होने लगा। बस यही मकर सक्रमण है।

यह पुनीत पर्व तो आपस के स्नेह और मिठास की वृद्धि का महोत्सव है। इसलिए आज के दिन लोग आपस मे एक-दूसरे को तिल-गुड देते हैं। तिल की उपज भी आजकल बहुत होती है इसलिए उसे स्नेह

किया जा सकता है। यह विधि भी ब्रह्माजी ने उन्हें बतला दी। देवताओं के गुरु बृहस्पति ने चन्द्रमा के पास जाकर वह विधि उन्हें बतलाई। चन्द्रमा ने उसी के अनुसार गणेश पूजा की। गणेशजी अपनी वंदना सुनकर चन्द्रमा पर प्रसन्न तो हो गए, परन्तु अपना पूरा श्राप उन्होंने वापस नहीं लिया, उसका प्रभाव सीमित कर दिया और चन्द्रमा से कहा कि केवल भादो मास की कृष्णा चतुर्थी को तुम्हारा दर्शन करने वाला कलंकित होगा। चन्द्रमा ने सिर झुकाकर श्राप स्वीकार कर लिया परन्तु उस तरह कलंकित होने वाले निरपराध व्यक्ति के उद्धार के बारे में प्रश्न किया। तब गणेश ने अपने पूजन से उसके कलंक को हरण करने का वचन दिया। तभी से भादो की कृष्णा चतुर्थी को विशेष रूप से गणपति की विशेष रूप से पूजा करने की प्रथा सारे देश में प्रचलित हो गई।

चंद्रलोक की यात्रा के लिए आज के युग में भी बड़े बड़े प्रयत्न हो रहे हैं और शायद हमारे रॉकेट आज भी उससे टकराकर वापस लौटते हैं तो चंद्रमा को हँसी ही आती होगी। इस दिशा में भारतीय विचक्षण भी प्रयास कर चुके हैं यही तथ्य उपरोक्त कथा में दिखाई देता है। हो सकता है कि आज का विज्ञान इससे कुछ आगे प्रगति करे और चंद्रलोक की यात्रा में सफलता प्राप्त कर ले परन्तु हमारे प्रयत्न तो वक्रतुण्ड होने की सीमा के ही द्योतक प्रतीत होते हैं। उपरोक्त कथा तो हमारी इस दिशा की प्रगति को केवल अलंकारिक रूप में वर्णन-मात्र करती है। उस महायात्रा की तिथि को एक उत्सव के रूप में अपनाकर समाज ने उसकी स्मृति कायम कर दी।

80 षटतिला एकादशी

माघ कृष्णा एकादशी

माघ मास के कृष्णपक्ष की एकादशी को षटतिला एकादशी कहते हैं। आज के दिन दया, व्रत और रात्रि जागरण का बड़ा माहात्म्य है। काली गाय और काले तिलों का दान आज के दिन बड़ा शुभ माना जाता है। अंगों में तिल के तेल का मदन, तिल पड़े हुए जल में स्नान, वैसे ही जल का पान और तिलों के बने हुए पदार्थों का भोजन करना बड़ा ही स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है।

देवर्षि नारद के प्रश्न पर श्री कृष्ण ने उन्हें इस पर्व का महात्म्य बतलाया है। वह कथा भविष्य-पुराण मे वर्णन की गई है। कथा बड़े महत्त्व की है यथा—एक ब्राह्मणी ने बहुत दिनों तक व्रत उपवास करके अपने शरीर को सुखा डाला। उसके तप से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् विष्णु भिक्षुक बनकर उसके दरवाजे पर आ पहुँचे और भिक्षा माँगी। ब्राह्मणी स्वभाव की जरा तेज थी। इसलिए उसने चिढ़कर एक मिट्टी का ढेला उनके खप्पर म डाल दिया। भिक्षा मे मिट्टी का ढेला लेकर ही भगवान् तो चले गए। बाद मे जब अपने शरीर को छोड़कर ब्राह्मणी वैकुण्ठ मे पहुँची तो उसे रहने के लिए मिट्टी का एक स्वच्छ और सुन्दर भवन दिया गया। किंतु उसमे खाने-पीने की कोई व्यवस्था नही थी। जिससे वह बड़ी दु खी हुई। तब उसने भगवान् से पूछा कि मैंने मृत्युलोक मे रहते हुए इतना कठिन साधन किया पर वैकुण्ठ मे आकर भी मुझे शान्ति क्यो नही मिली। विष्णु भगवान् बोले—'देवि! इसका कारण यहाँ रहने वाली देवियाँ ही तुम्हें बताएंगी। उन्ही से पूछो।" देवाङ्गनाओं ने ब्राह्मणी के पूछने पर उससे कहा— तुमने षटतिला एकादशी की उपेक्षा की है। जिस देश मे प्राणी का जन्म हो वहाँ की संस्कृति और भावनाओं की उपेक्षा करके जीव को स्वर्ग मे भी आराम नही मिला करता। इसलिए अपनी वह कमी तुम्हें यहाँ पूरी करनी होगी।"

ब्राह्मणी ने अपनी भूल स्वीकार कर ली और भारतीय संस्कृति की आस्था का पर्व स्वर्ग मे मनाकर दिव्य भोगो का लाभ प्राप्त किया।

81. मौनी अमावस्या

माघ अमावस्या

मन प्रसाद सौम्यत्व मौनमात्मविनिग्रह ।
भाव सशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥
—गी० अ० 17 श्लो० 16

"मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह और शुद्ध-भावना मन से होने वाले तप कहलाते हैं।"

मनुष्य की लोकप्रियता को काट डालने के लिए उसकी जुबान शायद पैनी छुरी का काम करती है। कम से कम अपने बारे में तो मनुष्य को थोड-से थोडा बोलना चाहिए। यद्यपि अपने बारे मे ज्यादह से ज्यादह चर्चा करना मनुष्य को स्वभावत अच्छा लगता है। इसके लिए वह दूसरो की रुचि अथवा अरुचि का ध्यान भी नही रखना चाहता। शेखी बघारना या आत्म निन्दा दोनो बातें आमतौर पर लोगो मे पाई जाती है। दोनो ही प्रवृत्तियाँ मनुष्य की लोकप्रियता को क्षीण करती है। लोग अनावश्यक रूप से बातचीत के सिलसिले मे अपनी चर्चा छेड देते हैं—वे क्या सोचते हैं, क्या करते हैं, क्या जानते हैं, इत्यादि। और बार-बार उन्हें दोहराते हुए भी नही थकते। वे ऐसी कहानियाँ कहते हैं या ऐसे चित्र उपस्थित करते हैं जिनमें उनकी ही प्रधानता हो अथवा अपने आदर की घटनाएँ पेश करते हैं। उन्ही के समान वे लोग भी हैं जो अपनी शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलताओं को इस रूप मे प्रकट करते हैं जिनके भीतर से उनके मन का छिपा हुआ मिथ्याभिमान झाँकता रहता है। याद रखिए असत्याचरण

बेईमानी का दूसरा रूप है। भला आपके परिवार की समस्याएँ—प्रेम और घृणा की चर्चा दूसरों को क्यों दिलचस्प होने लगी? बल्कि इस तरह की बातें करके हम अपने श्रोताओं की सहानुभूति भी खो बैठेंगे। कभी-कभी हम बिना जरूरत ही अपनी राय भी दे बैठते हैं। हो सकता है उस राय को आपने एक नीयत से ही दिया हो किंतु बिना मांगे सलाह देने वाले को लोग अच्छा नहीं समझते। हर आदमी अपनी कुछ राय रखता है। कुछ उसके काम करने के तरीके होते हैं। वह दूसरों की राय पसन्द नहीं करते। जब लोगों को आपकी राय की आवश्यकता होगी तब वे स्वयं आपसे राय मांगेंगे और यदि वे आपकी राय नहीं चाहते तो आप कृपया मौन रहिए। लुक-छिपकर हर बात की टोह लगाना, बीच-बीच में बोल पड़ना और अनावश्यक प्रश्न कर बैठना आदि दोष सभ्यता और संस्कृति के शत्रु हैं। दूसरों की भावनाओं, समस्याओं और विचारों में व्यर्थ की दखलन्दाजी अच्छी प्रवृत्ति नहीं हैं। इन दुर्गुणों से अपने आपको बचाना मानसिक तप कहलाता है। गीता के उपरोक्त श्लोक में इन्हीं बातों की चर्चा की गई है। मौनी अमावस्या के महात्म्य में भी इन्हीं दुर्गुणों से बचने का साधन करने की प्रेरणा दी गई है। मन में यदि दुर्बलताएँ भरी हुई हैं तो अभिमान आपको कभी ठीक राह पर नहीं जाने देगा। आप अपने आपको जब तक सबसे ऊंचा और अच्छा मानते रहेंगे तब तक मानसिक तप आपसे नहीं सधेगा। इस विषय की एक कथा पितामह भीष्म ने धर्मराज युधिष्ठिर को सुनाई थी जो इस प्रकार है—

कांचीपुरी में देवस्वामी नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम धनवती था। उसके सात पुत्र और एक कन्या थी। कन्या का नाम गुणवती था। देवस्वामी ने अपने सातों पुत्रों का विवाह कर दिया और कन्या के योग्य वर ढूंढने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र को भेजा। इसी बीच किसी ज्योतिषी ने कन्या की कुण्डली देखकर देवशर्मा से कहा—"सप्तपदी होते-होते गुणवती विधवा हो जाएगी।" देवशर्मा को यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसने अपनी कन्या के वैधव्य योग को हटाने का उपाय पूछा। ज्योतिषी ने कहा—"जब तुम्हारे

घर सोमा आवेगी तब उसका पूजन करने से यह वैधव्य योग दूर हो जाएगा।" देवशर्मा ने पूछा—"वह सोमा कौन है और कहाँ रहती है ?" दैवज्ञ ने कहा—"वह जाति की धोबिन है और सिंहलद्वीप में रहती है। अपने मधुर वचनों से उसे प्रसन्न करके तुम गुणवती के विवाह से पहले उसे यहाँ बुलवाने का प्रबन्ध करो।" यह सुनकर देवशर्मा के सबसे छोटे लडके ने बहन को साथ लेकर यात्रा की और समुद्र के तीर पर जा पहुँचे।

समुद्र पार करने की चिन्ता में दोनों भाई-बहन एक वट-वृक्ष की छाया में भूखे-प्यासे बैठे रहे। उस वृक्ष के तने मे एक गृद्ध की खोल थी, जिसमे उसके बच्चे सुख से बैठे हुए थे। वह दिन-भर इन भाई-बहन को देखते रहे। शाम को उन बच्चों की माँ आहार लेकर आई और बच्चों को खिलाने लगी। पर उन बच्चों ने भोजन नही किया एवं अपनी माता से कहा—"इस वृक्ष के नीचे दो प्राणी आज प्रातःकाल से भूखे और प्यासे बैठे हुए है। जब तक वे नही खाते हम लोग भी नही खाएँगे।" अपने बच्चों का यह सद्भाव देखकर गृद्ध माता दयार्द्र हो उठी। उसने अपने मेहमानों से कहा—"आप लोगों की इच्छा को मैंने जान लिया है, आप भोजन करें। जो भी फल-फूल इस वन में है वह मैं लाए देती हूँ और प्रातःकाल आप को समुद्र पार कराकर सिंहलद्वीप में सोमा के यहाँ पहुँचा दूँगी।" गृद्ध माता को बडी श्रद्धा से प्रणाम करके उन दोनों ने भोजन किया, और प्रातःकाल होने से पहले उसकी सहायता से सोमा के घर पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर उन्होने सोमा का यश सुना। पास के जगल मे एक फूंस की झोपडी में रहकर उन दोनों ने उसे अपनी सेवा से आकृष्ट करने का सकल्प किया। वे लोग नित्य प्रातः अँधेरे मुँह उठकर सोमा का घर झाडकर लीप दिया करते थे।

एक दिन सोमा ने अपनी बहुओं और बेटों से पूछा कि आजकल हमारे मकान को इतने अच्छे ढग से कौन लीपता है ? सबने कहा—"हमारे सिवाय और कौन यह काम करने हमारे घर में आएगा।" एक दिन रात को सोमा ने चुपचाप बैठकर सारा रहस्य जान लिया। यह सुनकर कि एक ब्राह्मण कन्या और उसका भाई उसके मकान की सफाई

करते हैं। उसको बड़ा कुतूहल हुआ। उसने उनसे इस तरह सेवा करने के कारण को पूछा। भाई ने उसका प्रश्न सुनकर कहा—"यह गुणवती मेरी बहन है। ज्योतिषियों ने सप्तपदी के बीच इसको वैधव्य योग बताया है, किंतु आपके होते हुए यदि यह संस्कार होगा तो इसका दु:खद योग दूर हो जायगा। इस कारण मैं तुम्हारे घर की सेवा करने का कार्य करता हूं।" सोमा ने कहा—'आज के बाद तुम यह काम नहीं करना। तुम लोगों ने अपनी साधना, मधुर वाणी और निष्काम सेवा से मुझे विवश कर दिया है। अब तुम्हारी सेवा किए बिना मुझे विश्राम नहीं मिल सकता। इसलिए मैं समय पर तुम्हारे घर अवश्य पहुँचूंगी। लड़के ने विह्वल होकर कहा—' माँ! तुमने हमारे जिस उपकार का आश्वासन दिया उससे हमें हमारी सेवा का पुरस्कार मिल गया। अब हमारी प्रार्थना यही है कि आप हमारे साथ चलकर बहन के विवाह को अपने सामने सम्पन्न करा दें।" सोमा ने साथ चलना स्वीकार कर लिया और अपनी बहुओं से कहा कि मेरे आने तक यदि यहाँ किसी की मृत्यु हो जाय तो उसके शरीर को नष्ट नहीं होने देना। बहुओं ने इसे स्वीकार कर लिया। इसके बाद सोमा पलक मारते ही दोनों मेहमानों के सहित काचीपुरी में पहुँच गई।

दूसरे दिन गुणवती के विवाह की व्यवस्था हो गई। परन्तु सप्तपदी होते-होते उसके पति की मृत्यु हो गई। सोमा ने तुरन्त अपने संचित पुण्य का फल गुणवती को दान कर दिया, जिसके प्रभाव से उसका पति पुन जीवित होकर उठ बैठा। सोमा आशीर्वाद देकर अपने घर चली गई।

संचित पुण्य का दान कर देने से सोमा के पुत्र, जामाता और पति की घर में मृत्यु हो गई। सोमा नवीन पुण्य का संचय करने के लिए एक जगह राह में ठहरी और उसने एक नदी के तीर पर स्थित एक अश्वत्थ वृक्ष की छाया में भगवान् विष्णु का पूजन करके 108 परिक्रमाएँ की, जिसके पूर्ण होते-होते पुत्र, जामातृ और पति जीवित हो गए और उसका घर धन धान्य से भर गया। मीठे वचन, अभिमान-हीनता और छोटे-बड़े का भेद भुलाकर सबकी सेवा करने का फल

बड़ा ही मधुर होता है, यही मौनी अमावस्या का सदेश है। मौन का अर्थ है बिना किसी दिखावे के सेवा करना।

82 वनायकी चतुर्थी

माघ शुक्ला चतुर्थी

आज के दिन प्रात काल सफेद तिलो का उबटन करके स्नान करने के बाद मध्याह्न मे गणेश पूजन करने का बड़ा महात्म्य माना जाता है। इसकी कथा कहते हुए एक बार नदिकेश्वर ने सनत्कुमारो से कहा—एक समय चौथ के चन्द्रमा का दर्शन करने से श्री कृष्ण पर चोरी का कलक लग गया था। वह इसी गणेश व्रत के करने से दूर हुआ। गणेश का पूजन और व्रत मनुष्य की कीर्ति को उज्ज्वल करता है।

83 वसन्त पंचमी

माघ शुक्ला पचमी

यह उत्सव ऋतुराज वसन्त के आरम्भ का है। भारत के कवियो ने ऋतु की महिमा का गान करने मे अपनी वाणी को पवित्र किया है। सस्कृत साहित्य इसके सौरभ से सुवासित हो रहा है। वसन्त का अर्थ है—पक्षियो का कलरव, आम्र मजरी की सुगन्धि, शुभ्र अभ्रो की विविधता और चचल पवन की स्निग्धता। आज के दिन से होली और धमार का गाना आरम्भ होता है। जौ और गेहूँ की बालें इत्यादि भगवान को अर्पण की जाती हैं। "माघ मासे सिते पक्षे पचम्याम पूजयेद्धरिम।" माँ शारदा और वंदिकों के पूजन का भी यही दिन है। ब्रजभूमि का तो यह महान् उत्सव ही है।

के मर्म या ज्ञान प्राप्त करने के लिए माँ शारदा का आराधन और पूजन किया जाता है। किन्तु जिस दिन को इस उत्सव के लिए निश्चय किया गया है उस दिन अच्छा खासा जाड़ा पड़ता है और वजाय विराग के तेज बहने वाली हवा के जोर से पतझड़ का आरम्भ होता है। दरअसल जिसे वसन्त ऋतु कहा जाता है वह चान्द्र चैत्र मास से अथवा सूर्य के मेष राशि पर प्रवेश करने पर आरम्भ होता है। अतः आज के दिन वसन्तोत्सव मनाना साधारणतया समझ में नहीं आता। फिर भी वसन्त के आरम्भ का कारण यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक ऋतु का चालीस दिन का गर्भकाल होता है और यह दिन वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से (जो चन्द्र मास के हिसाब से वसन्त के आरम्भ का दिन है) पूरे 40 दिन पूर्व पड़ता है। वैसे यह जरूर दिखाई पड़ता है कि वसन्त का कुसुमाकरत्व आज के दिन के आसपास शुरू हो जाता है। आमों मे बौर आ जाते हैं, गुलाब और मालती आदि पुष्प खिलने लगते हैं। भौंरो की गुञ्जार और कोकिल की आम्र वृक्षों पर कुहुरव सुनाई पड़ने लगती है। जो और गेहूँ मे बालें आने लगती हैं। इसलिए उसको वसन्तोत्सव के रूप मे मनाया जाना सार्थक ही है।

वसन्त ऋतु मे प्रकृति प्रमोद से भरी हुई दीख पड़ती है। सभी वृक्षो मे नवीन कोपलें आने लगती हैं। न बहुत जाड़ा होता है और न अधिक गरमी। चरक संहिता मे कहा गया है कि इस ऋतु मे कामिनी और कानन मे अपने आप यौवन फूट पड़ता है। "वसतेऽभ्युभवेन स्त्रीणा काननानाम् च यौवनम्।' इसलिए होली और धमार आदि हर्षोल्लास की संगीत लहरी गूंज पड़ती है।

वेदाध्ययन के आरम्भ का भी यही प्रधान समय है। वेद मे कहा गया है—"वसन्ते ब्राह्मणमुपनीयात्।" आनन्द कन्द भगवान् श्रीकृष्ण तो इस उत्सव के साक्षात् अधिदेवता ही हैं। उनका पूजन और श्री राधा-माधव के आनन्द-विनोद का उत्सव व्रजभूमि मे इस अवसर पर खास तौर से मनाया जाता है। भगवान् का आराधन तो हर समय मंगलकारी है किन्तु नवीन उल्लास और विशेषता जो प्रकृति के विकास का काल है उस अवसर पर उनका आराधन तो और भी

मगल करने वाला होता है। इसलिए आज के दिन विशेष रूप से सगीत गोष्ठी आदि करके भगवान् का गुण-गान करना चाहिए।

84 भीष्माष्टमी

माघ शुक्ला अष्टमी

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय मे कहा गया है कि—

अग्निर्ज्योतिरह शुक्ल षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जना ॥24॥

अर्थात्—अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छ मास मे शरीर छोडने वाले ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म को पाते हैं (लौटकर नही आते)।

कर्मयोगियो को मृत्यु के बाद भिन्न-भिन्न लोको मे भिन्न-भिन्न मार्गो से जाना पडता है। इन मार्गो को पितृयान और देवयान कहते हैं। एक प्रकाशमय है और दूसरा अधकारमय। एक से जाने पर पुनर्जन्म लेकर आना नही पडता और दूसरे से जाने पर यह माना जाता है कि कर्म पूरे होने मे कुछ कसर है। इसलिए पुन इस ससार मे जन्म लेना पडता है। ब्रह्म को जानने वाले लोगो की यह दो ही गतियां गीता मे मानी गई हैं। इन दोनो गतियो का यदि विस्तृत विवेचन किया जाय तो एक ग्रथ ही अलग बन जाय। परन्तु इतना लिखने का अवकाश इस ग्रथ मे नही हो सकता, फिर भी सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि कर्मयोगी मृत्यु पर भी विजयी होता है और उसके इस ससार से जाने का समय निश्चित है। बिना उस काल के आए वह शरीर का त्याग नही करता। यह बात आज की तिथि स्मरण कराती है। क्योकि महाभारत के युद्ध काल मे दसवें दिन की लडाई मे बाल ब्रह्मचारी पितामह भीष्म अर्जुन के बाणो से घायल

होकर शर शैय्या पर गिरे। उस समय युद्ध बद करके कौरव और पाण्डव उनका अन्तिम दर्शन करने के लिए पहुँचे। उस समय उन्होंने कहा कि अभी सूर्य का दक्षिणायन काल है। इसलिए मेरे मरने में अभी कुछ दिन का समय शेष है। सूय के उत्तरायण होने पर मैं शरीर छोड़ूँगा। जिस तिथि को उन्होंने शरीर परित्याग किया, वह यही माघ शुक्ला अष्टमी है जो सूर्य के उत्तरायण काल म पडती है।

पितामह भीष्म इस देश के रत्न थे। उन्होंने अपन चरित्र से वह पद प्राप्त किया था जो किसी को मिलना दुलभ है। वे सागर की तरह गम्भीर, हिमालय की तरह अटल और अनन्त आकाश की भांति शान्त और निमल थे। महाभारत मे तो उनका स्थान सवश्रेष्ठ था जिनके मान की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण तक ने अपना प्रण भग कर दिया था।

अपने यौवन काल म उन्होंने स्त्री का त्याग करने का दृढ सकल्प किया था। इस कठोर व्रत के पालन से उनकी कीर्ति अमर हो गई। यद्यपि उन्होंने राज्य भी अस्वीकार कर दिया था परन्तु परिस्थितियो ने उन्हें उसका भार सम्भालने के लिए विवश कर दिया। तो भी एक आदश मन्त्री के रूप म भारतीय इतिहास न उनकी महिमा का बखान किया है। ब्रह्मचय व्रत पालन की तो वे सजीव साधना ही हैं। उसी के बल पर वे परम ज्ञानी परम समथ और धमनिष्ठ बने। बल्कि इच्छा मृत्यु वाले भी बन गए। उनकी जसी वधानिक वृत्ति (Constitutionalist) तो कदाचित ही किसी दूसरी जगह देखने को मिले। महाभारत का शान्ति पव उनका वह महान् सदेश है जो अपनी मृत्यु शैय्या पर पड पड उन्होंने दिया था। उसम उन्होंने धमराज युधिष्ठिर से कहा— 'सत्य क लिए निरन्तर प्रयत्न करो। सत्य ही सबसे श्रेष्ठ बल है। सदव अपने मन पर अधिकार रखकर दया भाव को अपनाओ। दुष्ट वृत्तियो के अधीन मत हो। जनता को ज्ञान और शिक्षा देने वाले वग का शोषण मत करो। धम की प्ररणा के अनुसार चलो और सदा अपनी शक्तियो का विकास करते रहो।' आज के युग मे इससे बढकर दूसरा कौन सा उपदेश हो सकता है?

आज के दिन उन्हीं भीष्म का पावन चरित्र सुनना और सुनाना

चाहिए। खासतौर पर विद्यार्थियों को उनके चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और उसके साथ-साथ उन्ही जैसे दूसरे ब्रह्मचारियों की जीवनी पर विचार करना चाहिए। रामकृष्ण परमहस, शारदादेवी, महात्मा ईसा, शुकदेव, हनुमान, लक्ष्मण और समर्थ गुरु रामदास आदि अनेक महापुरुष इस चरित्र के महान् अवलब हैं। उनकी जीवनियाँ अनत प्रेरणाओ की स्रोत हैं। उन्हें समझकर अपने आचरण मे लाने का सकल्प करना चाहिए।

85. जया एकादशी

माघ शुक्ला एकादशी

माल्यवान नामक किसी गधर्व से असतुष्ट होकर देवराज इन्द्र ने उसे पत्नी समेत पिशाच बनने का श्राप दे दिया। वे दोनो गधर्व से पिशाच हो गए और दुष्कर्म मे रत होकर विचरने लगे। किंतु ऋषियो के सदुपदेश से उन्होंने जया एकादशी का व्रत करके पिशाच योनि से छुटकारा पाया और पुन गधर्व बन गए। जो मनुष्य आज के दिन व्रत उपवास करके विश्वपालक भगवान् विष्णु का श्रद्धा से पूजन करते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। यही इस एकादशी का महात्म्य है। यह कथा पद्म पुराण मे इसी विश्वास के साथ लिखी गई है।

86 माघ स्नान समाप्ति

माघ पूर्णिमा

यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

—गीता अ० 18 श्लोक 5

पूरे मास भर त्रिवेणी स्नान करने के बाद प्रयाग के कल्पवास या माघ स्नान का यह अन्तिम दिन है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए

कि यह उत्सव केवल मेला लगाने की वस्तु नहीं है। इन पुण्य पर्वों पर वही कार्य होने चाहिएँ जिनका वर्णन गीता के उपरोक्त श्लोक में किया गया है। यज्ञ, दान, तप यही तीनों साधन भारतीय व्रत उत्सवों के प्राण हैं। इन्हीं से मानव जीवन पवित्र होता है। इन क्रियाओं के साथ समाज के जीवन का सामञ्जस्य ही भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत किये जाने वाले समस्त काम यज्ञ, दान अथवा तप के साँचे में ढले हुए हैं। उनमें इन्हीं तीनों भावों का समावेश होता है। यहाँ इन तीनों के महत्त्व और उपयोग पर प्रकाश डालना युक्तिसंगत होगा।

'यज्ञ' शब्द के अर्थ "यज् देव पूजा संगतिकरण दानेषु।" इस धातु पाठीय विवरण से सिद्ध है कि—देव पूजा, देव संगतिकरण और दान। व्याकरण के अनुसार यही इस शब्द का अर्थ है। अब विचार यह करना चाहिए कि यह पूजा, देवसंगतिकरण और दान हैं क्या एवं कैसे करने चाहिएँ?

असल में तो यह तीनों ही दान हैं। एक अनपेक्षित दान का नाम ही पूजा है। क्योंकि पूज्य की पूजा उसकी जरूरत देखकर नहीं की जाती वरन् अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए की जाती है। किसी नई वस्तु को पैदा करने के विचार से जब एक-दूसरे की अपेक्षा रखकर दो तत्त्वों को परस्पर मिला दिया जाता है तब उसे संगतिकरण कहते हैं और लेने वाले की जरूरत देखकर जो दिया जाता है उसे दान कहते हैं।

उदाहरण के लिए ब्रह्म यज्ञ (वेदाध्ययन) को लीजिए। उसे देखकर यही लगता है कि गुरु शिष्य को उसकी रुचि का ज्ञान दे रहा है। मगर वहाँ उपरोक्त तीनों बातें आपको मिलेंगी। शिष्य द्वारा गुरु की सेवा—यह पूजा है। गुरु का शिष्य को पढ़ाना—यह दान है और गुरु के साथ अनेक प्रश्न करके विषय को हृदयंगम करना संगतिकरण है। गीता में वर्णन किये गए अनेक यज्ञों का रहस्य समझने की यही एक तालिका है। यह न समझ पाने से यज्ञ को केवल आहुति को यज्ञाग्नि में झोंकने के समान मानना चाहिए।

'यज्ञ' एक रासायनिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कुछ वस्तुओं के मेल से अन्य अभीष्ट फलों की प्राप्ति होती है। यज्ञ तो बड़ा व्यापक शब्द

है। जिन तत्वो की जहाँ कमी होती है उन्हे पूरा करने का कार्य यज्ञो के द्वारा होता है। गीता मे यह भी कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ मे प्रजापति ने प्रजा के साथ यज्ञ को उत्पन्न करके उनसे कहा कि— इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो, यह तुम्हारी कामधेनु होवे, तुम इससे देवताओ को सतुष्ट करो और वे देवता तुम्हें सतुष्ट करते रहें। इस तरह आपस मे एक-दूसरे को सतुष्ट करते हुए दोनो परम कल्याण प्राप्त कर लो। यही यज्ञ की यथार्थ धारणा है।

'तप' शरीर, वाणी और मन से किए जाने वाले तपो का वर्णन गीता के सत्रहवें अध्याय मे किया गया है। यथा—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजन शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीर तप उच्यते ॥14॥
अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसन नैव वाङ्मय तप उच्यते ॥15॥
मन प्रसाद सौम्यत्व मौनमात्मविनिग्रह।
भाव सशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥16॥

अर्थात्—देवताओ, विद्वानो, गुरुओ और द्विजो की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को कायिक—शरीर से होने वाला तप कहते है। ऐसी बात कहना जिससे कभी किसी दूसरे के मन को तकलीफ न हो, प्रिय, सत्य और हितकारी शब्द कहना, सत्य शास्त्रो को पढाना एव पढना वाणी से होने वाले तप हैं। तथा मन को हमेशा प्रसन्न रखना, सौम्य होना, मौन धारण करना, मन को वश मे करना और अपनी भावनाओ एव विचारो को पवित्र रखना यह मन से होने वाले तप हैं। इन तीनो तरह के तपो को यदि फल की आकाक्षा से रहित होकर श्रद्धा के साथ योग युक्त होकर किया जावे तो वह सात्विक तप कहा जाता है। जो तप पाखड के रूप मे या लोगो मे केवल अपना मान और प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए किया जाता है वह राजसिक तप है। और यही तप यदि खुद कष्ट उठाकर दूसरो को कष्ट पहुँचाने के लिए किए जावें, उन्हें तामसिक तप कहा जाता है। यही दशा दान की भी है। गीता मे उनका वर्णन भी बहुत सुन्दर हुआ है। जो कर्तव्य बुद्धि से,

देश, काल और पात्र का विचार करके अपने ऊपर किसी उपकार न करने वाले को दिया जाय वही सात्विक दान है। परन्तु किसी उपकार करने वाले का बदला चुकाने के लिए, किसी फल की आशा से, मन में दुःख मानकर दिया जावे वह राजसी दान है और बिना देश, काल एवं पात्र का विचार किये हुए अपमान या अवहेलना के भाव से दिया जावे वह तामसिक दान है।

धार्मिक पर्वो मे भाग लेने वाले लोगो के लिए गीता का यह चरित्र-कोष (Code of Conduct) बड़े महत्त्व का है। बिना इन गुणों को प्राप्त किए कल्पवास में रहना कवल कष्ट देने वाला ही लगेगा। इस-लिए गगा माता के पवित्र तट पर रहते हुए इन्ही तीनों बातों का अभ्यास करने से कल्पवास का पुनीत फल मिलता है। और मन तथा आत्मा को शान्ति मिलती है।

87 विजया एकादशी

फाल्गुण कृष्णा एकादशी

स्कध पुराण मे फाल्गुण कृष्णा एकादशी का महात्म्य इन शब्दो मे वर्णन किया गया है कि—लका पर आक्रमण करने के विचार से जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम अपनी रीछ-वानरो की सेना लेकर समुद्र के तीर पर पहुँचे तो सामने अपार सागर को देखकर उनके चित्त मे यह शका पैदा हो गई कि इस अगाध समुद्र को कैसे पार किया जायगा। वीरवर लक्ष्मणजी ने उन्हें आस-पास बसने वाले ऋषि-महात्माओ से परामर्श करने का सुझाव दिया। श्री राम ने यह सलाह मानकर समुद्र तट पर निवास करने वाले तपस्वी महात्माओ के आश्रमो मे जाकर समुद्र लघन का उपाय पूछा। उस समय उन महात्माओ न कहा—"श्री राम! हम लोग जानते हैं कि तुम्हारे पास एक सागर तो

क्या अनन्त सागरों को पार करने वाली महाशक्ति है फिर भी हम लोगों का सम्मान रखने के विचार से हम से समुद्र लंघन का उपाय पूछा है। हम तपस्वी लोग तो हर अच्छे कार्य को करने के समय व्रत-उत्सवों के द्वारा ही उन्हें आरम्भ करते हैं। वही हम आपको भी बता सकते हैं। उससे आपका मंगल होगा। वह व्रत है फाल्गुण कृष्णा एकादशी। इस दिन एक मिट्टी का कलस (घड़ा) लेकर उसके ऊपर पीपल, वट, गूलर, आम और पाकर यह पंच पल्लव रखें। घड़े के नीचे सातों नाज और ऊपर एक मिट्टी के पात्र में जौ भरकर रखें। उसके ऊपर इस सृष्टि का पालन करने वाले लक्ष्मी और नारायण की मूर्ति स्थापित करके नियमपूर्वक श्रद्धा से पूजन करें। रात्रि पर जागरण करके भगवान् का स्मरण कीर्तन करें। द्वादशी को प्रातः घड़े को जल सहित समुद्र को अर्पण कर दें और मूर्ति किसी वेदपाठी विद्वान को भेंट कर दें। इस व्रत के करने से तुम्हें समुद्र ही क्या स्वयं राक्षसराज रावण तक पर विजय प्राप्त होगी। राम ने ऋषियों की आज्ञा का पालन करके समुद्र और रावण दोनों पर विजय पाई। उन्होंने इस व्रत को प्रचलित किया।

88. महाशिवरात्रि

फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी

चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुणे शिव पूजनम्।
तामुपोष्य प्रयत्नेन विषयान् परिवर्जयेत॥

—शिव रहस्य

यह व्रत फाल्गुण कृष्ण चतुर्दशी को किया जाता है। चतुर्दशी के स्वामी भगवान् शंकर हैं अतः इसी रात्रि को व्रत करने के कारण इसे महाशिवरात्रि कहते हैं।

वैसे तो प्रत्येक मास को शिवरात्रि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को होती

वाले फणि लोग, धर्मराज का कुत्ता, मनु और मत्स्य, राम के सेतुबंध मे सहायक गिलहरी इत्यादि अनेक उदाहरणो मे पशुओ और मानव की समता के भाव गुंथे हुए है। तब शैव और वैष्णवो का विवाद क्या उपहास की बात नही होगी ?

आधुनिक युग के महान लेखक कविवर गोस्वामी तुलसीदासजी का प्रयत्न तो और भी महत्त्व का है। उन्होने जहाँ अपने रामचरित मानस ग्रंथ को जन-जन की भाषा मे लिखकर एक महान धर्म ग्रंथ का सृजन किया है वहाँ शिव और विष्णु के भेद को हटाने का एक भगीरथ प्रयत्न भी किया है। और यहाँ तक लिखा है कि—

शिव द्रोही मम दास ॥
सो नर करिहँहि कल्पपरि घोर नरक मँह वास ॥

अब जरा शिवरात्रि की कथा पर भी ध्यान दें। वह कथा पुराणो में इस प्रकार है कि एक सघन वन मे एक सुन्दर जलाशय था, जिसके किनारे पर एक बेल का पेड था। उसकी जड मे भगवान् शंकर की एक पाषाण प्रतिमा सुशोभित थी। उस जंगल के हिरण रोज उस तालाब मे पानी पीने जाते और जल पीकर उस बेल की छाया मे बैठकर विश्राम करते। एक दिन एक व्याध उस स्थान पर आया। उसे अपने बाल-बच्चो का पेट भरने के लिए कुछ पशुओ का माँस लेना था। इसलिए वह बेल के पेड पर चढ-कर बैठ गया और हिरणो के आने की प्रतिक्षा करने लगा। रात हुई। इतने मे दो चार हिरण आए। व्याध ने उन्हे देखकर अपने धनुष पर बाण चढाया। व्याध के चढे हुए बाण को देखकर उनमे से एक हिरण ने व्याध से कहा—"हे व्याध ! आप बाण न चढाएँ हम आपकी सेवा के लिए तैयार हैं परन्तु आप यदि हमे इतना अवकाश दे दें कि हम एक बार अपने बच्चो को देख आएँ तो हम लोग स्वयं यहाँ आकर आपको आत्म समर्पण कर देंगे।"

व्याध यह सुनकर हँसा और बोला—"क्या हाथ मे आये हुए शिकार को छोड देना बुद्धिमानी है। मेरे बाल बच्चे भी तो भूख से तडप रहे हैं।" हिरणो ने कहा—"जिस तरह तुम्हें अपने बच्चो की याद सता रही है

महाशिवरात्रि के व्रत का परिणाम है। उसने मृत्यु के उपरान्त शिवलोक की प्राप्ति की।

89 अविघ्नकर व्रत

फाल्गुण शुक्ला चतुर्थी

फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गणेशजी का शास्त्र की विधि से पूजन किया जाता है। किसी बड़े काम को निर्विघ्न पूरा करने के विचार से यह व्रत किया जाता है, इसीलिए इसे अविघ्नकर कहते है। वाराह पुराण के मतानुसार इस व्रत को अपने अश्वमेध यज्ञ को पूरा करने के लिए महाराज सागर ने, त्रिपुरासुर से युद्ध करने के समय भगवान् शकर और समुद्र मथन को निर्विघ्न पूरा करने के विचार से स्वय नारायण ने किया था। इस व्रत मे आज के दिन मगलमूर्ति गजानन का गध आदि से पूजन करे। तिलो से बने हुए पदार्थों का भोग लगाएँ, तिलो का हवन कर और ताबे के पात्रो मे तिल भरकर योग्य पात्रो को दान करें। इससे विघ्न-बाधाओ का शमन होता है।

90 सीता अष्टमी

फाल्गुण शुक्ला अष्टमी

यह व्रत सती शिरोमणि महारानी जानकीजी के पूजन का है। ससार की महिलाओ मे उनका स्थान सर्व श्रेष्ठ है। उन्होंने विवाह के बाद जिस तत्परता से अपने पति श्री राम की सेवा की है वह भारतीय इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो से अकित है। उनके पवित्र चरित्र और उनके

नाम को स्मरण करते ही पतिव्रत धर्म का महात्म्य सजग हो उठता है। हिन्दू समाज मे प्रत्येक महिला के हृदय पर उनका प्रभाव है। वे सब उनसे प्रेरणा प्राप्त करती है। लका विजय के बाद भी जब एक धोबी के कहने से लोकरजन का व्रत लेने वाले श्री राम ने उन्हें अपने से दूर कर दिया, उस समय महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे रहकर उन्होंने लव और कुश नामक दो बालको को जन्म दिया। वे बालक श्री राम के समान ही यशस्वी और प्रतापी थे। उन्होंने अपनी बालसुलभ क्रीडा मे आकर श्री राम के यज्ञाश्व को पकड लिया, और श्री राम की अश्वरक्षक सेना पर उन बालको ने विजय पाई। यहाँ तक कि स्वय श्री राम को भी उन्होंने परास्त हो कर दिया। जिस समय जानकीजी को यह मालूम पडा उस समय धरती फट गई और पतिव्रत धर्म की वह मूर्तिमती निर्मल गगा उसमे समा गई और आने वाले युगो के लिए अपनी अमर कहानी छोड गई। उस दिन से घर-घर मे उनकी पूजा हुई।

आज का त्यौहार उन्ही मातेश्वरी की स्मृति को सजग रखने के लिए प्रत्येक भारतीय महिला बडी श्रद्धा और आदर के साथ मनाती है। यह त्यौहार विशेष रूप से महिलाओ का त्यौहार माना जाता है।

आज के दिन चौकी पर लाल वस्त्र बिछाकर चावलो का अष्ट-दल कमल बनाया जाता है और जानकीजी की प्रतिमा रखकर उसी का पूजन किया जाता है। एक हजार दीये जलाए जाते हैं। यही इस पूजन की रीति है।

91 आम्लकी एकादशी

फाल्गुण शुक्ला एकादशी

फाल्गुणे मासे शुक्लायामेकादश्या जनार्दन ।
वसत्यामलकी वृक्षे लक्ष्म्या सह जगत्पति ।।

फाल्गुण महीने की शुक्ला एकादशी को आम्लकी एकादशी कहते है। इस दिन आँवले के वृक्ष के पास बैठकर भगवान का पूजन किया जाता है। इसके सम्बन्ध की कथा ब्रह्माण्ड पुराण मे यह दी गई है कि वैदेशिक नगर मे चैत्ररथ राजा के यहाँ एकादशी व्रत का अत्यधिक प्रचार था। एक बार फाल्गुण शुक्ला एकादशी के दिन नगर के सम्पूर्ण नर-नारियो को व्रत-महोत्सव मे मग्न देखकर एक व्याध कौतूहलवश वहाँ जाकर बैठ गया और भूखा प्यासा दूसरे दिन तक वहीं बैठा रहा। परन्तु अनजाने मे व्रत और जागरण हो जाने का फल यह हुआ कि दूसरे जन्म मे वह जयन्ती का राजा हुआ। इस थोड़े और धोखे से हो जाने वाले शुभ कर्म अथवा सगति का प्रभाव इस कथा से स्पष्ट होता है। इसीलिए एक सत का कथन है कि—

एक घड़ी आधी घड़ी आधी की पुनि आध।
तुलसी सगति साधु की—कटै कोटि अपराध।।

92. होलिका दहन

फाल्गुण पूर्णिमा

होली हमारा प्राचीनतम त्यौहार है। आज के दिन छोटे बड़, ऊँच नीच के विचार को छोड़कर रगोत्सव मनाया जाता है। दूसरे शब्दों मे हम उसे दूसरा वसतोत्सव कह सकते है। जाड़ा खत्म हुआ,

वसंत का विकास छोटी-से-छोटी वनस्पति तक को नया जीवन दे गया। पतझड़ को जमा की हुई पत्तियों और वृक्षों की सूखी डालियों को जमा करके अंतिम संस्कार कर देने का यह महापर्व है। सर्दी के गर्म कपड़े बक्स में रखकर हल्के परिधान से मानव-शरीर परिष्कृत होता है। इसी तरह मोटी और दबाकर रखने वाली भावनाओं को अलग करके नवीनता और कोमलता को धारण करने का संकेत प्रकृति माता की ओर से मिल रहा है। आज भी यदि इस संकेत को हम न समझ पाएँ तो होली का त्योहार ही व्यर्थ गया।

किन्तु इतने अच्छे महोत्सव की जो छीछालेदर हमने कर डाली है वैसी दुर्दशा शायद ही किसी देश के लोगों ने अपने त्योहारों की बनाई हो। आज तो आमतौर पर संयम की लगाम ढीली छोड़ दी जाती है। उसके स्थान पर लोगों में स्वच्छंदता का बोलबाला होता है। इस स्वच्छंदता की सनक में लोग इतने नीचे उतर आते हैं कि बेहूदा गालियाँ और कुरुचिपूर्ण गाने गाते हुए निर्लज्जता की सीमा लाँघ जाते हैं। और जहाँ आपस के प्रेम में एक-दूसरे के गले लगकर लोगों के मुख को अबीर और गुलाल लगाकर लाल करना चाहिए वहाँ कीचड़ उछालते हुए और ग़लाजत फेंकते हुए लोग दिखाई देते हैं। आज तो सभ्यता के विकास का युग है। हर दिशा में नई प्रगति हो रही है। तब इस त्योहार का यदि यही रूप बना रहा जो आज है तो शर्म से हमारी गरदनें नीचे ही झुकी रहेंगी।

असल में होली तो 'नवान्नेष्टि' यज्ञ है। बच्चों को नए से नए खेल-खिलौने चाहिएँ और व्रत करने वाले को स्वयं भी उसमें भाग लेना चाहिए। स्मरण रखें कि जिस तरह यज्ञ-याग आदि कर्मों से हमारी विचार-धारा संतुष्ट होती है उसी तरह बच्चों को हिलमिलकर खेल-कूद करने का अवकाश देने से उनके स्वास्थ्य की पुष्टि होती है। यह एक आवश्यक सामाजिक कर्तव्य है जिसके बिना हमारा राष्ट्रीय जीवन हराभरा नहीं रह सकेगा।

पौराणिक युग की एक कथा ने तो इस त्योहार को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। वह कथा एक बालक के आत्मविश्वास पर लिखी

गई है। उस बालक का नाम प्रह्लाद है। उसकी बुआ का नाम होलिका था। उसमे यह गुण था कि वह आग मे बैठकर भी जलती नही थी। अपने भाई के कहने से वह होलिका बालक प्रह्लाद को लेकर आज के दिन आग में बैठी थी। परन्तु वह स्वय जलकर राख हो गई पर प्रह्लाद जीवित निकल आए। उन्हें आग न जला सकी। उल्टे उसका पिता हिरण्यकशिपु ही मारा गया। इसी अवसर पर नवीन धान्य (जौ, गेहूँ और चना) की खेतियाँ भी पककर तैयार हो जाती हैं। मानव-समाज उन्हें उपयोग मे लाने की तैयारी मे होता है। किन्तु उन्हें देने वाले मालिक, इस जगत् के आधार भगवान् को अर्पण किए विना उसका उपयोग कैसे करें ? इसलिए आज की इस दहकती हुई अग्नि को भगवान् का रूप मानकर पूजन करने के बाद मत्र उच्चारण करते हुए यव, गोधूम आदि के चारु स्वरूप बालो की आहुति देकर हुतशेष धान्य को घर लाकर प्रतिष्ठित किया जाता है। उसी से प्राणो का पोषण होकर राष्ट्र बलवान हुआ यही होलिका दहन का त्योहार है, मगलोत्सव मनाकर सबको गले लगाते हुए आपसी वैर-भाव को भुला देने का महापर्व है।

93. होला महोत्सव

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा

यह उत्सव होलिका दाह के दूसरे दिन अर्थात्—चैत्र कृष्णा प्रतिपदा को सारे देश मे बडी धूम से मनाया जाता है। इसे धुरैंडी भी कहते है। भारत के गाँव-गाँव मे इस उत्सव की धूम होती है। शहर के लोग गुलाल, गोष्ठी, परिहास और गाने-बजाने तथा देहात के लोग धूल धमाका, जलक्रीडा और धमार आदि के साथ इसे मनाते हैं। आजकल इसका स्वरूप बहुत ही उच्छृखल और विकृत हो गया है। लोगो को

उन्हें बदलना चाहिए। भगवद्भक्ति के गीत और कीर्तन आदि का सुरुचिपूर्ण ढंग अपनाना चाहिए। लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि होली के जलाने में प्रह्लाद के निरापद अग्नि से बाहर निकल आने के रूप में यह उत्सव सम्पन्न होता है। शास्त्रों में इस दिन इसी रूप में नवान्नेष्टि यज्ञ बतलाया गया है। इस यज्ञ की समाप्ति पर भस्मवंदन और अभिषेक होता है। माघ शुक्ला पंचमी से चैत्र शुक्ला पंचमी तक वसंतोत्सव का काल है।

आज के उत्सव को नए रूप देने का काम बहुत बड़ा है। मद्य पान या नशीली वस्तुओं से लोगों को बचाने का खास कार्यक्रम आज के दिन रखा जाय तो बहुत अच्छा है।

94. शीतलाष्टमी

चैत्र कृष्णा अष्टमी

वन्देऽहं शीतला देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनी कलशोपेतां शूर्पालंकृत मस्तकाम् ॥

—शीतलास्तोत्र

शीतलास्तोत्र में शीतला का जो रूप बतलाया गया है, वह शीतला रोग की गतिविधि समझने के लिए बहुत हितकारी है। उसमें कहा गया है कि शीतला दिगंबरा है, गर्दभ पर सवार है, सूप, मार्जनी और नीम की पत्तियों से अलंकृत है। एक हाथ में शीतल जल का घट लिए हुए है।

हमारे देश में प्रायः शीतला का प्रकोप बड़े वेग के साथ होता है। उससे बचने के अनेक साधन भी होते रहते हैं। परन्तु प्राचीन समय में शीतला का सामूहिक पूजन और व्रत उससे बचने के उपायों के रूप में प्रचलित था। जैसा व्रत करने वाले के इस संकल्प से प्रकट है कि—

"मम गेहे शीतलारोग जनितोपद्रव ध्नमनपूर्वकायुरोग्यैश्वर्याभिवृद्धिये शीतला षष्ठी त करिष्ये।"

उसके बाद सुगंधियुक्त गंध पुष्प आदि से शीतला का पूजन करें और शीतल पदार्थों का भोग लगाकर स्वयं भी उसी प्रसाद को ग्रहण करें। इस वृत को करने वाले के कुल में कुदाह ज्वर, पीतज्वर, विस्फोटक, दुर्गन्धि युक्त फोड़े, नेत्रो के रोग, शीतला की फुंसियों के चिह्न और शीतला जनित दोष दूर होते हैं।

95. पापमोचनी एकादशी

चैत्र कृष्णा एकादशी

पाप मोचनी एकादशी की कथा भविष्यत् पुराण में इस भांति मिलती है—एक समय वसत ऋतु का आगमन होने पर इद्रलोक की अप्सराएं और गधर्व चैत्ररथ वन मे भ्रमण कर रहे थे। उस वन में अनेक ऋषि-महात्मा भी तप-साधन करते थे। वहां पर तप करने वाले मेधावी ऋषि को मुजघोषा नाम की अप्सरा ने देखा। वह अपने कठ से वीणा के स्वरो पर गान करती हुई उनके पास जा पहुँची। मेधावी ऋषि की योगनिद्रा टूटी और वह उस अप्सरा के रूप तथा गुण पर मुग्ध हो गये। मुनि ने अपना तप छोड दिया और अप्सरा ने स्वर्ग जाने का विचार त्याग दिया। दोनो साथ रहने लगे। किन्तु महात्मा की भोग वृत्ति दिनोदिन बढने लगी। यहाँ तक कि तप का सारा तेज उनका क्षीण पड गया। वह अप्सरा भी उन्हें क्षीण-पुण्य मानकर छोड गई। मेधावी ने क्रुद्ध होकर उसे पिशाचिनी बनने का श्राप दे डाला। अप्सरा घबरा उठी। उसने अपने उद्धार का उपाय मेधावी ऋषि के सामने आकर पूछा। उन्होने कहा—"दुष्टे! इतने दिन मेरे साथ रहकर भी तेरी असतुष्ट कामनाओं ने दूसरे पुरुषों के पीछे

भागने का अधर्माचरण करने की ओर प्रवृत्त किया और तू उन क्षणिक भावनाओं के वश होकर उस राह पर भाग खड़ी हुई। इस पाप का दड तो तुझे मिलना ही चाहिए। परन्तु पापमोचनी एकादशी व्रत का अनुष्ठान तेरे वासनाओं से भरे हुए मन को शान्ति देगा। और इस के साधन से ही पापो का शमन होने पर तुझे पवित्र जीवन मिलेगा। यह कहकर वह अपने पिता के पास चले गए। मुजघोषा वही रहकर व्रत-अनुष्ठान मे लग गई। कुछ दिनो बाद इस व्रत के प्रभाव से शुद्ध होकर वह स्वर्गलोक को चली गई।

एक अबला को श्राप देकर उसका परित्याग करने के दुख से मेधावी ऋषि को भी अपार क्लेश हुआ। उन्होंने अपने पिता से अपने मन की शान्ति का उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि जिस व्रत को तुमने उस नारी को बताया है उसी के पूरा करने से तुम्हें भी आत्म-शान्ति मिलेगी। चित्त को ठीक करके उसी व्रत का पालन तुम भी करो। अत. मेधावी ऋषि ने उसी दिन से पापमोचनी एकादशी के व्रत अनुष्ठान को आरम्भ करके भगवान् विष्णु का पूजन किया और मन की निर्मलता प्राप्त की। यह इस व्रत का महात्म्य है।

96. चैत्री अमावस्या

चैत्र अमावस्या

विक्रमीय सवत्सर की यह अन्तिम रात्रि है। इसके बाद सूर्योदय होते ही नव वर्ष का श्री गणेश होगा इसलिए समूचे वर्ष मे किये गए कार्यों का सही-सही मूल्याकन करने के लिए इससे बढकर और कौन-सा दिन हो सकता है। नए वर्ष मे नए सकल्प करके हमे आगे प्रगति करने की प्रतिज्ञा करनी है इसलिए क्या-क्या काम छूट गए और क्या-क्या रह गए इनकी समीक्षा आज के व्रत मे करनी चाहिये और

रात्रि हमारे सारे अपराधो को क्षमा कर देने वाले भगवान् नारायण के स्मरण मे बितानी चाहिए।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' हम अधेरे से प्रकाश की ओर बढें और दिनोदिन कृतसकल्प होकर प्रगति की राह मे बढे चलें यही शिक्षा भारत के त्योहार हमे निरतर देते रहते हैं। आज उनके स्वस्थ विचार और परिपाटियो को विकृत रूप मे मानकर छोड देने से काम नही चलेगा। हमे उनके शुद्ध सिद्धान्तो को अपनाने के लिये बडे धैर्य और सयम से काम लेना होगा।

97 बुद्ध जयन्ती

वैशाख पूर्णिमा

बुद्ध धर्म के प्रवर्तक—महात्मा बुद्ध के नाम से विख्यात है। उन्हें हम भगवान् विष्णु का अवतार मानते हैं। इन जगद्विख्यात महापुरुष के जन्म मरण की तिथियो के बारे मे गम्भीर तथा व्यापक अनुसधान होने पर भी, अभी तक एक सर्व-सम्मत मत की स्थापना नही हो सकी है। हाँ यह ज़रूर माना जाता है कि उनका जन्म ईसा से ५६० वर्ष पहले और निधन ४८० वर्ष इस्वी पूर्व मे हुआ था।

उनके पिता का नाम शुद्धोदन और माता का नाम आभा देवी था। लुम्बनी नामक ग्राम को उस महापुरुष की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। बचपन मे उनका लालन और पालन बडे दुलार के साथ हुआ। युवावस्था आने पर उनका विवाह भी यशोधरा नाम की राज कुमारी के साथ कर दिया गया। परन्तु विलास की विपुल सामग्रियो और कचन तथा कामिनी का सग उनके मन को अधिक समय तक ससार के माया-जाल मे फाँसने मे समर्थ नहीं हो सका।

वह तो जगत की माया मे फँसे हुए लोगो को त्याग, सयम और

अहिंसा का पाठ पढ़ाने के लिए धरा-धाम पर अवतरित हुए थे। जन्म के समय में ही उनके ग्रहयोग को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी। उन्होंने राजा से कहा—"राजन् ! आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपका पुत्र या तो पृथ्वी का सम्राट् होगा या फिर धर्म सम्राट्। यदि वैराग्य की ओर इनका मन झुक गया तो यह विरक्त ही होंगे।" राजा तो सामान्य संसारी प्राणियों की तरह राज्य-लिप्सा-आसक्त व्यक्ति थे, उन्होंने पूछा—"वैराग्य कैसे पैदा होगा ?" ज्योतिषियों ने कहा—"जन्म, मृत्यु और जरा के दुख को देखकर।" राजा ने पुत्र को इन दृश्यों से दूर रखने की व्यवस्था कर दी। परन्तु होश सम्भालते ही कुमार के मन में यह सवाल पैदा होने लगे—मैं कौन हूँ ? क्यों उत्पन्न हुआ हूँ। यह ससार क्या है ? इत्यादि। एक दिन वन में उन्होंने एक दुर्बल, अपंग और वृद्धावस्था के सताप से दुखी एक व्यक्ति को देखा। कुमार ने अपने सारथी से पूछा—"यह व्यक्ति कौन है ?" सारथी ने कहा—"अवस्था के भार से थका हुआ यह एक अपग रोगी है और जीवन के शेष दिन पूरे करने के लिए जो रहा है।" कुमार ने पूछा—"क्या इस ससार के सभी लोगो की यही दशा होने वाली है ?" सारथी ने कहा—"हाँ कुमार। इस ससार मे जो भी वस्तु पैदा होती है, उस पर पहले शैशव का हास्य खिलता है, फिर उन्मत्त यौवन आता है और उसके बाद बुढापे की जर्जरता उसके अंग की कान्ति को हरण कर लेती है। अत मे मृत्यु उसके अस्तित्व की नाकाब उलट देती है। यही ससार के सारे प्राणियो की गति है।" "क्या इस गति को बदलने की कोई राह नही है ?"—कुमार ने पूछा। सारथी ने कहा—"नही कुमार ! इस गति को आजतक कोई नही बदल सका।"

उसके बाद उन्होने कुछ लोगों को कंधों पर लादे हुए एक शव को श्मशान की ओर ले जाते हुए देखा। वह चौक उठे। उन्होंने सारथी से घबराकर पूछा—"यह क्या है ?" सारथी ने कहा—"यही वह राह है जिससे एक दिन सभी को जाना पडता है, कुमार !" वह बोले—"क्या मुझे भी एक दिन इस संसार से ऐसे ही जाना पड़ेगा ?" सारथी ने कहा—"कुमार ! इस दुनिया में जो पैदा होता है उसे एक दिन अपनी

इच्छा न होते हुए भी मरना पडता है।" कुमार अधिक न देख सके और राज भवन की ओर लौट पडे।

इसी बीच उनके एक पुत्र का जन्म हुआ। परन्तु उनके हृदय मे वैराग्य प्रवेश कर चुका था। इसलिए घर, राज्य, पत्नी और पुत्र सब का मोह छोडकर वह राज भवन से निकल गए। अनोदा नदी के तीर पर उन्होने अपने वस्त्र और आभूषण तथा केश उतार दिए। भिक्षुक वैरागी की कठिनता का अनुभव करते हुए वह किसी योग्य पथ-प्रदर्शक गुरु की खोज करने लगे। मस्तिष्क मे वैराग्य पूर्ण विचारो का स्रोत उमडा पड रहा था। अत मे एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर गम्भीर मनन मे युक्त हो गए और वही उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ।

उनके उपदेशो से जगत् को चिर शाति के मुख्य साधन अहिंसा और दया का उपदेश मिला। धीरे-धीरे उनमे आस्था रखने वाले भक्तो की सख्या बढ चली, जिन्होने दूरस्थ देशो मे जाकर इनके सिद्धान्तो का प्रचार किया और एक समय ऐसा आया कि महात्मा बुद्ध सारे एशिया के धर्म सम्राट् बन गए। प्राणी मात्र के प्रति उनका आदर भाव था। सभी जाति के लोग उनके शिष्य हो सकते थे। स्त्रियो ने भी उनसे दीक्षा ग्रहण की। धर्म प्रचारक सस्थाओ मे उनकी स्थापित सस्थाओ ने बहुत बडा कार्य किया। उन्ही भगवान् बुद्ध की शिक्षा से विशाल जन समुदाय को जीवन की राह मिली। उनकी स्मृति को सजग रखने के लिए प्रति वर्ष उनकी जयन्ती का उत्सव मनाया जाता है।

भारत में मनाये जाने वाले अन्य धर्मावलम्बियों के त्योहार

1. क्रिसमस

25 दिसम्बर

आज महात्मा ईसा मसीह की पुण्य जयन्ती का पर्व है। ससार की समूची जनसख्या मे लगभग 35 फीसदी लोग उनके द्वारा प्रचलित किये गए ईसाई धर्म को मानने वाले हैं। भारत में इस मत के मानने वालो की सख्या 82 लाख है। भारत की जनसख्या के अनुपात से हिन्दू और मुसलमान के पश्चात् तीसरा स्थान ईसाई मतानुयायियो का है। वे लोग इसे बडा दिन कहते हैं। इसका दूसरा नाम क्रिसमस है। ईसा के पूर्व प्राचीन रोमन राज्य मे 25 दिसम्बर सूर्य देवता की वर्षगाठ का समझा जाता था और इसी दिन वे लोग क्रिसमस अर्थात् बडा दिन मनाया करते थे।

अरब देश के वायव्य कोण मे फिलस्तीन (Palestine) नामक एक देश है। यही यहूदियो का स्थल है, जिसे भगवान् ने उन्हें दिया था। प्राचीन युग से यह स्थान बडे-बडे पैगम्बरो, नबियो और अलौकिक शक्ति वाले महापुरुषो तथा भविष्यवक्ताओ की कर्म-भूमि माना जाता है। इसी मे यहूदिया एक तहसील है। उसमे येरुसलम नामक एक नगर है। उससे कुछ दूर पर महात्मा यूसफ अपनी पत्नी सहित बैथेलहेम नामक नगर की एक धर्मशाला मे आकर ठहरे। वही महाप्रभु ईसा का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम मेरिया था और तत्कालीन यहूदी प्रथाओ के अनुसार प्रथम सन्तान होने के नाते उन्हें भगवान् को अर्पण कर दिया गया। उनका सावजनिक जीवन तीस वर्ष की अवस्था से आरम्भ होता है। इसी समय उन्हें महात्मा जौन ने जाडन नदी के तट पर शिक्षा दी थी।

ईसा के जन्म से पहले रोम दो हिस्सो मे विभक्त था। यहूदी लोग

अपने को सर्व श्रेष्ठ मानते थे और दूसरी जाति वालो से सम्पर्क रखना उन्हें अपनी शान के खिलाफ लगता था। लोग अपनी अवस्थाओ के अनुसार अपने रीति रिवाज एव धर्म-व्यवस्था का बडी कट्टरता से पालन करते थे। उन्ही कट्टरताओ के विरुद्ध महात्मा ईसा ने अपनी आवाज़ ऊँची की। वैसी ही जैसी महात्मा बुद्ध ने भारत मे अपनी समकालीन कट्टरताओ के विरुद्ध ऊँची की थी। उन दिनो सारे ससार मे किसी न किसी रूप मे बलि-प्रथा प्रचलित थी। इस हिंसा से भरी हुई प्रथा के अनेक रूप थे। भारत मे नरमेध, गोमेध, पशुमेध आदि बलि-प्रथाएँ प्रचलित थी। यहूदियो मे भी पशुमेध होता था। मध्य-पूर्व एशिया मे अनेक स्थानो की खुदाई मे राजा अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति के शव के साथ एक दासी या पत्नी, एक सेवक तथा एक घोडा ज़मीन मे गाड दिया जाता था। मैक्सिको मे लोग मनुष्य का हृदय निकालकर देवता को चढाते थे और यह सब होता था धर्म के नाम पर।

येरुसलम का मन्दिर भी मेमने, कबूतर और पैसा कमाने वालो का अड्डा बन गया था। मन्दिर के कमरे किराए पर उठाए जाने लगे। पुरोहितो, कर्मकाडियो के पाखड से जनता आतकित हो उठी थी। वे धर्म के ठेकेदार अपने आपको मानव और ईश्वर के बीच की एक कडी मान बैठे थे। उनके विचार से ईश्वरीय कोप बलि चढाने मात्र से ही ठडा होता था। आँख के लिए आँख और दाँत के लिए दाँत का सिद्धान्त ही उन लोगो मे घर बनाये हुए था। वे लोग अपने अप-राधो के लिए निरीह जीवो की हत्या करते थे।

महाप्रभु ईसा ने इन प्रथाओ के विरुद्ध लोगो को प्रेरणाएँ दी। उनका जीवन स्वय भी बडा तपस्वी, सहिष्णु और सात्विक था। लोगो को उनकी वाणी से त्राण मिला। उनका सीधा सिद्धान्त था। जीवन के सभी क्षेत्रो को उनके उपदेशो ने प्रभावित किया। उनके विचार मे धर्म जीवन की व्यावहारिक समस्याओ का हल करने वाला था और यदि यह न हो तो वह अनुपयोगी सिद्ध होता था। वह मानते थे कि प्रेम और घृणा मन की सतानें हैं। मानव को अपने नैसर्गिक

गुणों का विकास करने में प्रयत्नशील होना चाहिए और केवल धर्म स्थान में आने-जाने और माला फेरने मात्र से धर्म का सृजन नहीं होता।

उनके व्यक्तिगत चरित्र में अनेक चमत्कारी घटनाएँ दिखाई देती हैं। नेत्र हीनों को नेत्र, पंगु को गति, मृतकों को जीवन, रोगियों को आरोग्य, कोढ़ियों को शुद्ध शरीर, बधिरों को श्रवण शक्ति, उपद्रवों का शमन, पानी पर चलना और भोजन पात्र को अक्षय बनाना आदि उनके जीवन की विविध घटनाएँ हैं। पर केवल चमत्कार दिखाकर लोगों को प्रभावित करना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं था। मानव थे और मानव के दुखों में उनकी सहायता करना ही उनके जीवन का व्रत था। उन्होंने वर्गहीन समाज की कल्पना की थी। सभ्य एवं असभ्य, दास एवं स्वतन्त्र लोगों के बीच की गहरी खाई को पाट कर मानव को ऊँचा उठने का शिक्षण दिया। उन्होंने स्वयं कष्ट और अपमान सहकर दूसरों को सहिष्णु बनने का उपदेश दिया। एवं मानव को दुःख से मुक्त करने में अपनी सारी शक्ति का उपयोग किया। उनके पर्वतीय उपदेशों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—"स्वर्ग का राज्य दीन-दुखियों का है। नम्र व्यक्ति ही धन्य है। इस सारी पृथ्वी के वे ही अधिकारी हैं। शुद्ध हृदय लोग ही परमात्मा को पा सकते हैं। धर्म और न्याय के लिए कष्ट सहने वाले लोगों के लिए स्वर्ग की निधियाँ सुरक्षित हैं।"

प्रभु ईसा का उपदेश सुसमाचार कहलाता है। उसके द्वारा उन्होंने भक्तिमार्ग की प्रतिष्ठा स्थापित की है। अपने आत्म-त्याग से इंसानों का हृदय बदल देने वाली साधना ही उनकी सबसे बड़ी देन है। दीन-दुखियों की सेवा ही भगवान् की सेवा है। विश्व में निराशा की जिन्दगी एक बुझा हुआ चिराग है उसे आश की ज्योति से चमकाना चाहिए। गिरे हुए लोग भी मन की पवित्रता से ऊँचे उठ सकते हैं। यही धर्म का सार है।

2. नया वर्ष

1. जनवरी

इंग्लैंड में 31 दिसम्बर की रात को 11 बजे से गिरजाघरों में घण्टे बजने शुरू होते हैं। आरम्भ में यह घण्टे धीरे-धीरे बजते है। उस समय लोगो को अपने खोये हुए साथियों की याद आती है। धीरे-धीरे घण्टो का शब्द तेज होने लगता है और सब लोगों के मन नए वर्ष के स्वागत के लिए तत्पर हो जाते हैं। रोम नगर के लोग भी इसी प्रकार आज के दिन को नया वर्ष मानकर इसकी खुशियां मनाया करते है। इस महीने का नाम भी वहाँ के एक पुराने देवता के नाम पर रखा गया था। उस देवता का नाम जैनस था। उसकी मूर्ति को असाधारण प्रतिभा का प्रतीक मानते थे। क्योंकि वह हमारे गत वर्ष की घटनाओं और अग्रिम वर्ष की होनहार के विषय का ज्ञान रखता था। सदैव जागरूक रहकर वह पीछे और आगे की बातों को देखता हुआ चलता था। यूरोप मे पुराने समय से गतवर्ष का अन्तिम दिन और नए वर्ष का पहला दिन हँसी-खुशी मे मनाने और दावतें उड़ाने मे जाता था। चाहे गरीब हो या अमीर, प्रत्येक व्यक्ति बड़े उल्लास के साथ इस त्यौहार को मनाते थे। भारत मे भी इसी आधार को लेकर यह त्यौहार मनाया जाता है। विशेषत: धर्म मे आस्था रखने वाले लोगो के लिए यह बडा खुशी का पर्व है।

3. ईस्टर

मार्च

ईसाई भाइयों का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार ईस्टर भी है। यह वसत-ऋतु में पड़ता है। ऐसा भी माना जाता है कि इस दिन प्रभु ईसामसीह तीन दिनों की मृत्यु के बाद उठकर बैठे थे। इन तीन दिनों तक उनका पार्थिव शरीर बिलकुल मृतक के समान निश्चेष्ट पड़ा रहा परन्तु जब वे उठ बैठे, तो लोगों ने बड़ा हर्ष प्रदर्शन किया। वह लोगों की प्रसन्नता का विषय बन गया। उसी उल्लास की घड़ी को ईस्टर कहते हैं। ईस्टर शब्द सम्भवतः इग्रोस्टर शब्द से निकला हुआ-सा लगता है। इग्रोस्टर ऐंग्लो-सैक्शन देवी थी। यह देवी वसन्त और उषा काल की देवी मानी जाती है। यह त्योहार ब्रिटेन में सेंट अगस्टाइन द्वारा सन् 597 ई० के लगभग आरम्भ किया गया था। तभी से वहाँ के लोग इसे मनाते हैं।

ईस्टर के बारे में यह भी जानने योग्य है कि यह त्योहार हमेशा एक ही तारीख पर नहीं पड़ता। 21 मार्च के बाद जब पहली बार चाँद पूरा पड़ता है और उसके बाद जो पहला रविवार आता है वही ईस्टर माना जाता है। 22 से 25 तक यह कभी भी पड सकता है। कभी-कभी इसमें तीन-तीन सप्ताह का भेद पड जाता है। ईस्टर के रविवार से पहले जो सप्ताह पडता है, वह पवित्र माना जाता है। प्रभु ईसा को इस सप्ताह में बडे-बडे सकट सहने पड़े थे। ईसामसीह रविवार के दिन इजराइल की राजधानी मे घुसे थे। उस समय लोग ताड़ के वृक्षो की शाखाएँ लेकर उनसे मिलने के लिए टूट पडे थे। इसी से उसे पाम संडे भी कहते हैं। इसी घटना के आधार पर पादरी लोग पाम सडे को ताड़ के वृक्षो की शाखाएँ जनता में बाँटा करते हैं। कभी-कभी उसे लेकर जुलूस के रूप मे नगर-यात्रा करते है और उसके बाद उनमे आग लगा दी जाती है। एव राख अगले वर्ष के लिए रख ली जाती है।

4. गुड फ्राइडे

मार्च

उपरोक्त रविवार के बाद गुड फ्राइडे आता है। जो ईसाई धर्म में सबसे अधिक गम्भीर माना जाता है। इसी दिन प्रभु ईसा को फाँसी पर चढ़ाया गया था। इस दिन रोम के सेंट पीटर्स नामक ईसाइयों के सबसे बड़े गिरिजाघर में शोक छाया रहता है। इस दिन पादरी और उनके कर्मचारी शोक के रंगवाली पोशाक पहनते हैं और अपने अस्त्रों को उल्टा लेकर चलते हैं।

5. रमज़ान

मुस्लिम भाइयों का यह पवित्र मास है। इन दिनों वे एक महीने का रोजा अर्थात् उपवास रखते हैं। फरिश्ता जिब्रील के द्वारा भगवान् ने जो संदेश तेईस वर्षों में पैगम्बर साहब के पास भेजा था, वही पैगाम पैगम्बर साहब ने जगत् को दिया। हजरत जिब्रील जिस संदेश को लाए थे उसका नाम कुरान शरीफ है। रमजान के दिनों में वह उतरे थे इसी लिए यह मास अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

कुरान शरीफ—ईश्वर के यहाँ रक्षित उत्तम ज्ञान भंडार की पुस्तक 'लौहे-महफूज' मे लिखी है। उसी महान् ईश्वरीय लेख का यह अश है। कुरान-शरीफ खजूर के पत्तों और भित्तियों पर लिखकर रखी गई थी। बहुत-से लोगों ने उसे कठ कर रखा था। पहले खलीफ़ा हजरत अबूबक्र के समय मे बहुत-से याद रखने वाले लोग यमन के युद्ध मे शहीद हो गए थे। इसलिए हजरत उमर ने हजरत अबूबक्र से कुरान शरीफ़ का प्रामाणिक सकलन करने के लिए अनुरोध किया और प्रामाणिक प्रति को सुरक्षित करने का सुझाव दिया।

हज़रत अबूबक ने उसकी एक प्रति सकलित करके हज़रत उमर की पुत्री और पैगम्बर साहब की धर्मपत्नी बीबी हफसा के पास रखवा दी। हज़रत उसमान तीसरे खलीफा हुए। उनके समय तक अनेक देशो मे मुस्लिम राज्य और धर्म फैल चुका था परन्तु कुरान शरीफ मे पाठान्तर होने लगा था। हज़रत उसमान ने उसकी प्रतियाँ तैयार कराने का आदेश दिया। हज़रत ज़ैद को पूरी कुरान कठ थी। परन्तु उसमे भाषा का भेद पड चुका था। इसलिए हज़रत कुरेश की भाषा को मान्यता दी गई। क्योंकि पैगम्बर साहब भी उसी गोत्र के थे। उसी भाषा मे कुरान नाजिल हुई। पैगम्बर साहब के अनेक प्रवचन हदीस कहलाते हैं। उनका वही आदर है जो हिन्दू-धर्म मे स्मृतियो का है। उनमे इस्लामी आचार और पैगम्बर साहब की दैनिक चर्चा का विवरण है।

नबी और रसूल शब्द कुरान मे आया है। 28 नबियो का भी उसमे वर्णन किया गया है। वे सब ईश्वर की ओर से हर युग, देश तथा जाति मे भेजे गए हैं। उन सभी ने ईश्वर के सदेश मानवो को सुनाए। पैगम्बर साहब अन्तिम सदेश लाने वाले रसूल थे। रसूल का महत्त्व इसलाम धर्म मे बहुत बडा है। यद्यपि अल्लाह ही सबसे बडा और सबके ऊपर है परन्तु पैगम्बर या रसूल भी उसी के समान पूज्य है।

कलमा, नमाज, जमात रोज़ा तथा हज यह पाँच मुस्लिम धर्म के अनिवार्य कर्म हैं। 'कलमा' इस्लाम का मूल मत्र है। उसका केवल एक ही सदेश है कि 'अल्लाह' के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नही है। और पैगम्बर साहब उसके भेजे हुए रसूल हैं। 'नमाज रात दिन मे पाँच बार पढी जाती है। भगवान को याद करने की यह एक विधि है। 'जकात' अपनी आय का ढाई प्रतिशत दान करना मुस्लिम धर्म मे अनिवार्य माना जाता है। दान करना मानव धर्म है। इस्लाम उसकी अनिवार्य शिक्षा देता है। 'रोजा' आत्म शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। महीने भर तक केवल एक बार सायकाल को अन्न और जल लेकर मुस्लिम भाई इस कठिन व्रत को करते हैं। पाँचवी बात मक्का शरीफ की तीर्थ यात्रा 'हज' है।

इस्लाम की साधना समन्वयात्मक है। वह व्यक्ति के महत्त्व की जगह समूह को प्राथमिकता देता है। एकेश्वरवाद का दृढ समर्थक है। इस्लाम मे ईश्वर की उपासना का साधन सरल और सीधा है। नारी के जीवन की उसमे प्रतिष्ठा कायम की गई है। साम्य का अमोघ मन्त्र उसकी देन है। जिसके कारण राजा और रक एक पक्ति मे खड होकर नमाज़ पढते हैं। इस्लाम ने दिमागी उलझनो मे मानव को न छोडकर सत्य जीवन की राह दिखाई है।

6 ईद

रमजान के वाद रोज़ा समाप्त होने पर ईद पडती है। यह इस्लाम मतावलवियो के लिए खुशी का त्यौहार है। नए कपड पहनकर पहले मस्जिद मे जाकर नमाज़ पढते हैं, और उसके बाद आपस मे एक दूसरे के गले मिलकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

7 वकरीद

इस त्योहार को हजरत मुहम्मद साहव ने शुरू किया। उनसे पहले भी लोग इस त्यौहार को मनाते थे। इसलिए मुसलमानो का यह बहुत पुराना त्योहार है। इस पर पशुओ की कुरबानी की जाती है। कुरान मे वलि के विपय मे कहा गया है कि अल्लाह ताला के पास मास व रुधिर तो नही पहुँचता मगर वह मास खाना हलाल है जो उसके नाम पर किया गया हो। असल मे तो एक त्याग वीर की कथा का स्मारण इस त्यौहार को मनाते समय जागृत होता है। यह भक्त थे ईश्वर निष्ठ इब्राहीम। उनके दो पुत्र थे। छोटे लडके इस्माइल पर उनकी प्रीति कुछ विशेष थी। यह देखकर एक दिन शैतान ने विचार

करके ईश्वर से कहा—"यह देखिए अपने भक्त की लीला। आप समझते हैं कि आप ही से वह भक्त प्यार करता है परन्तु प्रीति आप से ज्यादह अपने बेटे पर है।" उसी दिन अल्लाह ताला ने उन्हें स्वप्न मे दर्शन देकर कुरबानी करने का आदेश दिया। भक्त इब्राहीम ने एक पशु की कुरबानी कर दी। परन्तु रात को उन्होने फिर वही स्वप्न देखा। दूसरे दिन उन्होने उससे बडे पशु की कुरबानी की। मगर वह भी अल्लाह ताला का मजूर नहीं हुई। उसने फिर से स्वप्न देकर भक्त इब्राहीम से कुरबानी करने को कहा। इब्राहीम ने इस स्वप्न मे बडी विनम्रतापूर्वक उसकी प्रार्थना करते हुए उससे पूछा—'मेरे मालिक! तू किसकी कुरबानी मुझसे चाहता है?" ईश्वर ने कहा—"तेरे प्यारे बेटे की।"

मालिक की मरजी सुनकर इब्राहीम को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ। उसने अपना जीवन उसकी मरजी पर उत्सर्ग कर दिया था। इसलिए उसकी मरजी को पूरा करने के इरादे से दूसरे दिन वह अपने लडके इस्माइल को लेकर कुरबान गृह की ओर चल खडे हुए। शैतान ने इस्माइल की माँ और स्वय इस्माइल को बहकावे मे डालने की कोशिश की। परन्तु वह सारा परिवार इतना दृढ-निष्ठ था कि शैतान की बातो का उनपर कोई असर नही हुआ। पिता ने भी बिना आँखो म आँसू बहाए अपने पुत्र की गरदन पर छुरी रख दी। और ज्योंही वह उसका काम तमाम कर देने को उद्यत हुए त्योही ईश्वर ने प्रकट होकर उन्हें रोका और उनके पुत्र की जगह एक पशु बलि लेना स्वीकार कर लिया। यह त्योहार इसी घटना की याद दिलाने के लिए मनाया जाता है। आगे चलकर इन्ही इस्माइल के वश मे इस्लाम धम के नबी हजरत मुहम्मद साहब का जन्म हुआ, और बलिदान की महिमा समझाने के लिए नबी साहब ने इसका महत्त्व बढाया।

8 मुहर्रम

मुहर्रम का त्यौहार मुसलमान भाइयो के लिए श्राद्ध का त्यौहार है। इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाले बडे से बडे शहीदो की याद को तरोताज़ा करने की शक्ति इस त्यौहार मे है। हज़रत हसन हुसैन जैसे धर्म-निष्ठ लोगो ने अरबस्तान की पुण्य-भूमि करबला मे धर्म के लिए कितना बडा बलिदान किया और हज़रत पैगम्बर की आज्ञाओं एव उपदेशो के प्रति वफादार रहते हुए कितना बडा त्याग किया, कितनी तकलीफें उठाई और सारे युद्ध मे कितनी बहादुरी से मृत्यु का आलिंगन किया—यही सब बातें मुहर्रम के अवसर पर सहसा जाग पडती हैं।

1 गणतंत्र दिवस

26 जनवरी

हमारे स्वतंत्र देश का यह सबसे बडा राष्ट्रीय महापर्व है। आज के दिन सन् 1950 मे देश मे नया सविधान लागू किया गया। सारे देश मे आज का त्योहार बडी घूम से मनाया जाता है। भारत की राजधानी दिल्ली मे तो आज का महोत्सव देखने योग्य ही होता है। राष्ट्रपति भवन से एक शानदार जुलूस निकाला जाता है। भारतीय सेना की परेड होती है और विभिन्न प्रदेशो की सुदर भाकियाँ सजाकर निकाली जाती हैं। यह जुलूस मीलों लम्बा होता है और लाखो दर्शक इसे देखने के लिए दूर-दूर से आकर एकत्र होते हैं। आज ही के दिन भारत के गणराज्य की प्रथम घोषणा सन् 1950 ई० को की गई थी। नव विधान की प्रस्तावना मे भारत को सपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतत्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने तथा उनमे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बधुता बढाने का सकल्प किया गया है।

सविधान के पहले अनुच्छेद के अनुसार भारत राज्यो का सघ है और उसके राज्य क्षेत्र मे आध्र, असम, बिहार, बगाल, उडीसा, मद्रास मसूर, केरल, महाराष्ट्र गुजरात, मध्य प्रदेश, पजाब, उत्तर-प्रदेश, जम्मू काश्मीर, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अडमन, तथा निकोबार द्वीप समूह और लकादीव, मिनिकोय द्वीप समूह के प्रदेश एव भविष्य मे प्राप्त कोई भी अन्य राज्य क्षेत्र आते है।

सघ की सारी काय शक्ति राष्ट्रपति मे निहित है और वह उसका प्रयोग सविधान की मर्यादाश्रो के अनुसार अपने अधीनस्थ पदाधिकारियो द्वारा करते है। समस्त भारत की ओर से सैनिक परेड मे उन्हें आज के दिन सलामी दी जाती है।

2 गांधी निधन तिथि

30 जनवरी

आज के दिन हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का निधन हुआ था। सारे ससार मे इस दिन को शोक छा गया था। एक ज्योति थी जो आज के दिन बुझ गई। गत सहस्राब्दि मे भी कोई इतना महान् कर्मठ और दूसरो के हित मे अपना जीवन अर्पण करने वाला कर्मयोगी महापुरुष नही हुआ था। उन्होने इस देश पर जो उपकार किये हैं उन्हें इतिहास के अन्तर्गत स्वर्ण अक्षरो मे अकित किया गया है जो आने वाले युगो को त्याग, तप, साहस, धर्य और सयम के साथ कर्तव्य पालन के प्रशस्त माग का निदर्शन करते रहेंगे। आज के भारत मे जो सजीवता आई है वह उन्ही की देन है।

जब किसी देश मे कोई महापुरुष अवतरित होता है तब यह कहना कठिन होता है कि उस महापुरुष ने अपने युग का निर्माण किया। जहाँ तक भारत और गाधीजी का सम्बन्ध है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि दोनो पर एक दूसर का प्रभाव पडा है। युग की परिस्थितियो ने उनके मानस का निर्माण किया और गाधीजी ने उस पर अपनी छाप जमा दी। उन्होने अपने पावन चरित्र से एक नवीन ढग का विकास किया है। लोगो के पुराने सोचने के तरीको को नया जामा पहनाकर उन्होंने युग के साथ चलने की प्ररणा दी। उनका व्यक्तिगत जीवन एक सत का सा आदर्श जीवन था और उनका कार्य

क्षेत्र था सारा विश्व। विश्व से अलग रहकर वह कोई बात सोचना पसंद नहीं करते थे। उनकी दृष्टि मे ससार सत्य था और सत्य का आदर करने से ही जीवन की प्रतिष्ठा होगी। इसलिए उन्होने अपना जीवन सत्य-मय बना डाला था। एव उसके प्रभाव को मानस पटल पर निरतर स्थिर रखने के विचार से उन्होंने एकादश व्रतो को अपने जीवन का साधन बनाया था। वे एकादश व्रत ये हैं —

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यमसग्रह
शरीर श्रम अस्वाद सर्वत्र भय वर्जन।
सर्व धर्म समानत्व स्वदेशी स्पर्श भावना
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रत निश्चये।

इन व्रतो के पालन का जीवन पर क्या प्रभाव पडता है इसका प्रत्यक्ष दर्शन हममे से बहुतो ने गाधीजी के जीवन मे अपनी आँखो से देखा है। अत यह मानना कि व्रत और उत्सव रूढिवाद अथवा ढकोसले हैं, ठीक नहीं है। असल मे व्रतो का पालन करने का उत्साह हमारे मनो मे अब नही रह गया है। भौतिकवाद की चमक दमक हमे जिस दिशा मे बहाये लिए चली जा रही है उसी का फल यह हुआ कि हम कृत्रिमता, आचरणहीनता और भ्रष्टाचार के गढे में दिनो दिन नीचे उतरते जा रहे हैं। उसे रोकने और कम करने का उपाय एकमात्र व्रतो का पालन और उनका सही सत्कार करना है। यही प्रेरणा हमे पूज्य गाधीजी ने दी थी। यदि निश्चय और श्रद्धा के साथ हमने उनकी प्रतिष्ठा की तो देश और समाज ऊँचा उठेगा इसमे कोई शक नही है। आज तक जितने भी बडे बडे महापुरुष इस देश अथवा अन्य देशो मे हुए उन सब ने इन व्रतो को किसी-न किसी रूप मे अपनाया और तभी उनकी प्रतिष्ठा बढी। वे लोग अपने आचरण से आने वाले युगो और पीढियो के लिए एक नित्य सदेश छोड गए है। वह दिन सचमुच हमारे लिए बडे सौभाग्य का होगा जब हमारे जीवन मे किसी व्रत को करने का उत्साह जगेगा।

3. स्वतंत्रता दिवस

15 अगस्त

बड़े कठोर तप और त्याग तथा अनेक बलिदानों के बाद आज के दिन भारत ने अपनी खोई हुई स्वतत्रता प्राप्त की थी। इसलिए यह पुनीत महापर्व सारे देश के लिए बड़े गौरव का है। एक ही समय पर आज के दिन प्रत्येक प्रदेश मे राष्ट्रीय झडा लहराया जाता है। राजधानी मे इस कार्य को हमारे लोकप्रिय प्रधानमत्री पडित जवाहरलालजी नेहरू सम्पन्न करते हैं। उस समय लाल किले पर झडा लहराया जाता है। यह हमारे राष्ट्र का महोत्सव है।

सयोग की बात है कि संसार के सबसे सुन्दर देश स्विट्ज़रलैंड तथा हमारे पडौसी देश इडोनेशिया ने हौलंड के डच शासन से मुक्त होकर अगस्त के महीने मे ही अपनी स्वतत्रता प्राप्त की थी। इसलिए अगस्त का महीना केवल भारत के लिए ही नही वल्कि अनेक देशो के लिए राष्ट्रीय महत्त्व का है। हमारी आजादी प्रत्येक देशवासी को मुबारिक हो इसीलिए यह महापर्व सारे देश मे वडी शान के साथ मनाया जाता है।

4. बाल-दिवस

14 नवम्बर

भारत के प्रधानमत्री और ससार के लोकप्रिय नेता प० जवाहरलाल नेहरू का यह जन्म दिन है। सन् 1889 मे इस तिथि पर प्रयाग मे स्वर्गीय प० मोतीलालजी नेहरू के पुत्र के रूप मे उनका जन्म हुआ। उनकी माता का नाम श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू था। 14 वर्ष

की आयु मे ही उन्होंने विदेश जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण की और बैरिस्ट्री पढ़कर स्वदेश लौटे। स्वदेश आने पर देश के स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लेना आरम्भ किया और एक वीर सेनानी की भाँति आजादी की लड़ाई लड़ी। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में उनका परिश्रम बड़े महत्त्व का है। महात्मा गाधीजी उनसे बड़ा स्नेह रखते थे। अग्रजों के जाने के बाद उन्होंने देश का शासन-सूत्र सम्भाला और प्रधानमत्री के पद से बड़ी योग्यतापूर्वक देश को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। आज के भारत के सर्वतोमुखी विकास का श्रेय उन्ही को है। उनके अथक परिश्रम और अदम्य साहस तथा उच्च चरित्र के कारण विश्व के दूसरे राष्ट्र भी उन पर मुग्ध हैं। शान्ति के अग्रदूत के रूप में दूसरे राष्ट्रों के लोग भी उनकी बात का आदर करते हैं। भारत की प्रतिष्ठा को उन्होंने ऊँचा किया है। सारे देश के लोग उन्हें शान्ति के अग्रदूत के रूप मे मानते हैं और इसी रूप मे दूसरे राष्ट्रो के लोग भी उनकी बात का आदर करते हैं। बच्चो के समाज मे तो नेहरूजी पूरी तरह खिल उठते हैं। उनके निष्कपट और सरल प्यार मे अपने आप को वह बिलकुल भूल से जाते हैं। बच्चे भी उन्हें चाचा नेहरू के नाम से पुकार कर बड़े खुश होते हैं। इसलिए नेहरूजी ने अपने जन्म दिवस को अन्य किसी रूप मे मनाने का निषेध करके बाल दिवस के रूप मे मनाना स्वीकार किया है। इसलिए यह देश भर के बच्चो की खुशी का पर्व है। आज के दिन सहसा ही उनके दिलो म अपने चाचा नेहरू का प्यार जाग पड़ता है। और वे अपने स्कूलो मे अध्यापको से मिठाई पाकर आनन्द मे उछलकर चाचा नेहरु जिन्दाबाद के नारे लगाते हुए और हृष मे किलकारियाँ भरकर कूदते हुए दिखाई देते हैं।

5. राजेन्द्र दिवस

3 दिसम्बर

आज भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के जन्म का दन है। बाबूजी को देखते ही उनके सरल स्वभाव और विनम्र व्यवहार की जो छाप उनसे मिलने वालों के दिलों पर पड़ती है उससे यह लगता है कि मानो प्राचीन समय का कोई तपस्वी महात्मा मिल गया हो। उनका सारा जीवन एक कर्मठ तपस्वी का जीवन है उनका प्रारम्भिक जीवन एक आदर्श विद्यार्थी का जीवन था। सन् 1905 के बग-भग आन्दोलन के समय स्वदेश की समस्याओं की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। सन् 1911 मे वकालत शुरू की और उसमे भी सच्चाई और ईमानदारी के कारण बडी ख्याति प्राप्त की। चम्पारन के सत्याग्रह समर के अवसर पर उनका सम्पर्क गाधीजी से हुआ। गांधीजी भी बाबूजी की सरलता और विनम्र व्यवहार पर मुग्ध हो उठे। चम्पारन के कामो मे बाबूजी ने बडी तत्परता और लगन के साथ काम किया था इसलिए गाधीजी का उनपर बहुत बडा विश्वास कायम हुआ। सन् 1917 मे होमरूल लीग का काम बढा। देश के सभी प्रान्तो मे उसकी शाखाएँ बनी। उधर भारत सरकार की दुधारी नीति अपना काम कर रही थी। सन् 1919 मे रौलेट रिपोर्ट के निकलते ही देश मे बडा आन्दोलन उठ खडा हुआ। गाधीजी ने उसका नेतृत्व सम्हाला। उस समय बाबूजी ने भी अपना काम काज छोडकर उनके साथ काम किया। तब से निरतर वह स्वतन्त्रता सग्राम के कामो मे लगे रहे। सन् 1933 मे पहले पहल जेल यात्रा की। छ मास बाद हजारीबाग जेल से मुक्त हुए। उधर यरवदा जेल मे गाधीजी ने हरिजनो की समस्या को लेकर अपना आमरण अनशन आरम्भ किया। उस समय पर किये गए काम बाबूजी के नाम के साथ भारतीय इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेंगे। राजनैतिक लडाई के अनेक उतार-चढाव के अवसरो पर राजेन्द्र बाबू ने असाधारण धैर्य,

कर्तव्य-निष्ठा और साहस के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। अनेक बार जेल यातनाएँ सही किन्तु कभी अपने छोटे-से-छोटे कर्तव्य की भी उपेक्षा नहीं की। 21 सितंबर, 1946 में भारत सरकार की ओर से अन्तरिम सरकार बनी। उसमें बाबूजी को अन्न और खेती का विभाग सौंपा गया। उस समय देश में अन्न संकट बहुत था। बड़ी योग्यता से उन्होंने उसे सम्हाला। वह हमारे राष्ट्रपति थे। सारे देश-वासियों के दिल में उनके प्रति अगाध श्रद्धा और आदर का स्थान है।

उपसंहार

भारत के त्योहार, व्रत, उपवास, जयन्तियाँ और दूसरे समारोहों के बारे में जो कुछ इस ग्रन्थ में अब तक लिखा गया, उसका आधार अपने प्राचीन धर्म ग्रंथ ही हैं। पूर्व के लोगों द्वारा कही हुई बातों को आज की भाषा का कलेवर देकर लिखा गया है। इन कथाओं का संकलन करते हुए मुझे अनेक प्राचीन ग्रंथों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साथ ही प्राचीन कथाओं को आज के ढंग से समझने और विचार करने की एक अच्छी प्रेरणा मिली। मैंने कुछ विचारों को लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। इसी अर्से में मेरे परम मित्र श्री मोहनसिंह सेंगर ने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी को नित्य तुलसीकृत रामायण सुनाने का आग्रह किया। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी। श्रद्धेय बाबूजी जैसे धर्म-निष्ठ भक्त के सामने अपने अस्त-व्यस्त विचारों को लेकर 'श्री राम-चरित मानस' जैसे गहन ग्रंथ पर कुछ कहने का साहस करने की हिम्मत नहीं होती थी। परन्तु बाबूजी के सौजन्य और सरल स्वभाव ने कुछ कहने-सुनने का बल प्रदान किया। मैंने वह सेवा स्वीकार कर ली। बाबूजी भी अपनी घातक बीमारी के आक्रमण से बचकर नर्सिंग होम से राष्ट्रपति भवन लौटे थे। उन्हें विश्राम की बड़ी आवश्यकता थी। राम-चर्चा से उन्हें बड़ी शान्ति मिलती थी। लगभग आठ या नौ महीने तक यह

छोटा-सा सत्संग दैनिक रूप मे चलता रहा। अवसर देखकर मैं कभी-कभी इस ग्रंथ मे लिखे हुए विचारो को भी उनके सामने प्रकट करने लगता। मुझे बडी प्रसन्नता हुई कि उन्होने दो शब्द लिखकर मेरे जैसे अल्पमति के विचारो की शृंखला को सम्मानित करने की कृपा की। इतना ही नही इसमे लिखी हुई अनेक प्रेरणात्मक बातें तो मैंने उन्ही से प्राप्त की और यथा स्थान लिख भी डाला। मेरी बडी प्रबल अभिलाषा यह थी कि यह ग्रन्थ उनके सामने ही प्रकाशित हो जाय परन्तु दुर्भाग्य वश मैं वह न कर पाया। 'हरि इच्छा बलीयसी।'

कई प्रदेशो में कुछ त्यौहार इनके अतिरिक्त भी अपने अपने ढग से मनाए जाते हैं परन्तु मैंने प्राय इन्ही व्रत-उत्सव और त्यौहार तथा जयंतिया का वर्णन किया है जिनका आधार भारतीय है और जो आम तौर पर सभी प्रदेशो में मनाए जाते हैं। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय तो पाठक स्वय करेंगे। यह अवश्य है कि इन पंक्तियो को लिखकर मुझे ऐसा लगता है कि मैंने अपनी प्राचीन मान्यताओ की गाथा लिखकर अपनी लेखनी सफल की है। इसलिए यदि कही पर कोई त्रुटि हो गई हो तो विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करें। साथ ही जिन भाइयो ने समय समय पर अपने शुभ परामर्श देकर इस ग्रंथ को पूरा करने में मुझे सहायता दी और मेरा उत्साह बढाया उनका मैं चिर-कृतज्ञ रहूँगा।

आज विज्ञापन के चमत्कार का युग है। धार्मिकता पीछे पड गई है। इसलिए प्राचीन कथा-साहित्य पर लोगो का महत्त्व घट गया है। किन्तु भौतिक विज्ञान की जिस चमक मे हम आगे बढते हुए दिनो दिन तरक्की कर रहे हैं, उसमे यह भी सत्य है कि मानव म सद्गुणो की कमी होती जा रही है। देश के विचारक और कर्णधार इस दशा से चिन्तित है। भौतिक विकास मानव को प्रकृति का विजेता तो घोषित कर सकते हैं परन्तु उसकी मानवता की रक्षा उनसे हो सकेगी इसकी सम्भावनाएँ जरा कम ही हैं। संस्कृति और सभ्यता यदि विज्ञान से टकराकर चकनाचूर हो गई तो मानव के सद्गुणो का ह्रास हो जायगा, जिसके अभाव मे बड बडे उठे हुए राष्ट्र भी पिट चुके हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है। इसलिए भौतिक विकास के साथ हमारी उच्च मानवीय मान्यताएँ और चरित्र गठन का मार्ग भी प्रशस्त हो, यही हमारी अभिलाषा है। हमारे त्योहार, व्रत और जयंतियाँ उसी का निर्देश करती हैं। समाज इनसे प्रेरणाएँ लेकर आगे बढ़ता है। लोगों में सद्भावना और सदाचार का प्रसार होता है। इस दिशा में यदि इन पंक्तियों से लाभ हो सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।